श्रीमद्-वाल्मीकि-रामायणम्

सुन्दरकाण्डम्

[हिन्दी अनुवाद सहित]

अनुवादक व परिशोधक
श्री पं० अखिलानन्द जी

मूल्य २०-००

श्रीमद्-वाल्मीकि-रामायणम्

सुन्दरकाण्डम्

[हिन्दी अनुवाद सहित]

अनुवादक व परिशोधक
श्री पं० अखिलानन्द जी

प्रकाशक —

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

द्वितीय बार १०००
संवत् २०४३
मूल्य २०-००, साजिल्द २५-००

मुद्रक—विषय सूची तथा पृष्ठ ९७७—१२१८ तक कमाल प्रेस नई सड़क देहली में आफसेट से छपा। शेष रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) में छपा।
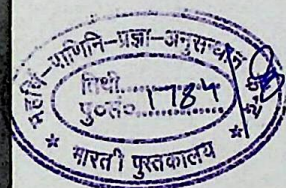
जन्म २६-१-१९१६ मृत्यु २७-५-१९८३

स्व० श्री रूपलाल जी बहल

की

पुण्य स्मृति में

उनके परिवार की ओर से भेंट

फर्म—हरचरनदास रूपलाल, अमृतसर
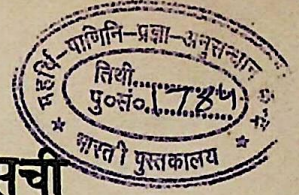
श्रीमद्वाल्मीकि रामायण विषय-सूची

सुन्दर काण्ड

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

* सुन्दरकाण्डः *

प्रथमः सर्गः

सागरलङ्घनम्

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः । इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥
दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः । समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ २ ॥
अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः । धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥ ३ ॥
द्विजान् वित्रासयन् धीमानुरसा पादपान् हरन् । मृगांश्च सुबहून्निघ्नन् प्रवृद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥
नीललोहितमाञ्जिष्ठपत्रवर्णैः सितासितैः । स्वभावविहितैश्चित्रैर्धातुभिः समलंकृतम् ॥ ५ ॥
कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः । यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैश्च पन्नगैः ॥ ६ ॥
स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते । तिष्ठन् कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ॥ ७ ॥
स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे । भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥

सुन्दर काण्ड

प्रथम सर्ग

समुद्र को पार करना

जाम्बवान् के उत्साहित करने पर शत्रुतापी हनुमान् ने दूत के पथ पर आरूढ होते हुए रावण के द्वारा हरी गई सीता के अन्वेषण करने के लिये इच्छा की ॥ १ ॥ अन्यों के द्वारा दुरूह कर्म करने के लिये वनवासी हनुमान् ने सिर तथा ग्रीवा को समुन्नत किया जिस से उन की कान्ति उस समय बाल रवि के समान हो गई ॥ २ ॥ पश्चात् समुद्र जल के समान और वैदूर्य मणि के सदृश हरी हरी घास पर महाबली वीर हनुमान् स्वच्छन्द विचरण करने लगे ॥ ३ ॥ अपनी गति से पक्षियों को त्रस्त करते हुए, छाती की रगड़ से वृक्षों को ध्वस्त करते हुए और बहुत से मृगों को मारते हुए बुद्धिमान् हनुमान् मदोन्मत्त सिंह के समान प्रतीत होने लगे ॥ ४ ॥ नील, लाल, मजीठ, पद्मवर्ण, काले तथा श्वेत वर्ण वाली धातुओं से सुभूषित ॥ ५ ॥ स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, देव तथा नाग (मनुष्य की विशेष जातियों) से सेवित ॥ ६ ॥ उस पर्वत की निम्न भूमि में हनुमान् तालाब में रहने वाले हाथी के समान सुशोभित होने लगे ॥ ७ ॥ वे हनुमान् विश्व के द्रष्टा तथा देवाधिदेव जगत्स्रष्टा भगवान् को, अपने पिता पवन तथा सम्पूर्ण प्राणियों को प्रणाम कर के जाने की इच्छा करने लगे ॥ ८ ॥ पूर्वाभिमुख अपने जनक पवन को प्रणाम

अञ्जलिं प्राङ्मुखः कुर्वन् पवनायात्मयोनये । ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥ ९ ॥
प्लवङ्गप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः । ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥१०॥
निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम् । बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥११॥
स चचालाचलश्चापि मुहूर्तं कपिपीडितः । तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥१२॥
तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना । सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥१३॥
तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः । सलिलं संप्रसुस्राव मदं मत्त इव द्विपः ॥१४॥
पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः । रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥१५॥
मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः । मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजीरिवानलः ॥१६॥
हरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः । गुहाविष्टानि भूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥१७॥
स महासत्त्वसंनादः शैलपीडानिमित्तजः । पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥१८॥
शिरोभिः पृथुभिः सर्पा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः । वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥१९॥
तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः । जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्रधा ॥२०॥
यानि चौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते । विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥२१॥
भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः । त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥२२॥

कर के दक्ष हनुमान् दक्षिण दिशा में जाने के लिये आगे बढ़े ॥ ९ ॥ वनवासियों के द्वारा देखे जाने पर तैरने का निश्चय करने वाले हनुमान् ने रामचन्द्र की कार्य सिद्धि के लिये अपने आकार को इस प्रकार बढ़ाया जैसे पूर्णमासी को चन्द्रमा बढ़ता है ॥ १० ॥ समुद्र के पार जाने की इच्छा से अपने शरीर को बढ़ाने वाले हनुमान् ने अपनी भुजा तथा चरणों से पर्वत के आस पास की भूमि को कम्पित कर दिया ॥ ११ ॥ हनुमान् के द्वारा कम्पित आस पास की पर्वतीय भूमि तथा उसके आश्रित सभी पुष्पित वृक्षों के कम्पित होने से सारे पुष्प नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥ वृक्षों के उन फूलों के गिरने से वह सम्पूर्ण पर्वत सुगन्धित तथा पुरुषमय हो गया ॥ १३ ॥ हनुमान् के अद्भुत पराक्रम से पीड़ित वह पर्वत मानो मदोन्मत्त हाथी के दान-जल के समान झरनों के द्वारा पानी बहाने लगा ॥ १४ ॥ बली हनुमान् के द्वारा कम्पित उस महेन्द्र पर्वत ने काली, पीली तथा श्वेत रेखाओं को छिपा लिया (अर्थात् फूलों की अतिवृष्टि से सब धातुएं छिप गईं) ॥ १५ ॥ उस पर्वत से मैनसिल धातु की बड़ी बड़ी चट्टानें टूट कर गिरने लगीं जिस से वह पर्वत धूम पंक्ति से आवृत अग्नि की शिखा के समान प्रतीत होने लगा ॥ १६ ॥ हनुमान् की उछल कूद से पीड़ित उस पर्वत की गुफाओं में रहने वाले प्राणी भी भयङ्कर शब्दों से चिंघाड़ने लगे ॥ १७ ॥ पर्वत के पीड़ित तथा कम्पित होने से जो वहाँ के वन जन्तुओं का कोलाहल हुआ, उस से आस पास की भूमि, दिशाएँ तथा वनस्थली प्रतिध्वनित हो गई ॥ १८ ॥ जिन की ग्रीवा की स्वस्तिक (नीली तथा काली रेखाएँ) प्रकट हो रही हैं, ऐसे विशाल मस्तक वाले नाग अग्नि के समान वायु का वमन करते हुए अपने तीक्ष्ण दाँतों से चट्टानों को काटने लगे ॥ १९ ॥ कुपित हुए उन साँपों के दंश से विषाक्त वे शिलाएँ अग्नि के समान प्रज्वलित होने लगीं तथा उन के टुकड़े टुकड़े हो गये ॥ २० ॥ उस पर्वत पर अनेक विष शमन करने वाली जो ओषधियाँ थीं, उन से भी उन सर्पों का विष शान्त न हो सका ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव योनि विशेष व्यक्तियों के द्वारा तोड़ा जा रहा है, ऐसा समझ कर वहाँ के तपस्वी गण तथा विद्याधर लोग अपनी स्त्री आदि के सहित वहां से चले गये ॥ २२ ॥ खान पान की भोजन शाला में स्वर्णमय पान के
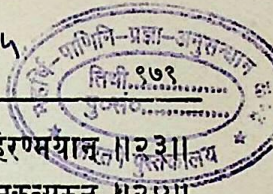
पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम् । पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥२३॥
लेह्यानुच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च । आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥२४॥
कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः । रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥२५॥
हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः । विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥२६॥
एष पर्वतसंकाशो हनूमान् मारुतात्मजः । तितीर्षति महावेगः सागरं मकरालयम् ॥२७॥
रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन् कर्मदुष्करम् । समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥२८॥
इति विद्याधराः श्रुत्वा वचस्तेषां तपस्विनाम् । तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥२९॥
दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चाचलोपमः । ननाद सुमहानादं स महानिव तोयदः ॥३०॥
[आनुपूर्व्येण वृत्तं च लाङ्गूलं रोमभिश्चितम् । उत्पतिष्यन् विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥३१॥

पात्र, अनेक मूल्यवान् भाजन तथा सोने के कटोरों को छोड़ कर ॥ २३ ॥ चटनी तथा मन को रमण करने वाले नाना प्रकार के भोजन, गैंडे की खाल से बनी हुई ढाल तथा सोने की मूठ वाली तलवारें छोड़ कर ॥ २४ ॥ उत्तम स्वर से गान करने वाले, नृत्य गान में मदोन्मत्त, रक्त माला तथा रक्त-चन्दन को धारण करने वाले, कमल पत्र के समान लाल नेत्र वाले विद्याधर अपने यानों से आकाश में चले गये ॥ २५ ॥ हार, नूपुर, कङ्कण, बाजूबन्द धारण करने वाली विद्याधरों की स्त्रियाँ चकित तथा मन्द हास करती हुई अपने पतियों के साथ आकाश में चली गईं ॥ २६ ॥ यह विशालकाय पवन सुत हनुमान् महान् वेग से अगाध जल राशि समुद्र को तैरना चाहते हैं ॥ २७ ॥ रामचन्द्र के कार्य की सिद्धि के लिये तथा वनवासी राजा सुग्रीव एवं उन की प्रजा को राम के ऋण से मुक्त करने के लिये समुद्र के पार जाने का यह दुष्कर कार्य करने की इच्छा कर रहे हैं, जो अन्यों की शक्ति से बाहर की बात है ॥ २८ ॥ इस प्रकार उन तपस्वियों की इन बातों को सुन कर वे विद्याधर उस पर्वत पर अप्रतिम वनवासी वीर हनुमान् को देखने लगे ॥ २९ ॥ हनुमान् ने अपने रोम २ (सम्पूर्ण शरीर) को कम्पाया जिससे वहाँ की वनस्थली भी कम्पायमान हो गई। पश्चात् मेघ गर्जन के समान महान् नाद किया ॥ ३० ॥ समुद्र में कूदते हुए क्रम से रोम युक्त अपनी पूँछ को इस प्रकार फेंका जैसे गरुड़ साँप को फेंकता है * ॥३१॥ हनुमान् के अपने पृष्ठ भाग से

*हनुमान् सुग्रीव तथा अंगद आदि किष्किन्धावासी जाति के वानर पशु थे तथा इन सभी को वानर के समान पूँछ थी, इसका विशद समाधान इसी रामायण को भूमिका में किया गया है। पाठक गण उसे वहीं देखें। यहाँ पर थोड़ा समाधान किया जाता है। त्रेता तथा द्वापर की सन्धि में रामचन्द्र पैदा हुए, यह अनेक ग्रन्थों में विद्यमान है। राम इसी वैवस्वत मनु की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के त्रेता में उत्पन्न हुए। त्रेता में पूँछ वाले मनुष्य हों, इसका कहीं वर्णन नहीं आता। त्रेता से पूर्व सत्ययुग आदि में भी पूँछ वाले पुरुषों का वर्णन नहीं आता तो त्रेता के अन्त में पूँछ वाले पुरुष का वर्णन अप्रासङ्गिक तथा बुद्धिविपरीत है। अब रहा—ये वानर जाति के पशु थे, यह भी तथ्य तथा बुद्धि के विपरीत है। हनुमान् को अनेक स्थान पर 'बुद्धिमान् वरिष्ठ' कहा गया है तथा ऋश्यमूक पर्वत पर हनुमान् से बातचीत करते समय राम ने लक्ष्मण से कहा है—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपभाषितम् ॥
वा० रा० किष्किन्धा ३।२८, २९ ॥

अर्थात् 'बिना ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद पढ़े, कोई भी व्यक्ति इस प्रकार भाषण नहीं कर सकता। इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अच्छे प्रकार अध्ययन किया है। इतनी देर तक बातचीत करने पर भी इन्होंने किसी

तस्य लाङ्गूलमाविद्धमात्तवेगस्य पृष्ठतः । ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः] ॥३२॥
बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ । ससाद च कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ॥३३॥
संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् । तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥३४॥
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः । रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥३५॥
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः । निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलः ॥३६॥
वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् । यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥३७॥
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् । न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥३८॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् । यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ॥३९॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् । सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥४०॥
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् । एवमुक्त्वा तु हनुमान्वानरान्वानरोत्तमः ॥४१॥
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् । सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥४२॥
समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः । संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः ॥४३॥

वेग से पूँछ के फेंकने का ऐसा दृश्य हुआ जैसे गरुड़ के द्वारा महान् सर्प फेंका जाता हो ॥ ३२ ॥ विशाल परिघ के समान अपनी दोनों भुजाओं को हनुमान् ने सिकोड़ा अपने को तथा अपने पैरों को कमर की ओर झुकाया और ॥ ३३ ॥ वीर्यवान् पराक्रमी हनुमान् ने अपनी ग्रीवा तथा दोनों भुजाओं को उसी प्रकार संकुचित कर तेज (कार्य साधिका शक्ति), सत्त्व (मानसिक तथा आत्मिक बल), वीर्य (पराक्रम) को बढ़ाया ॥ ३४ ॥ अपने गमनीय मार्ग को देखने के लिये आकाश की ओर अपनी दृष्टि को फैलाते हुए अपने प्राणों को हृदय में रोका (अर्थात् संकुचित वीर आसन से बैठकर भीतरी कुम्भक किया) ॥ ३५ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ महाबली हनुमान् ने इस प्रकार समुद्र में कूदते हुए अपने पैरों को दृढ़ता से जमाया तथा दोनों कानों एवं कर्ण प्रदेशों को संकुचित किया ॥३६॥ उस समय वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् अपने वनवासी सैनिकों से यह वचन बोले—जिस प्रकार अत्यन्त पराक्रम से छोड़ा हुआ रामचन्द्र का बाण वायुवेग के समान जाता है ॥३७॥ उसी प्रकार मैं रावण पालित लङ्का में जाऊँगा । यदि लङ्का में उस जानकी को नहीं देखूँगा ॥३८॥ तो उसी वेग से देवलोक त्रिविष्टप (तिब्बत) की राजधानी अमरावती (वर्त्तमान ल्हासा) को जाऊँगा । इतना परिश्रम करने पर भी यदि अमरावती में भी सीता को नहीं देखूँगा ॥ ३९ ॥ तो पुनः लङ्का में जाकर राक्षसराज रावण को बाँध कर लाऊँगा । सर्वथा सीता के साथ सफल मनोरथ होकर ही लौटूँगा ॥४०॥ अथवा रावण से युक्त लङ्का को ध्वस्त कर के केवल सीता को ही ले आऊँगा । इस प्रकार वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् अपने साथी वनवासियों से कहकर ॥ ४१ ॥ अपनी बाधाओं पर ध्यान न देते हुए अत्यन्त वेग से कूद पड़े । उस समय वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ने अपने आपको गरुड़ के समान समझा ॥ ४२ ॥ वेगपूर्वक कूदते समय उनके वेग जनित वायु वेग से आसपास पर्वत पर उत्पन्न होने वाले वृक्ष तथा उनकी शाखाएँ उखड़ गये और बिखर गये ॥ ४३ ॥ पक्षी तथा पुष्पों से भरे हुए वृक्ष तथा लताएँ हनुमान् के ऊरु वेग से विमल आकाश में जहाँ तहाँ बिखर गये

अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया है ।' इसके अतिरिक्त हनुमान् सुग्रीव आदि का रामायण में जो व्यावहारिक जीवन है वह भी नीति-निपुणता, कुशलशासकता तथा प्रखर बुद्धिमत्ता का द्योतक है । इस अवस्था में हनुमान् को पूँछ वाला लिखना तथा गरुड़ आदि की उपमा देना अप्रासङ्गिक, तथ्यहीन तथा सर्वथा बुद्धि के विपरीत है । इससे हनुमान् आदि का गौरव भी नष्ट होता है । इन हेतुओं से इन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना गया है ।

स मत्तकोयष्टिभकान् पादपान् पुष्पशालिनः । उद्वहन्नूरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥४४॥
ऊरुवेगोद्धता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः । प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥४५॥
तदूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः । अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥४६॥
सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः । हनूमान् पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥४७॥
सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जँल्लवणाम्भसि । भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥४८॥
स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः । शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥४९॥
विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः । अवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥५०॥
लघुत्वेनोपपन्नं तद्विचित्रं सागरेऽपतत् । द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् ॥५१॥
पुष्पौघेनानुविद्धेन नानावर्णेन वानरः । बभौ मेघ इवोद्यन् वै विद्युद्गणविभूषितः ॥५२॥
तस्य वेगसमाधूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत । ताराभिरभिरामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ॥५३॥
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ । पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥५४॥
पिबन्निव बभौ श्रीमान् सोर्मिमालं महार्णवम् । पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ॥५५॥
तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः । नयने संप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ॥५६॥
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले । चक्षुषी संप्रकाशेते चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥५७॥

॥ ४४ ॥ हनुमान् के ऊरु वेग से प्रक्षिप्त उन वृक्ष-लताओं ने कुछ दूर हनुमान् का इस प्रकार अनुसरण किया जिस प्रकार दीर्घ मार्ग में प्रस्थान करने वाले अपने बान्धवों का बन्धुगण अनुसरण करते हैं ॥ ४५ ॥ हनुमान् के ऊरु वेग से आलोडित पर्वतीय साल वृक्षों ने उनका इस प्रकार अनुसरण किया जैसे राजाओं के पीछे उनकी सेना अनुसरण करती है ॥ ४६ ॥ पुष्पित अनेक प्रकार की लताओं तथा वृक्षशाखाओं से वेष्टित हनुमान् अति अद्भुत पर्वत शिखर के समान दिखाई पड़ रहे थे ॥ ४७ ॥ उनमें जो अति भार वाले वृक्ष थे, वे जहाँ तहाँ छिन्न-भिन्न होकर समुद्र में इस प्रकार डूब गये जिस प्रकार विद्युत् के प्रहार से आकाश में मेघ छिन्न भिन्न होकर अस्त हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ नाना प्रकार के पुष्प तथा कलियों से आवेष्टित हनुमान् इस प्रकार सुशोभित होने लगे जैसे खद्योत (जुगनू) से परिपूर्ण मेघ सदृश पर्वत शोभायमान होते हैं ॥ ४९ ॥ हनुमान् के वेग से फैंके हुए वे वृक्ष अपने फूलों को जहाँ तहाँ फैंक कर इस प्रकार जल में डूब गये जैसे अपने शुभ चिन्तकों को लौटाकर पथिक आगे बढ़ जाता है ॥ ५० ॥ हनुमान् के वायु वेग से फैंके हुए वे वृक्ष-पुष्प हल्के होने के कारण समुद्र में जहाँ तहाँ गिर पड़े ॥ ५१ ॥ नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से वेष्टित हनुमान् समुद्र में इस प्रकार दिखाई देते थे जैसे विद्युत् से परिपूर्ण उमड़ते हुए मेघ दिखाई देते हैं ॥ ५२ ॥ हनुमान् के वेग से फैंके हुए पुष्पों से युक्त वह समुद्र शोभायमान नक्षत्र गण से युक्त आकाश के समान प्रतीत होने लगा ॥ ५३ ॥ समुद्र में तैरते समय हनुमान् की दोनों भुजाएँ आकाश में फैली हुईं इस प्रकार प्रतीत होती थीं, जैसे पर्वत से निकले हुए पाँच मुख वाले दो सर्प ॥ ५४ ॥ महाशक्तिशाली हनुमान् लहरों से युक्त समुद्र जल को पीते हुए पिपासु के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ५५ ॥ वायु मार्ग का अनुसरण करने वाले विद्युत् तेज के समान उनके दोनों नेत्र पर्वत पर जलने वाली दो अग्नियों के समान प्रतीत हो रहे थे ॥५६॥ हनुमान् की गोल तथा विशाल भूरी आंखें इस प्रकार प्रतीत हो रही थीं जैसे आकाश में सूर्य चन्द्र प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ ताम्र वर्ण के समान लाल नासिका से युक्त उनका मुख वर्ण सन्ध्या समय की लालिमा लिये हुए सूर्य के समान प्रतीत हो रहा

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ । सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा सूर्यस्य मण्डलम् ॥५८॥
लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते । अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥५९॥
लाङ्गूलचक्रेण महाञ्शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः । व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ॥६०॥
स्फिग्देशेनाभिताम्रेण रराज स महाकपिः । महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ॥६१॥
तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् । कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥६२॥
खे यथा निपतन्त्युल्का ह्युत्तरान्ताद्विनिःसृताः । दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥६३॥
पतत्पतङ्गसंकाशो व्यायतः शुशुभे कपिः । प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया ॥६४॥
उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया । सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः ॥६५॥
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः । स स तस्योरुवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥६६॥
सागरस्योर्मिमालानामुरसा शैलवर्ष्मणा । अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥६७॥
कपिवातश्च बलवान् मेघवातश्च निःसृतः । सागरं भीमनिर्घोषं कम्पयामासतुर्भृशम् ॥६८॥
विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसः । पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥६९॥
मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् स महार्णवे । अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥७०॥
तस्य वेगसमुद्धूतं जलं सजलदं तदा । अम्बरस्थं विबभ्राज शारदाभ्रमिवाततम् ॥७१॥
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा । वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥७२॥

था ॥ ५८ ॥ तैरते हुए हनुमान् का लाङ्गल (राष्ट्रीय ध्वज) जल से ऊपर इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे आकाश में इन्द्रध्वज ॥ ५९ ॥ ध्वज दण्ड तथा श्वेत दन्तों से युक्त पवन सुत हनुमान् मण्डलयुक्त सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ६० ॥ कटि के नीचे लाल वर्ण वाला कच्छ पहने हुए हनुमान् विशाल तोड़े हुए गैरिक पर्वत के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ६१ ॥ समुद्र को पार करते हुए हनुमान् की दोनों कुक्षियों से निकलने वाला वायु जनित शब्द मेघ गर्जन सा प्रतीत हो रहा था ॥ ६२ ॥ जैसे आकाश में अपने प्रकाश पुंज से युक्त उल्का दिखाई देता है वैसे ही हनुमान् उस समय प्रतीत हो रहे थे ॥ ६३ ॥ जल में तैरते समय सूर्य के समान कान्ति वाले हनुमान् रज्जु से बन्धे हुए विशाल हाथी के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ६४ ॥ समुद्र-तरण के समय उनके शरीर की गाढ़ छाया वायु परिपूर्ण समुद्र में नौका के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ६५ ॥ तैरते समय हनुमान् समुद्र के जिस २ भाग में जाते थे, उनके वेग वाले अङ्गों के आघात से समुद्र में तरङ्ग तथा फेन उठने लगते थे ॥ ६६ ॥ पर्वत शिला के समान दृढ़ वक्षःस्थल से समुद्र की तरङ्गों को तोड़ते हुए महावेग वाले हनुमान् तैरते हुए आगे चले ॥ ६७ ॥ हनुमान् के तैरते समय वेग जनित वायु तथा मेघ से निकली हुई वायु ने अपने गर्जन से, भयङ्कर गर्जन करने वाले समुद्र को भी कम्पायमान कर दिया ॥ ६८ ॥ समुद्र में अपने बाहु वेग से तरङ्गों को तोड़ते हुए हनुमान् इस प्रकार तैरे मानो पृथ्वी और आकाश को एक कर रहे हों ॥ ६९ ॥ विशाल समुद्र में मेरु तथा मन्दर पर्वत के समान विशाल उठती हुई तरङ्गों को तोड़ते हुए इस प्रकार आगे बढ़ रहे थे मानो तरङ्गों को गिन रहे हैं ॥७०॥ हनुमान् के वेग से उछाला हुआ जल आकाश में जलयुक्त शरत्कालिक मेघ के समान प्रतीत हो रहा था ॥७१॥ तिमि (एक प्रकार की मछली) मगर, मछलियाँ, कछुए ये सभी जल के फेंके जाने पर स्पष्ट इस प्रकार दिखाई देते थे जैसे वस्त्र के खींच लेने से शरीरधारियों के शरीर दिखाई देते हैं ॥७२॥ तैरते हुए हनुमान् को देखकर समुद्र के साँपों ने उनको

प्लवमानं समीक्ष्याथ भुजङ्गाः सागरालयाः । व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्ण इति मेनिरे ॥७३॥
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता । छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराभवत् ॥७४॥
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी । तस्य सा शुशुभे छाया वितता लवणाम्भसि ॥७५॥
शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः । वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ॥७६॥
येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुञ्जरः । तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥७७॥
आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इवाबभौ । हनूमान् मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ॥७८॥
पाण्डरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च । कपिनाकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥७९॥
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः । प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते ॥८०॥
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा । ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवगन्धर्वचारणाः ॥८१॥
तताप न हि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् । सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ॥८२॥
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा । जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो महौजसम् ॥८३॥
नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विबुधाः खगाः । प्रेक्ष्याकाशे कपिवरं सहसा विहतक्लमम् ॥८४॥
तस्मिन् प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति । इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ॥८५॥
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः । करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ॥८६॥

आकाश में उड़ने वाला गरुड़ समझा ॥ ७३ ॥ अत्यन्त वेगपूर्वक तैरने के कारण हनुमान् की छाया दस योजन* चौड़ी तथा तीस योजन लम्बी बढ़ी हुई सी शोभायमान हो रही थी ॥ ७४ ॥ संतरण के समय हनुमान् का अनुगमन करने वाली श्वेत घन पंक्ति के समान उनकी छाया समुद्र में शोभा को प्राप्त हो रही थी ॥ ७५ ॥ विशालकाय महातेजस्वी हनुमान् उस समय आलम्बनहीन वायुमार्ग में पक्ष वाले पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७६ ॥ वनवासी, बलवान् हनुमान् जिस वेग से समुद्र को पार कर रहे थे, उस वेग के सामने वह समुद्र एक छोटे से तालाब के समान प्रतीत होने लगा ॥ ७७ ॥ पक्षियों के उड़ने वाले आकाश में जैसे वायु मेघ माला को खींचते, ध्वस्त करते हुए जाता है, उसी प्रकार हनुमान् जलीय तरङ्गों को भुजबल से तोड़ते हुए आगे गये ॥ ७८ ॥ तैरते समय जल के ऊपर पीले, लाल, नीले, मजीठ वर्ण वाले मेघ हनुमान् के बाहुबल से छिन्न भिन्न होते हुए सुशोभित हो रहे थे ॥७९॥ हनुमान् के जल और बादलों में कभी छिप जाने कभी बाहर आ जाने से बादलों में छिपते हुए तथा उनसे निकलते हुए चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ८० ॥ शीघ्रता पूर्वक तैरते हुए इस प्रकार हनुमान् को देखकर देव, गन्धर्व, दानवों ने उन पर फूलों की वर्षा की ॥ ८१ ॥ रामचन्द्र की कार्यसिद्धि के लिये परोपकारी वनवासी हनुमान् के तैरते समय सूर्य ने उनको सन्तप्त नहीं किया तथा वायु ने उनकी सेवा की अर्थात् प्रकृति भी परोपकारी हनुमान् की सहायक हो गई ॥ ८२ ॥ तैरते हनुमान् की ऋषियों ने स्तुति की तथा देव-गन्धर्वों ने प्रशंसा करते हुए उस वनवासी वीर का गुण गान किया ॥ ८३ ॥ इतने परिश्रम वाले मार्ग पर गमन करते हुए भी श्रम रहित हनुमान् को देखकर नाना प्रकार के नाग, यक्ष, राक्षस जाति के लोग भी उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८४ ॥ वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् के इस प्रकार तैरते हुए, इक्ष्वाकु कुल के प्रति आदरणीय भाव रखने वाले समुद्रतट रक्षक ने इस प्रकार का विचार किया ॥ ८५ ॥ यदि मैं इक्ष्वांकुवंशावतंस राम के सेवक हनुमान् की सहायता नहीं करूंगा, तो जनता में मेरी अपकीर्त्ति होगी ॥ ८६ ॥ इक्ष्वाकु वंश के सम्राट् राजा सगर के सामुद्रिक विधान के

* तैरते समय बहुत लम्बी आकृति को दर्शाने के लिये यहाँ योजन शब्द का प्रयोग अतिशयोक्ति अलंकार-मात्र है ।

अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः । इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसीदितुमर्हति ॥८७॥
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः । शेषं च मयि विश्रान्तः सुखेनातिपतिष्यति ॥८८॥
इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि । हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥८९॥
त्वमिहासुरसङ्घानां पातालतलवासिनाम् । देवराज्ञा गिरिश्रेष्ठ परिघः संनिवेशितः ॥९०॥
त्वमेषां जातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् । पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ॥९१॥
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् । तस्मात्संचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ नगसत्तम ॥९२॥
स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपैष्यति वीर्यवान् । हनूमान् रामकार्यार्थं भीमकर्मा समाप्लुतः ॥९३॥
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥
हिरण्यनाभो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः । उत्पपात जलात्तूर्णं महाद्रुमलतायुतः ॥९४॥
स सागरजलं हित्वा बभूवाभ्युत्थितस्तदा । यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ॥९५॥
स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः । दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ॥९६॥
शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः । आदित्योदयसंकाशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् ॥९७॥
तप्तजाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः । आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत्काञ्चनप्रभम् ॥९८॥

द्वारा हम लोग सम्मानित तथा संवर्धित हैं और इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने वाले रामचन्द्र के सच्चे सलाहकार तथा दूत ये हनुमान् हैं। इस लिये हम लोगों की उपस्थिति में इन्हें कष्ट नहीं पहुँचना चाहिये ॥ ८७ ॥ मुझे इस प्रकार का प्रबन्ध करना चाहिये जिस से वनवासी हनुमान् को विश्राम करने का अवसर मिले। विश्राम करने के पश्चात् शेष समुद्र का भाग सुख पूर्वक तैर सकेंगे ॥ ८८ ॥ इस प्रकार का उत्तम विचार कर के वह समुद्र तटरक्षक समुद्र के बीच में हिरण्यनाभ मैनाक नामक पर्वत (टापू) पर रहने वाले अधिकारी से बोला ॥ ८९ ॥ अमरावती के शासक महात्मा देवराज ने तुम को इस लिये यहाँ नियुक्त किया है कि पाताल निवासी (=पृथ्वी के दूसरे भाग में रहने वाले) असुर जाति के लोगों का समूह यहाँ से न निकलने पाये ॥ ९० ॥ प्रख्यात, बलशाली, पराक्रमी जो पुनः इधर आक्रमण करने की इच्छा रखते हैं, ऐसे पातालवासी असुरों के आने के मार्ग में तुम ही एक अवरोधक हो ॥ ९१ ॥ ऊपर नीचे अगल-बगल से आने वालों को रोकने की शक्ति तुम्हारे अन्दर है। इस लिये हे मैनाक पर्वतवासियो ! तुम लोगों को प्रेरित करता हूँ—उठो ॥ ९२ ॥ भीषण कर्म करने वाले, राम के कार्य सिद्धयर्थ पराक्रमी वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् अच्छे प्रकार तैरते हुए तुम लोगों के समीप आ रहे हैं। इन के श्रम को देख कर विश्रामार्थ इन का स्वागत तुम लोगों को करना ही चाहिये ॥ ९३ ॥ समुद्र तट रक्षक की बात को सुन कर महाद्रुम लताओं से परिपूर्ण तथा समुद्र जल से परिवेष्टित रत्नगर्भित मैनाक पर्वत के वासी जहाँ तहाँ सभी हनुमान् की सहायता के लिये उठ खड़े हुए ॥ ९४ ॥ वह पर्वत जल से बाहर निकला हुआ इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे मेघों को छिन्न भिन्न कर प्रखर किरणों वाला सूर्य शोभित होता है ॥ ९५ ॥ सामुद्रिक तट रक्षकों के कथनानुसार जल से घिरे हुए उस पर्वत की चोटियों को वहाँ के सभ्य पुरुषों ने दर्शनीयतम रूप से सजाया ॥ ९६ ॥ मैनाक पर्वत की चोटियाँ स्वर्णिम धातुओं से सुशोभित तथा किन्नर महोरग जाति वालों से अधिवासित, अरुणोदय सूर्य के समान प्रकाशित शृङ्गों से युक्त, ऊँचाई में आकाश को स्पर्श करने वाली थीं ॥ ९७ ॥ उस मैनाक पर्वत के उठे हुए स्वर्णमय शृङ्गों से नील आकाश स्वर्ण के समान चमक रहा था ॥९८॥ अत्यन्त प्रकाश वाले काञ्चनमय शृङ्गों (चोटियों) से वह पर्वतश्रेष्ठ मैनाक सैकड़ों सूर्यों के समान सुशोभित

जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैः स्वयंप्रभैः । आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः ॥९९॥
तमुत्थितमसङ्गेन हनुमानग्रतः स्थितम् । मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ॥१००॥
स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः । उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ॥१०१॥
स तथा पातितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः । बुद्ध्वा तस्य कपेर्वेगं जहर्ष च ननाद च ॥१०२॥
तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः । प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् ॥१०३॥
मानुषं धारयन् रूपमात्मनः शिखरे स्थितः । दुष्करं कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ॥१०४॥
निपत्य मम शृङ्गेषु विश्रमस्व यथासुखम् । राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ॥१०५॥
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः । कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥१०६॥
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः संमानमर्हति । त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः ॥१०७॥
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः । तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ॥१०८॥
तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् । तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु ॥१०९॥
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रम्य श्वो गमिष्यसि । अस्माकमपि संबन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ॥११०॥
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥
वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज । तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥१११॥

हो रहा था ॥ ९९ ॥ क्षार जल के मध्य अपने समक्ष उस मैनाक पर्वत को समुन्नत देखकर हनुमान् ने अपने कार्य में उपस्थित विघ्न ही समझा ॥ १०० ॥ महाबली हनुमान् ने अपने वेग तथा देदीप्यमान ओज से उस पर्वत निवासी लोगों के संगठित साहस को इस प्रकार विचलित कर दिया जैसे मेघ समुदाय को वायु छिन्न भिन्न कर देता है ॥ १०१ ॥ हनुमान् के समीप आने पर तथा उनके अप्रतिम वेग तथा पराक्रम को देख और समझकर उस उत्तम पर्वत के निवासी लोगों ने अत्यन्त हर्ष मनाया और बार २ जय नाद किया ॥ १०२ ॥ अपनी भूमि पर आये हुए तथा अपने समीप उपस्थित उस वनवासी वीर हनुमान् को देखकर उस पर्वत के निवासी प्रसन्न होकर प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ १०३ ॥ मानवता का अवलम्बन करते हुए तथा अपने पर्वत के शिखर के समीप उपस्थित हनुमान् से वहाँ के लोगों ने यही कहा कि हे वनवासिश्रेष्ठ ! आपने यह अत्यन्त कठिन कार्य किया है ॥ १०४ ॥ हम लोगों के इस पर्वत की चोटी पर आकर कुछ समय विश्राम करके आगे जाइयेगा, क्योंकि रामचन्द्र के पूर्वजों ने ही सामुद्रिक विधान बनाकर इसकी शोभा बढ़ाई है ॥ १०५ ॥ राम के हित में लगे हुए आप का यहाँ के लोग स्वागत करते हैं। किए हुए का प्रत्युपकार करना या उपकारी का सम्मान करना, यह परम्परा का धर्म है ॥ १०६ ॥ यहाँ के लोग उस मर्यादा के निर्माता के प्रत्युपकार के रूप में आपका सम्मान करना चाहते हैं। आप के लिए यह काम सम्मानपूर्वक हम लोगों को सौंपा गया है ॥१०७॥ आकाशवत् शतयोजन समुद्र में तैरने वाले ये हनुमान् इस पर्वत की चोटी पर विश्राम करके पुनः शेष मार्ग में गमन करें, ऐसा यहाँ के लोगों ने निश्चय किया है ॥ १०८ ॥ हे वनवासी, श्रेष्ठ वीर ! आप हम लोगों के मध्य में विश्राम करके आगे जाएँ। ये सुगन्धित तथा स्वादु अनेक प्रकार के कन्दमूल फल हैं ॥ १०९ ॥ हे वनवासिश्रेष्ठ ! इनका आस्वादन कर तथा विश्राम करके ही आप आगे जायेंगे, क्योंकि मानवता के नाते आपके साथ हम लोगों का भी सम्बन्ध है, त्रिलोकी में आपका गुण प्रसिद्ध है ॥११०॥ हे पवनसुत हनुमान्! अत्यन्त वेग से तैरने वाले तैराकों में हम लोग आपको मुख्य मानते हैं ॥१११॥ ज्ञानी धर्मात्माओं के लिये साधारण अतिथि भी पूजनीय होता है, पुनः आप जैसे पूजनीय अतिथि

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता । धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ॥११२॥
त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः । पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥११३॥
पूजिते त्वयि धर्मज्ञ पूजां प्राप्नोति मारुतः । तस्मात्त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥११४॥
[पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् । तेऽभिजग्मुर्दिशः सर्वा गरुडानिलवेगिनः ॥११५॥
ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः । भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥११६॥
ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः । पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण तत्र तत्र सहस्रशः ॥११७॥
स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् । ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥११८॥
अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम । गुप्तपक्षसमग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः ॥११९॥
ततोऽहं मानयामि त्वां मान्यो हि मम मारुतः । त्वया मे ह्येष संबन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥१२०॥
अस्मन्नेवं गते कार्ये सागरस्य ममैव च । प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महाकपे] ॥१२१॥
श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण कपिसत्तम । प्रीतिं च बहु मन्यस्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥१२२॥
एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् । प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥१२३॥
त्वरते कार्यकालो मे अहश्च व्यतिवर्तते । प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥१२४॥

की तो बात ही क्या ॥११२॥ हे वनवासिश्रेष्ठ! आप श्रेष्ठ मरुद्देव के पुत्र हैं, वेग तथा पराक्रम में भी आप उन्हीं के सदृश हैं ॥ ११३ ॥ आपका सत्कार करने पर देवतुल्य आपके पूज्य पिता का भी एक प्रकार से सत्कार हो जायेगा। इसलिये आप हमारे पूजनीय हैं। इसमें और भी अनेक कारण हैं ॥ ११४॥ हे वीर! पहले सत्य-युग में सम्पूर्ण पर्वत पक्ष (पंख) वाले होते थे और गरुड़ के समान ही वेगवान् हरेक दिशा में जाते थे।* ॥ ११५॥ उनके इधर उधर घूमने से देवता, ऋषियों के समूह तथा अन्य प्राणी उन पर्वतों के गिरने की आशंका से भयभीत हो गये ॥ ११६ ॥ इस अवस्था को देखकर अनेक यज्ञ करने वाले इन्द्र ने क्रुद्ध होकर हजारों पर्वतों के पक्षों को अपने वज्र से काट डाला ॥ ११७ ॥ क्रुद्ध हुए वे देवराज इन्द्र वज्र को हाथ में लेकर मुझ मैनाक के पास भी आये। उस समय महात्मा वायु ने मुझे उठा कर सहसा वहाँ से फेंक दिया ॥ ११८ ॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ हनुमान्! आप के पिता ने मुझे इसी खारे समुद्र में फेंका जिससे मेरे पक्ष तथा मेरी रक्षा हुई ॥ ११९ ॥ इसलिये हे पवनसुत हनुमान्! मैं आपका सम्मान करता हूँ, क्योंकि आप मेरे माननीय हैं। महागुणों से सम्पन्न हे वनवासिश्रेष्ठ! आपके साथ मेरा यही सम्बन्ध है ॥१२०॥ आज इस पूर्व घटना घटित सम्बन्ध के कारण मेरे तथा समुद्र के इस स्वागत को स्वीकार कर हे महामति! आप मुझ पर कृपा करें ॥ १२१ ॥ इसलिये मेरी इस पूजा को स्वीकार करो तथा अपनी थकावट को दूर करो। मेरे इस प्रेम को अवश्य स्वीकार करो। हे वनवासी वीर! मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हूँ॥ १२२ ॥ मैनाक पर्वतवासी व्यक्तियों के ऐसा कहने पर हनुमान् उनसे बोले—मैं आप लोगों से बहुत प्रसन्न हूँ, आपके द्वारा अतिथि सत्कार हो गया। मेरे न ठहरने से आप लोगों को जो दुःख हो रहा है उसे दूर कर दीजिये ॥१२३॥ कार्य ही मुझे शीघ्रता के लिये प्रेरित कर रहा है, निश्चित समय भी शीघ्रता से बीत रहा है। अपने साथियों से बीच में न ठहरने की मैंने प्रतिज्ञा की है॥१२४॥ ऐसा कहकर मैनाकवासी लोगों से हाथ मिला कर

* हनुमान् तथा समुद्र के वार्तालाप के विषय की कथा पौराणिक आख्यानमात्र है। कई पुराणों में यह कथा इसी रूप में आई है। समुद्र में एक मैनाक ही क्या, मैनाक से बहुत बड़े-बड़े सहस्रों पर्वत विद्यमान हैं। क्या वे पर्वत भी इन्द्र के डर के मारे भागे हुए हैं? इन बातों का समाधान कोई हो नहीं सकता। सृष्टि विज्ञान, सृष्टि के क्रमिक विकास, ग्रह-उपग्रहों का वर्तमान रूप में आना—इस पर बहुत विशाल साहित्य है। सृष्टि विज्ञानवादी ऐसे बुद्धिहीन गपोड़ों पर विश्वास नहीं करता। समय २ पर रामायण में प्रक्षेप हुए हैं, इसलिये यह प्रसङ्ग प्रक्षिप्त है।

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः । जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ॥१२५॥
स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः । पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरनिलात्मजः ॥१२६॥
अथोर्ध्वं दूरमुत्पत्य हित्वा शैलमहार्णवौ । पितुः पन्थानमास्थाय जगाम विमलेऽम्बरे ॥१२७॥
ततश्चोर्ध्वगतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् । वायुसूनुर्निरालम्बे जगाम कपिकुञ्जरः ॥१२८॥
तद्द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् । प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१२९॥
देवताश्चाभवन् हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा । काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः ॥१३०॥
उवाच वचनं श्रीमान् परितोषात्सगद्गदम् । सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥१३१॥
हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् । अभयं ते प्रयच्छामि तिष्ठ सौम्य यथासुखम् ॥१३२॥
साह्यं कृतं त्वया सौम्य विक्रान्तस्य हनूमतः । क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥१३३॥
रामस्यैष हितायैव याति दाशरथेर्हरिः । सत्क्रियां कुर्वता तस्य तोषितोऽस्मि भृशं त्वया ॥१३४॥
ततः प्रहर्षमगमद्विपुलं पर्वतोत्तमः । देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥१३५॥
स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा । हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥१३६॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम् ॥१३७॥
अयं वातात्मजः श्रीमान् प्लवते सागरोपरि । हनूमान्नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥१३८॥
राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् । दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम् ॥१३९॥

हँसते हुए वे महापराक्रमी वीर हनुमान् अपने गन्तव्य पथ पर चल दिये ॥ १२५ ॥ जल के मध्य में मैनाक पर्वत के निवासी लोगों के द्वारा बहुत सम्मान पूर्वक अभिनन्दित तथा आशीर्वादों के द्वारा वे हनुमान् पूजित हुए ॥ १२६ ॥ तत्पश्चात् समुद्रगत मैनाक पर्वत को छोड़कर दीर्घपथ में जाते हुए विमल आकाश में अपने पिता के समान ही दिखाई देने लगे ॥ १२७ ॥ आगे बढ़कर उस पर्वत को पुनः देखते हुए वनवासि-श्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान् विना किसी का सहारा लिये ही आगे बढ़ गये ॥ १२८ ॥ हनुमान् के इस अद्वितीय अद्भुत कार्य को देखकर देवता, सिद्ध, तथा ऋषियों ने उनकी प्रशंसा की ॥ १२९ ॥ काञ्चनमय चोटी वाले उस मैनाक पर्वत के निवासियों के इस शोभनीय कृत्य को देखकर उस पर्वत के देवतागण तथा इन्द्र आदि प्रसन्न हो गये ॥ १३० ॥ शचीपति इन्द्र मैनाक पर्वत वासियों के कार्य से सन्तुष्ट होकर गद्गद स्वर में उन लोगों से यह वचन बोले ॥ १३१ ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ मैनाक के निवासियों ! मैं तुम लोगों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम सभी लोगों को अभयं प्रदान करता हूँ । तुम सभी लोग सुख पूर्वक विचरण करो ॥ १३२ ॥ सुग्रीव के द्वारा भय उत्पन्न होनेपर सौ योजन समुद्र को पार करने में थके हुए निर्भय हनुमान् की तुमने सहायता की है ॥ १३३ ॥ दशरथ कुमार रामचन्द्र की सहायता के लिये हनुमान् जा रहे हैं । अपनी शक्ति भर तुम लोगोंने उनकी सहायता कर मुझे अत्यंत प्रसन्न कर दिया है ॥ १३४ ॥ मैनाक पर्वत के निवासी देवताओं के स्वामी इन्द्र को प्रसन्न देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥१३५ ॥ इन्द्र के द्वारा अपनी प्रशंसा सुन एवं अभयदान प्राप्त कर वे अपने स्थान पर निवास करने लगे और हनुमान् भी सन्तरण करने लगे ॥ १३६ ॥ पश्चात देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषिगण सूर्य के समान प्रकाशवती तथा शक्तिमती नाग (जाति वाले मनुष्य) की माता सुरसा से बोले ॥ १३७ ॥ यह पवनसुत हनुमान् समुद्र को पार कर रहे हैं । इनकी परीक्षा के लिये तुम कुछ देर के लिये इनके काम में विघ्न डालो ॥ १३८ ॥ विशाल शरीर, विकराल दन्तपंक्ति, भूरी २ आखें तथा विकराल मुख वाले राक्षस के रूप को धारण करो ॥ १३९ ॥ हम लोग इनके बल तथा पराक्रम को जानना

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् । त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥१४०॥
एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता । समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥१४१॥
विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् । प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥१४२॥
मम भक्षः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ । अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥१४३॥
एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिर्वानरर्षभः । प्रहृष्टवदनः श्रीमान् सुरसां वाक्यमब्रवीत् ॥१४४॥
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥१४५॥
अन्यकार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः । तस्य सीता हृता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥१४६॥
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् । कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनी ॥१४७॥
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् । आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥१४८॥
एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी । अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम ॥१४९॥
तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत् । बलं जिज्ञासमाना वै नागमाता हनूमतः ॥१५०॥
प्रविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम । वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ॥१५१॥
व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः । एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुंगवः ॥१५२॥

चाहते हैं। वे बुद्धि, बल, पराक्रम से तुम को जीतते हैं अथवा किङ्कर्त्तव्य विमूढ होते हैं ॥१४०॥ देवताओं के ऐसा कहने पर तथा उनके द्वारा अभिनन्दित होने पर सुरसा राक्षस का रूप धारण करके समुद्र मार्ग में उपस्थित हो गई ॥ १४१ ॥ सर्व साधारण को भय देने वाला उसका रूप अत्यन्त भयानक था। तैरते हुए हनुमान् के मार्ग को रोककर बोली ॥ १४२ ॥ हे वनवासिश्रेष्ठ ! मेरे अधिपतियों की आज्ञानुसार तुम मेरे भक्ष्य हो, मैं तुमको खाऊंगी। मेरे मुख तथा उदरदरी में जाने के लिये तैयार हो जाओ ॥ १४३ ॥ प्रजापति ने मुझे पहले ही यह वरदान दे रखा है। इतना कह कर अपना विशाल मुख फाड़कर हनुमान् के सामने खड़ी हो गई ॥१४४॥ सुरसा के ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर हनुमान् बोले—दशरथ कुमार रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण तथा धर्मपत्नी जानकी के साथ दण्डक वन में प्रवेश किया है ॥१४५, १४६॥ अन्य कार्य को लेकर जिनके साथ शत्रुता उत्पन्न हो गई है, ऐसे राक्षसराज ने उनकी यशस्विनी धर्मपत्नी सीता का हरण कर लिया है ॥१४७॥ राम की आज्ञा से दूत बनकर मैं जानकी के समीप जा रहा हूँ, तुम उन राम की सहायता करो, क्योंकि तुम भी उन्हीं के राज्य में रहती हो ॥ १४८ ॥ अथवा जानकी को देखकर तथा रामचन्द्र को जानकी का सन्देश सुनाकर मैं पुनः तुम्हारे सम्मुख आ जाऊँगा, मैं यह प्रतीज्ञा करता हूं ॥ १४९ ॥ हनुमान् के ऐसा कहने पर स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली सुरसा बोली—मेरा अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता, यह मुझे वरदान मिला है ॥ १५० ॥ हनुमान् के बल पराक्रम को जानने की इच्छा रखने वाली नागमाता सुरसा उनको जाते देखकर यह वचन बोली ॥१५१॥ हे वनवासी वीर तुम्हें यदि जाना ही है, तो पहले मेरे मुख में तुम्हें प्रवेश करना पड़ेगा, ब्रह्मा का मुझे यही वरदान दिया हुआ है ॥ १५२ ॥* इतना कहकर अपने

---

* सुरसा तथा हनुमान् कथा अणिमा आदि सिद्धि प्राप्त योगी, सिद्ध व्यक्तियों के लिये कठिन नहीं है। पातञ्जल योग दर्शन विभूति पाद में इस प्रकार आकार को घटाने बढ़ाने के लिये लघिमा, गरिमा आदि सिद्धियों का वर्णन है।

अब्रवीत्कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसे । इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् ॥१५३॥
दशयोजनविस्तारो बभूव हनुमांस्तदा । चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् ॥१५४॥
तद्दृष्ट्वा व्यादितं चास्यं वायुपुत्रः सुबुद्धिमान् । दीर्घजिह्वं सुरसया सुघोरं नरकोपमम् ॥१५५॥
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः । तस्मिन् मुहूर्ते हनुमान् बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥१५६॥
सोऽभिपत्याशु तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाजवः । अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥१५७॥
प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते । गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद्वरस्तव ॥१५८॥
तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव । अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ॥१५९॥
अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् । समानयस्व वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥१६०॥
तत्तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् । साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् ॥१६१॥
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः । [सेविते वारिधाराभिः पतगैश्च निषेविते ॥१६२॥
चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते । सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः ॥१६३॥
विमानैः संपतद्भिश्च विमलैः समलंकृते । वज्राशनिसमाघातैः पावकैरुपशोभिते ॥१६४॥
कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरलंकृते । वहता हव्यमत्यर्थं सेविते चित्रभानुना ॥१६५॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते । महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले ॥१६६॥

मुख को फैलाती हुई हनुमान् के सामने खड़ी हो गई। सुरसा के इस प्रकार कहने पर क्रुद्ध वनवासी हनुमान् ॥ १५२ ॥ यह बोले—तुम अपने मुख को फैलाओ, जिससे तुम मुझे खाओगी। दसयोजन विस्तृत मुख वाली सुरसा से इस प्रकार कहकर क्रुद्ध ॥ १५३ ॥ हनुमान् ने अपने योग बल से अपने शरीर को दश योजन विस्तार वाला बनाया। उसे देखकर सुरसा ने भी अपने मुख को बीस योजन विस्तृत कर दिया ॥ १५४ ॥ विशाल जिह्वा वाले, घोर नरक के समान सुरसा के फैलाये हुए उस मुख को देख कर बुद्धिमान् पवनसुत ॥ १५५ ॥ हनुमान् ने मेघ के समान विशाल काय अपने शरीर को सूक्ष्म कर के उस समय अङ्गुष्ठ मात्र बना लिया ॥ १५६ ॥ महाबली हनुमान् उस के मुख में प्रवेश कर पुनः बाहर निकल कर सुरसा से यह वचन बोले ॥१५७॥ मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर गया, अब मैं सीता के पास जाऊँगा। तुम्हारा वरदान भी सत्य हो गया। इस लिये हे दाक्षायणि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं ॥ १५८ ॥ ग्रहण से मुक्त चन्द्र के समान अपने मुख से निकले हुए हनुमान् को देख कर अपने स्वाभाविक रूप को धारण कर सुरसा यह बोली ॥ १५९ ॥ हे वनवासी श्रेष्ठ हनुमन् ! कार्य सिद्धि के लिये तुम सुख पूर्वक जाओ और सीता को रामचन्द्र से मिलाओ ॥ १६० ॥ हनुमान् के इस तृतीय अनुपम कार्य को देख कर सभी व्यक्तियों ने 'साधु साधु' कह कर उनकी प्रशंसा की ॥ १६१ ॥ हनुमान् उस समय दुर्गमनीय समुद्राकाश में वेगवान् गरुड़ के समान गमन करने लगे वहाँ जलधारा बह रही थीं, पक्षिगण जहाँ निवास कर रहे थे ॥ १६२ ॥ ❀ विद्याधर तथा इन्द्र का ऐरावत हाथी जहाँ निवास कर रहा था। सिंह, हाथी, व्याघ्र, पक्षी, सर्प वाहन वाले ॥ १६३ ॥ विमानों से अलंकृत थी। वज्र के समान कठिन स्पर्श वाली अग्नियां जहाँ सुशोभित हो रही थीं ॥ १६४ ॥ अपने पुण्य से जिन्होंने स्वर्ग को जीत लिया ऐसे लोगों से अधिष्ठित, हव्य को वहन करने वाले अग्नि से परिपूर्ण ॥ १६५ ॥ ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, ताराओं से विभूषित, महर्षि, गन्धर्व, नाग, यक्ष आदि से सेवित ॥ १६६ ॥ पवित्र विमल स्थान में, जहाँ विश्वावसु निवास कर

❀ ये श्लोक प्रस्तुत प्रकरण के विरुद्ध हैं। पूर्व यह निश्चय हो चुका है कि हनुमान् जलमार्ग से गये। यह वदतो व्याघात दोष होने से प्रक्षिप्त हैं। ऐसे प्रकरण प्रायः पुराणों में आये हैं, वहीं से उठा कर यहाँ रखे गये हैं। अतः प्रक्षिप्त हैं।

विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते । देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे ॥१६७॥
विताने जीवलोकस्य वितते ब्रह्मनिर्मिते । बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वरैः ॥१६८॥
जगाम वायुमार्गे च गरुत्मानिव मारुतिः । हनुमान् मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ॥१६९॥
कालागरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च । कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥१७०॥
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः । प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन् प्रविशंस्तदा ॥१७१॥
प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनुमान् मारुतात्मजः । भेजेऽम्बरं निरालम्बं लम्बपक्ष इवाद्रिराट् ॥१७२॥
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी । मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी ॥१७३॥
अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता । इदं हि मे महत्सत्त्वं चिरस्य वशमागतम् ॥१७४॥
इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत् । छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः ॥१७५॥
समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृतपराक्रमः । प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे ॥१७६॥
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्ततः कपिः । ददर्श स महत्सत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसः ॥१७७॥
तद्दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननम् । कपिराजेन कथितं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ॥१७८॥
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः । स तां बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान् कपिः ॥१७९॥
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः । तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः ॥१८०॥

रहे थे, देवराज इन्द्र का ऐरावत गज जहाँ निवास करता था, जो कल्याणस्थान सूर्य चन्द्रमा का पथ है ॥ १६७ ॥ मानो प्राणि मात्र के लिये ब्रह्मा ने उसे मण्डप बनाया है, जहाँ बहुत से वीर तथा विद्याधरों का समूह निवास करता था ॥ १६८ ॥ उस वायु मार्ग आकाश से गरुड़ पक्षी के समान हनुमान् चले ॥ १६९ ॥ काले, लाल, पीले, श्वेत वर्ण वाले मेघों को वायु के समान आकृष्ट करते हुए हनुमान् चले हनुमान् के द्वारा आकृष्ट मेघमण्डल रमणीय प्रतीत होता था ॥१७०॥ हनुमान् कभी मेघ जाल में छिप जाते थे कभी उस से बाहर हो जाते थे। इस प्रकार बार बार निकलते तथा छिपते हुए हनुमान् वर्षा काल के चन्द्रमा के समान प्रतीत होते थे ॥ १७१ ॥ सब को दृष्टि गोचर होने वाले पवनसुत हनुमान् निरालम्ब आकाश में पक्षधारी पर्वत के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ १७२ ॥ हनुमान् को इस प्रकार समुद्र में तैरते हुए देख कर सिंहिका नामक राक्षसी जो स्वेच्छा से रूप धारण करने तथा बलवती थी अपने मन में विचारने लगी ॥ १७३ ॥ आज मैं दीर्घ काल के लिये भोजन से तृप्त हो जाऊंगी। आज यह विशालकाय प्राणी चिरकाल के पश्चात् मेरे वश में आया है ॥ १७४ ॥ ऐसा मन में विचार कर उसने हनुमान् की छाया को अवरुद्ध किया छाया के इस प्रकार पकड़े जाने पर हनुमान् मन में चिन्ता करने लगे ॥ १७५ ॥ मैं किसी के द्वारा पकड़ लिया गया हूं। मेरे सम्पूर्ण बल पराक्रम को उसी प्रकार निरर्थक कर दिया गया है जिस प्रकार समुद्र में विशाल नौका प्रतिकूल वायु से रुक जाती है ॥ १७६ ॥ उस समय हनुमान् ऊपर नीचे इधर उधर प्रत्येक दिशा में देखने लगे हनुमान् ने समुद्र में एक विशालकाय प्राणी को जल के ऊपर देखा ॥ १७७ ॥ उस विकराल मुख वाली स्त्री को देख कर हनुमान् विचार करने लगे। वनवासी राजा सुग्रीव ने जिस अद्भुत छायाग्राही व्यक्ति के विषय में कहा था ॥ १७८ ॥ हो न हो यह महापराक्रमी छायाग्राही महाप्राणी है, इस में कोई सन्देह नहीं। बुद्धिमान् छायाग्राही सिंहिका का ही यह कार्य है, इस को अच्छी तरह से समझ कर हनुमान् ने ॥ १७९ ॥ वर्षाकालीन मेघ के समान अपने शरीर के आकार को बढ़ाया हनुमान् के बढ़े हुए विशाल शरीर को देख कर उस सिंहिका ने ॥ १८० ॥

वक्त्रं प्रसारयामास पातालान्तरसंनिभम् । घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत् ॥१८१॥
स ददर्श ततस्तस्या विवृतं सुमहन्मुखम् । कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः ॥१८२॥
स तस्या विवृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः । संक्षिप्य मुहुरात्मानं निपपात महाबलः ॥१८३॥
आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः । ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा ॥१८४॥
ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः । उत्पपाताथ वेगेन मनःसंपातविक्रमः ॥१८५॥
तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य हि । स कपिप्रवरो वेगाद्ववृधे पुनरात्मवान् ॥१८६॥
हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि । स्वयंभुवेव हनुमान् सृष्टस्तस्या विनाशने ॥१८७॥
तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम् । भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् ॥१८८॥
भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम् । साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर ॥१८९॥
यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव । स्मृतिर्धृतिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥१९०॥
स तैः संभावितः पूज्यैः प्रतिपन्नप्रयोजनः । जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः ॥१९१॥
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः प्रतिलोकयन् । योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥१९२॥
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् । द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥१९३॥
सागरं सागरानूपं सागरानूपजान् द्रुमान् । सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयन् ॥१९४॥
स महामेघसंकाशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् । निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान् मतिम् ॥१९५॥

अपने मुख को विस्तार रूप में फैलाया । मेघ के समान गर्जन करती हुई वह हनुमान् के ऊपर टूट पड़ी ॥ १८१ ॥ हनुमान् ने अपनी ओर आती हुई उस के विकराल मुख को देखा । वज्राङ्ग हनुमान् ने उस के विशाल शरीर, विकृत मुख तथा मर्मस्थलों को ध्यान पूर्वक देखा ॥ १८२ ॥ विशाल काय हनुमान् अपने शरीर को छोटा बना कर उसके मुख में कूद पड़े ॥ १८३ ॥ मुख में कूदते हुए हनुमान् को सिद्ध तथा चारणों ने इस प्रकार पर्व (ग्रहण) के समय जैसे राहु (पृथ्वी की छाया) सम्पूर्ण चन्द्र को ग्रहण कर लेता है ॥ १८४ ॥ वनवासी वीर हनुमान् ने उसके मर्म स्थलों को विदीर्ण कर दिया तत्पश्चात् मन के समान वेग वाले पराक्रमी हनुमान् आगे बढ़े ॥ १८५ ॥ अपने भाग्य से, धैय तथा चातुर्य से हनुमान् ने उसको मार कर पश्चात् गमन किया । संयमी, वनवासी वीर हनुमान् पुनः वेग से आगे बढ़े ॥ १८६ ॥ हनुमान् के द्वारा आहत होने पर वह जल में गिर पड़ी । प्रजापति परमेश्वर ने इसको मारने के लिये मानो हनुमान् का सृजन किया ॥ १८७ ॥ वनवासी हनुमान् के द्वारा मर कर गिरी हुई उस सिंहिका को देख कर आकाश (जल से बाहर) में रहने वाले व्यक्ति उस उत्तम तैरने वाले हनुमान् से बोले ॥ १८८ ॥ हे वनवासी वीर! तुम ने आज इस महान् प्राणी को मार कर अत्यन्त भयङ्कर तथा विस्मयजनक कार्य किया है । अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि करो । आप का कल्याण हो ॥ १८९ ॥ धैर्य, स्मृति, बुद्धि, चातुर्य — ये चार वस्तुएँ जिस के पास होती हैं, जो कि आप के पास हैं, वह अपने किसी कर्म में विफल नहीं होता ॥ १९० ॥ पूजनीय हनुमान् उन लोगों के द्वारा सम्मानित हो कर तथा अपने प्रयोजन को सिद्ध करके आकाशचारी गरुड़ के वेग के समान पुनः आगे चल पड़े ॥ १९१ ॥ सौ योजन के पार जाने पर हनुमान् ने अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई पश्चात् उन्होंने भूमि पर वन पंक्ति को देखा ॥ १९२ ॥ मार्ग में चलते हुए हनुमान् ने नाना प्रकार के वृक्षों से भूषित द्वीप तथा मलय चन्दन की वाटिकाओं को देखा ॥ १९३ ॥ समुद्र का तट, समुद्र की खाड़ियां, समुद्र के तट पर होने वाले वृक्षों तथा समुद्र में गिरने वाली नदियों के संगम (मुहाना) को देखा ॥ १९४ ॥ अपने विशाल काय शरीर को देख कर संयमी बुद्धिमान् हनुमान् ने मन में विचार किया ॥ १९५ ॥ मेरे शरीर की विशालता तथा मेरे वेग पराक्रम को देख कर राक्षस लोग अत्यन्त विस्मित

कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः। मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महाकपिः ॥१९६॥
ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम्। पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् ॥१९७॥
[तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनूमान् प्रकृतौ स्थितः। त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः ॥१९८॥]

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम्।
परैरशक्यं प्रतिपन्नरूपः समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ॥ १९९ ॥
ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे विचित्रकूटे निपपात कूटे।
सकेतकोद्दालकनारिकेले महाद्रिकूटप्रतिमो महात्मा ॥ २०० ॥
ततस्तु संप्राप्य समुद्रतीरं समीक्ष्य लङ्कां गिरिराजमूर्ध्नि।
कपिस्तु तस्मिन्निपपात पर्वते विधूय रूपं व्यथयन्मृगद्विजान् ॥ २०१ ॥
स सागरं दानवपन्नगायुतं बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम्।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥ २०२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सागरलङ्घनं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

हो जायेंगे, ऐसा उन्होंने विचारा ॥ १९६ ॥ समुद्र सन्तरण के समय अपने शरीर को जो विशाल बनाया था, उसको पुनः उसी प्रकार अपनी पूर्वावस्था में लाये जैसे मोह के नष्ट होने पर ज्ञानी अपनी अवस्था को प्राप्त होता है ॥ १९७ ॥ बढ़े शरीर के आकार को हनुमान् इस प्रकार स्वाभाविक आकार में लाये जैसे बलि के दर्प को तोड़ने के लिये विष्णु ने छोटा रूप धारण किया था ॥ १९८ ॥ नाना प्रकार के सुन्दर रूप धारण करने वाले, अपनी कार्य सिद्धि पर अटल विश्वास रखने वाले, आत्मज्ञानी तथा जो कार्य दूसरों से नहीं हो सकता उसे पूर्ण करने वाले हनुमान् समुद्र के उस पार पहुंच कर ॥ १९९ ॥ केतक, उद्दालक, नारियल आदि अन्य अनेक प्रकार के फल फूल वाले वृक्षों से परिपूर्ण लम्ब नामक पर्वत के रमणीय शिखर पर विशालकाय हनुमान् उतरे ॥ २०० ॥ समुद्र के उस पार त्रिकूट नामक पर्वत के शिखर पर बसी हुई नगरी लङ्का को देख कर वहाँ के वनवासी पशु पक्षियों को आतङ्कित करते हुए अपने स्वाभाविक रूप में हनुमान् उतरे ॥ २०१ ॥ दानवाकार जन्तु तथा सर्प आदि से युक्त विशाल तरङ्गों से तरङ्गित, विशाल समुद्र को अपने बल पराक्रम से तैर कर समुद्र के दूसरे तट पर देवपुरी अमरावती के समान लङ्का को देखा ॥ २०२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दर काण्ड का 'समुद्र को पार करना' विषयक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

निशागमप्रतीक्षा

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः । त्रिकूटशिखरे लङ्कां स्थितां स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥
ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् । अभिवृष्टः स्थितस्तत्र बभौ पुष्पमयो यथा ॥ २ ॥
योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः । अनिःश्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥
शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि । किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ ४ ॥
स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः । जगाम वेगवाल्लँङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥
शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च । गण्डवन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ६ ॥
शैलांश्च तरुभिश्छन्नान् वनराजीश्च पुष्पिताः । अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान् प्लवगर्षभः ॥ ७ ॥
स तस्मिन्नचले तिष्ठन् वनान्युपवनानि च । स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥ ८ ॥
सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान् । प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि॥ ९ ॥
प्रियङ्गून् गन्धपूर्णांश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा । असनान् कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥ १० ॥
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि । पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान् ॥ ११ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलायुताः । आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च जलाशयान् १२
संततान् विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः । उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ १३ ॥

द्वितीय सर्ग

रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा

अन्यों के द्वारा अनतिक्रमणीय समुद्र को पार करके स्वस्थ अवस्था में महाबली हनुमान् ने त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लङ्का को देखा ॥ १ ॥ पश्चात् वायु के द्वारा वृक्षों से हुई पुष्प वर्षा से पराक्रमी हनुमान् पुष्पमय प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥ उत्तम पराक्रम वाले हनुमान् सौ योजन विस्तार वाले समुद्र को तैरकर थकावट को नहीं प्राप्त हुए और न थकावट की साँस ली ॥ ३ ॥ अनेकों शतयोजन से अधिक भी मैं समुद्र को तैर सकता और जो सौ योजन मात्र है उसकी तो बात ही क्या ॥ ४ ॥ बलवान् तथा तैरने वालों में श्रेष्ठ हनुमान् सफलतापूर्वक समुद्र को पार कर लंका में उपस्थित हो गये ॥ ५ ॥ जहाँ पर हरित वर्ण की घास है, जहाँ सुगन्धित तथा मधुपूर्ण वन हैं तथा स्थान स्थान पर पर्वत हैं, उसके बीच से चले ॥ ६ ॥ पुष्पित लताओं तथा वृक्षों से परिपूर्ण वन तथा पर्वतों को अतिक्रमण करते हुए तेजस्वी हनुमान् आगे चले गये ॥ ७ ॥ उस पर्वत की चोटी पर बैठे हुए पवनतनय हनुमान् ने वन-वाटिकाओं को देखा और त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी लंका को देखा ॥ ८ ॥ देवदार, कर्णिकार, खजूर, चिरौंजी, जम्बीर, कुटज, केतकी, फूले हुए प्रियंगु ॥ ९ ॥ कदम्ब, सुगन्धित सप्तच्छद, असन, कचनार, करवीर पुष्पित वृक्षों को । ॥ १० ॥ फूलों से परिपूर्ण तथा कलियों से परिपूर्ण थे ॥ ११ ॥ हंस, सारस तथा कमलों से परिपूर्ण बावड़ी, विविध प्रकार के रमणीय क्रीड़ा स्थल तथा नाना प्रकार के सुन्दर जलाशयों को ॥ १२ ॥ निरन्तर सर्व ऋतुओं में फूलने फलने वाले वृक्षों से परिपूर्ण, रमणीय उद्यान आदि स्थानों को वीर हनुमान् ने देखा ॥ १३ ॥

समासाद्य च लक्ष्मीवाल्लँङ्कां रावणपालिताम् । परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥१४॥
सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् । समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैः उग्रधन्विभिः ॥१५॥
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् । गृहैश्च ग्रहसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः ॥१६॥
पाण्डराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् । अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजमालिनीम् ॥१७॥
तोरणैः काञ्चनैर्दीप्तां लतापङ्क्तिविचित्रितैः । ददर्श हनुमाँल्लङ्कां दिवि देवपुरीमिव ॥१८॥
गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डरैर्भवनैः शुभैः । स ददर्श कपिः श्रीमान् पुरमाकाशगं यथा ॥१९॥
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा । प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् पुरीम् ॥२०॥
वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम् । शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम् ॥२१॥
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा । द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥२२॥
कैलासनिलयप्रख्यामालिखन्तमिवाम्बरम् । डीयमानमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥२३॥
संपूर्णां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरिव । तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च समीक्ष्य सः ॥२४॥
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥
आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः । न हि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥२५॥
इमां तु विषमां दुर्गां लङ्कां रावणपालिताम् । प्राप्यापि स महाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥२६॥

प्रतिभाशाली हनुमान् कमलों से परिपूर्ण जलवाली खाइयों से घिरी हुई रावण पालित लङ्का को समीप से हनुमान् ने देखा ॥ १४ ॥ सीता के अपहरण से शंकित लंका की रक्षा के लिये दृढ़ वीर धनुर्धारी राक्षसों को रावण ने नियुक्त कर रखा था, जो सब ओर विचरण कर रहे थे ॥ १५ ॥ जो महापुरी (लङ्का) सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई थी, शरद् कालीन मेघ के समान जहाँ ऊँचे विशाल भवन सुशोभित हो रहे थे ॥ १६ ॥ पीत वर्ण की सड़क तथा गलियों से युक्त, पताका-ध्वजाओं से सुशोभित, सैकड़ों अट्टालिकाओं से युक्त ॥ १७ ॥ उत्तम तोरण तथा दिव्य काञ्चन से निर्मित लता-पंक्तियों से परिपूर्ण, देवों की देवपुरी के समान उस लङ्का को हनुमान् ने देखा ॥१८॥ श्वेत और पीले वर्ण के उत्तम भवनों से परिपूर्ण, पर्वत के शिखर पर स्थित उस लङ्का को जो हरेक बात में आकाश को स्पर्श कर रही है, हनुमान् ने देखा ॥ १९ ॥ जिसका निर्माण विश्वकर्मा ने किया, जिसकी रक्षा स्वयं रावण कर रहा है, पर्वत के शिखर पर स्थित होने के कारण आकाश में उड़ती हुई सी लङ्का को हनुमान् ने देखा ॥ २० ॥ खाई तथा चहारदीवारी लंका नगरी के जघन के समान थे, अगाध जल राशि तथा वन जिसके वस्त्र के समान थे, शतघ्नी (तोप) तथा शूल नामक अस्त्र जिसके केश के समान थे और अट्टालिकाएँ कर्णभूषण के समान थीं ॥ २१ ॥ पूर्ण मन से ही विश्वकर्मा ने जिस लंका को बनाया है, उसके उत्तर द्वार पर जाकर हनुमान् चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ वह उत्तरी द्वार कैलास पर्वत के समान भवनों से परिपूर्ण, मानो आकाश को छूने वाले ऐसे समुन्नत भवनों से युक्त, जो मानो निराधार आकाश में ठहरे हुए हैं ॥ २३ ॥ विषधर सर्पों से पूर्ण गुफा के समान जिस नगरी की रक्षा भयङ्कर राक्षस लोग कर रहे थे, जिसकी खाई का काम चौतरफा समुद्र कर रहा था और भयङ्कर रावण जहां स्वयं शत्रु है, इन सब बातों को विचार कर हनुमान् चिन्ता मग्न हो गये ॥ २४ ॥ सुग्रीव के वनवासी सैनिक यहाँ आकर भी व्यर्थ परिश्रम वाले हो जायेंगे, क्योंकि देवताओं से भी अजेय यह लंका संग्राम के द्वारा जीती नहीं जा सकती ॥ २५ ॥ अनाक्रमणीय, रावण पालित, इस दुर्गम लंका नगरी में आकर भी दीर्घबाहु राम क्या कर सकेंगे ॥ २६ ॥ आसुरी प्रवृत्ति वाले इन राक्षसों में शान्ति से काम चलने वाला नहीं । दान,

अवकाशो न सान्त्वस्य राक्षसेष्वभिगम्यते । न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥२७॥
चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां महात्मनाम् । वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥२८॥
यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा । तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥२९॥
ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः । गिरिशृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदये रतः ॥३०॥
अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी । प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥३१॥
उग्रौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः । वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥३२॥
लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरीं मया । प्रवेष्टुं प्राप्तकालं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥३३॥
तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः । हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥३४॥
येनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् । अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥३५॥
न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः । एकामेकश्च पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥३६॥
भूताश्चार्था विपद्यन्ते देशकालविरोधिताः । विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥३७॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते । घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३८॥
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् । लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद्वृथा ॥३९॥
मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः । भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥४०॥

भेद तथा युद्ध से भी यहाँ कार्य सिद्ध होता नहीं दिखाई देता ॥ २७ ॥ वेगवान् वालीपुत्र अङ्गद सेनापति नील मेरी तथा राजा सुग्रीव इन चारों की ही गति लंका के प्रवेश में समर्थ हो सकती है ॥ २८ ॥ इसके पहले मैं जानकी का पता लगाता हूँ कि वह जीवित है अथवा नहीं। जानकी को देखने के पश्चात् ही इस पर विचार करूँगा कि आगे कैसे क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ राम के कार्य की सिद्धि में रत हनुमान् उस समय उसी पर्वत पर बैठकर सीता के अन्वेषण वाले उपाय पर विचार करने लगे ॥ ३० ॥ क्रूर बलवानों से युक्त तथा राक्षसों से रक्षित इस लंका नगरी में मैं इसी रूप में प्रवेश नहीं कर सकता अर्थात् मुझे इसी रूप में प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥ महान् ओजवाले, महा पराक्रमी तथा ये सभी राक्षस अत्यन्त बली हैं। जानकी की खोज के समय इन सबके साथ मुझे मायावी बर्त्ताव करना पड़ेगा ॥ ३२ ॥ इस महान् कार्य की सिद्धि के लिये मुझे लंका में रात्रि के समय प्रवेश करना चाहिये और रूप भी इस प्रकार करूँ जो कभी मैं प्रकट हो सकूं, कभी छिप सकूँ ॥ ३४ ॥ देव और असुरों से भी अनतिक्रमणीय लंका को देखकर हनुमान् बार २ लम्बी साँस लेते हुए चिन्ता करने लगे ॥ ३४ ॥ वह कौन सा उपाय है जो दुरात्मा राक्षसराज रावण से अपने को बचा कर मैं सोता को देखूं ॥ ३५ ॥ मैं अकेला ही एकान्त में जनरहित जानकी को देखूं जिससे कि लब्धकीर्त्ति रामचन्द्र के कार्य की क्षति न हो ॥ ३६ ॥ अविवेकी दूतों के द्वारा देश काल के विरुद्ध आचरण करने से निश्चित कार्य भी इस प्रकार असफल हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चित किया हुआ कार्यक्रम भी सफल नहीं होता। यदि दूत अविवेकी हुआ तो निश्चित कार्य भी अनिश्चित हो जाते हैं ॥३८॥ मेरा यह कार्य नष्ट न हो, मेरी सोची विचारी बात अविवेकपूर्ण न हो और इतने प्रयास से समुद्र को तैरकर यहाँ आना यह सब किसी प्रकार व्यर्थ न हो ('ऐसा उपाय मुझे करना चाहिये) ॥ ३९ ॥ यदि कहीं मैं राक्षसों के द्वारा देख लिया गया तो रावण के दण्ड दाता लब्ध ख्याति रामचन्द्र के सम्पूर्ण कार्य व्यर्थ हो जायेंगे ॥ ४० ॥ यहाँ राक्षस के रूप में भी यदि मैं कहीं रहना चाहूँ तो भी मैं यहाँ के निवासी राक्षसों की दृष्टि से नहीं बच सकता। राक्षसों के

न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः । अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥४१॥
वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम । न ह्यस्त्यविदितं किंचिद्राक्षसानां बलीयसाम् ॥४२॥
इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः । विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हीयते ॥४३॥
तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः । लङ्कामभिगमिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥४४॥
रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् । विचिन्वन् भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम्॥४५॥
इति संचिन्त्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः । आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥४६॥
सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः । पृषदंशकमात्रः सन् बभूवाद्भुतदर्शनः ॥४७॥
प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्प्लुत्य वीर्यवान् । प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्तमहापथाम् ॥४८॥
प्रासादमालावितानां स्तम्भैः काञ्चनराजतैः । शातकुम्भमयैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥४९॥
सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् । तलैः स्फाटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ॥५०॥
वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविराजितैः । तलैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥५१॥
काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् । लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ॥५२॥
अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः । आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥५३॥

अतिरिक्त रूप रहने की तो बात ही क्या है ॥ ४१ ॥ यहाँ वायु भी छिपकर कोई कार्य करना चाहे तो उसकी भी गति नहीं है, ऐसा मेरा विचार है । क्योंकि इस लंका में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसको भीषण कर्म करने वाले राक्षस न जानते हों ॥ ४२ ॥ यदि मैं यहाँ अपने रूप में छिप कर भी कार्य करूँ, तो भी राक्षसों के द्वारा मैं समाप्त कर दिया जाऊँगा और मेरे नष्ट होने पर मेरे स्वामी रामचन्द्र का कार्य भी नष्ट हो जायेगा ॥ ४३ ॥ इसलिये अपने रूप में ही किन्तु अपनी आकृति को छोटा बना कर रात्रि के समय रामचंद्र के कार्य की सिद्धि के लिये लंका में प्रवेश करूँगा ॥ ४४ ॥ रावण की दुर्गमनीय लंका पुरी में रात्रि में प्रवेश करके प्रत्येक मकान में प्रवेश करके प्रत्येक मकान में प्रवेशपूर्वक खोजते हुए जानकी का पता लगाऊँगा ॥ ४५ ॥ जानकी के दर्शन के लिये उत्सुक वीर हनुमान् ऐसा निश्चय करके सन्ध्या समय की प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि में हनुमान् अपने शरीर आकृति को लघु बना कर जैसे सिंह बिल्ली की आकृति में हो जाय, उसी प्रकार प्रतीत होने लगे ॥ ४७ ॥ जिसमें विशाल सड़कें बनी हुई हैं, ऐसी रमणीय लंका पुरी में पराक्रमी हनुमान् सन्ध्या के समय शीघ्र ही जाकर प्रविष्ट हुए ॥ ४८ ॥ महल अटारियों से परिपूर्ण, जिसमें सोनें के समान खम्भे लगे हुए तथा जिसमें सोने की जालियाँ भी लगी हुई हैं, ऐसी लंका नगरी उस गन्धर्व नगर के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ४९ ॥ उस लंका में सात तथा आठ मंजिल वाले ऐसे मकानों को हनुमान् ने देखा जिनके धरातल (फर्श) स्फटिक मणियों से निर्मित थे तथा जिनमें सोने की कारीगरी की गई थी ॥ ५० ॥ वैदूर्यमणि से चित्रित जिनके धरातल निर्मित हैं, मोतियों की जाली जहाँ लगी हैं, ऐसे राक्षसों के भवन वहाँ सुशोभित हो रहे थे ॥ ५१ ॥ विचित्र स्वर्ण से निर्मित जिन ॥ ५२ ॥ सीता के दर्शन के लिये उत्सुक महाबली हनुमान् अचिन्त्य तथा अद्भुत आकार प्रकार वाली लंकापुरी को देखकर मन से प्रसन्न भी हुए तथा दुःखी भी हुए ॥ ५३ ॥ सात मंजिल वाले पीले वर्ण के मकानों की जहाँ पंक्ति लगी हुई है, मूल्यवान् सोने की जहाँ जालियाँ तथा तोरण लगे हुए हैं तथा बड़े २

स पाण्डरोद्विद्धविमानमालिनीं महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां क्षपाचरैर्भीमबलैः समावृताम् ॥५४॥
चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वंस्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकमुत्तिष्ठते नैकसहस्ररश्मिः ॥५५॥
शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णमुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ॥५६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे निशागमप्रतीक्षा नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

लङ्काधिदेवताविजयः

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसंनिभे । सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः । रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥
शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् । सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥

राक्षस जिसकी रक्षा में लगे हुए हैं, राक्षसराज रावण जिसका स्वयं शासक है और जिस नगरी की कीर्त्ति दूर तक फैली हुई है ॥ ५४ ॥ अनेक सहस्र किरणों वाला चन्द्र भी अपने तारागण से युक्त अपनी किरणों को फैलाता हुआ मानो हनुमान् की सहायतार्थ वहाँ उपस्थित हो गया (उदित हो गया) ॥५५॥ वीर हनुमान् ने शंख, दुग्ध, मृणाल (भिस) के समान श्वेत वर्ण वाले शोभायमान उदय होते हुए चन्द्रमा को इस प्रकार देखा जैसे किसी सरोवर में राजहंस तैर रहा हो ॥५६॥

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा' विषयक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

लङ्का रक्षिका पर विजय

विशाल मेघ के समान त्रिकूटाचल पर मेधावी पवनसुत हनुमान् धैर्य का आश्रय लेकर ॥ १ ॥ रमणीक वन तथा उत्तम जलाशयों से परिपूर्ण रावण पालित लङ्कापुरी में रात्रि के समय प्रविष्ट हुए ॥ २ ॥ शरद् मेघ के समान भवनों से जो सुशोभित हो रही थी, समुद्र के गर्जन के समान जिसमें शब्द हो रहे थे तथा समुद्र की शीतलवायु से जो सेवित हो रही थीं ॥ ३ ॥ पुष्ट बलवान् सैनिकों से वह नगरी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जैसे दृढ़ वृक्षों से वृक्ष दुर्ग सुशोभित होता है । जिसके चौराहे पर सुन्दर बैठने के स्थान निर्मित

सुपुष्टबलसंगुप्तां यथैव विटपावतीम् । चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥
भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव । तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम् ॥ ५ ॥
चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम् । शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥
किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम् । आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ॥ ७ ॥
विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः । जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः ॥ ८ ॥
वज्रस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः । तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डरैः ॥ ९ ॥
वैदूर्यतलसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः । चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः ॥ १० ॥
क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः । तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः प्रतिनादिताम् ॥ ११ ॥
वस्वोकसाराप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः । खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान् कपिः ॥ १२ ॥
तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् । अनुत्तमामृद्धिमतीं चिन्तयामास वीर्यवान् ॥ १३ ॥
नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात् । रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधधारिभिः ॥ १४ ॥
कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः । प्रसिद्धेयं भवेद्भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि ॥ १५ ॥
विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः । ऋक्षस्य केतुमालस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥ १६ ॥
समीक्ष्य च महाबाहू राघवस्य पराक्रमम् । लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान् कपिः ॥ १७ ॥
तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसकाम् । यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥ १८ ॥

हैं तथा प्रत्येक दरवाजे पर पीत वर्ण के तोरण लगे हुए हैं ॥ ४ ॥ नाग जाति के वीरों से रक्षित वह नगरी भोगवती के समान शोभायमान हो रही थी। बिजली मेघ तथा नक्षत्रगण से सुशोभित हो रही थी ॥ ५ ॥ देवपुरी अमरावती के समान जहाँ वायु का गर्जन हो रहा था। जो सोने की विशाल चहारदीवारी से घिरी हुई थी ॥ ६ ॥ किङ्किणी (घुंघरू) से युक्त ध्वजाओं से जो अलंकृत हो रही थी, ऐसी नगरी लङ्का के समीप जाकर हनुमान् प्रसन्नता पूर्वक उसकी चहारदीवारी पर चढ़ गये ॥ ७ ॥ जिसमें मकान के द्वार सोने के बने हुए हैं, वैदूर्यमणि की जहाँ वेदियाँ बनी हुई हैं, ऐसी नगरी को देखकर हनुमान् चकित हो गये ॥ ८ ॥ स्फटिक मणि, मुक्ता तथा सोने की जहाँ वेदिका (बैठने के स्थान) बनी हुई है, जिनका धरातल श्वेत चांदी का बना हुआ है ॥ ९ ॥ वैदूर्यमणि की जहाँ सीढ़ियां लगी हुई हैं, स्फटिक मणि के धरातल होने से जो धूल रहित हो रही थी। ऊपरी भाग में जहाँ सुन्दर छोटी २ कोठरियाँ बनी हैं, जो देखने में मानों उड़ती हुई प्रतीत हो रही हैं ॥१०॥ सारस तथा मयूर पक्षी के जहाँ शब्द हो रहे हैं, राजहंसों से युक्त, वाद्य और आभूषणों के घोष से जो निनादित हो रही थी ॥११॥ आकाश में उठी हुई अमरावती के समान उस लङ्का नगरी को देखकर हनुमान् अति प्रसन्न हुए ॥१२॥ धन-धान्य से परिपूर्ण राक्षसराज रावण की उस शोभायमान नगरी लङ्का को देखकर पराक्रमी हनुमान् चिन्ता करने लगे ॥१३॥ शस्त्रधारी रावण के सैनिकों से रक्षित यह नगरी अन्यों के द्वारा बलपूर्वक भी अजेय है ॥१४॥ कुमुद, राजकुमार अङ्गद, वनवासिश्रेष्ठ सुषेण, सेनापति मैन्द और द्विविद ये लोग इस प्रसिद्ध नगरी में प्रवेश कर सकते हैं ॥१५॥ सूर्यनन्दन सुग्रीव, वनवासी वीर कुशपर्वा, ऋक्षराज जाम्बवान् तथा मैं भी इस नगरी में प्रवेश कर सकता हूँ ॥ १६ ॥ महाबाहु रामचन्द्र तथा वीर लक्ष्मण के अजेय पराक्रम का विचार करते हुए हनुमान् अति प्रसन्न हो गये ॥१७॥ वह नगरी वस्त्रालङ्कार से अलंकृत नायिका के समान सुशोभित हो रही थी। जहाँ की रत्नराशि उस नगरी नायिका के वस्त्र रूप में प्रतीत हो रहे हैं, जहाँ की गोशाला तथा भवन उस नगरी नायिका के कर्णभूषण के समान प्रतीत हो रहे हैं। जहाँ के अस्त्रशस्त्र पूर्ण यन्त्रागार नगरी नायिका के स्तन प्रतीत हो रहे हैं ॥ १८ ॥ देदीप्यमान गृहों तथा

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महागृहैः । नगरीं राक्षसेन्द्रस्य ददर्श स महाकपिः ॥१९॥
अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाबलम् । नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् ॥२०॥
सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का रावणपालिता । स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना ॥२१॥
पुरस्तात्कपिवर्यस्य वायुसूनोरतिष्ठत । मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम् ॥२२॥
कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय । कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणा धरन्ति ते ॥२३॥
न शक्या खल्वियं लङ्का प्रवेष्टुं वानर त्वया । रक्षिता रावणबलैरभिगुप्ता समन्ततः ॥२४॥
अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम् । कथयिष्यामि ते तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥२५॥
का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे । किमर्थं चापि मां रुद्ध्वा निर्भर्त्सयसि दारुणा ॥२६॥
हनूमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी । उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् ॥२७॥
अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः । आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥२८॥
न शक्या मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरी त्वया । अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया ॥२९॥
अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम । सर्वतः परिरक्षामि ह्येतत्ते कथितं मया ॥३०॥
लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः । यत्नवान् स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैलइवापरः ॥३१॥
स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुंगवः । आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान् प्लवगर्षभः ॥३२॥
द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम् । इत्यर्थमिह संप्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥३३॥

प्रकाशित दीपकों के द्वारा जिस राक्षसेन्द्र की नगरी के सम्पूर्ण अन्धकार दूर हो गये हैं, ऐसी नगरी को हनुमान् ने देखा ॥१९॥ लङ्का नगरी में वनवासी वीर हनुमान् को प्रवेश करते हुए नगरी की अधिष्ठात्री रक्षिका जिसका नाम लङ्का था उसने देखा ॥२०॥ भयङ्कर मुख वाली, रावण के द्वारा नगर रक्षिका के पद पर नियुक्त, सदैव उद्यत रहने वाली रक्षिका लङ्का ने वीर हनुमान् को देखा ॥२१॥ पवनसुत वीर हनुमान् के समक्ष आकर वह खड़ी हो गई और घोर गर्जन करती हुई कर्कश शब्दों में हनुमान् से बोली ॥२२॥ हे वन-वासी ! तू कौन है, किस कार्य से यहाँ आया है ? प्राणदण्ड के पूर्व तू ये सारी बातें बता ॥२३॥ हे वनवासी सर्वत्र हरेक प्रकार से रावण के सैनिकों से सुरक्षित इस लंका नगरी में तुम प्रवेश नहीं कर सकते हो ॥२४॥ अपने सामने खड़ी हुई नगर रक्षिका से वीर हनुमान् बोले—जो तुम मुझसे पूछ रही हो, मैं अपना परिचय दूँगा ॥२५॥ भयङ्कर नेत्र वाली तुम कौन हो जो इस नगरी के द्वार पर खड़ी हो। हे कर्कशभाषिणी तुम क्रोध में आकर मुझे क्यों डांट रही हो ॥२६॥ स्वच्छन्द रूप धारण करनेवाली वह रक्षिका लङ्का हनुमान् की इन बातों को सुनकर क्रोध पूर्ण कठोर शब्दों में हनुमान् से यह वचन बोली ॥२७॥ अजेय शक्तिवाली राक्षसराज रावण की आज्ञासे इस नगर की रक्षा करनेवाली मैं रक्षिका हूँ ॥२८॥ मेरा तिरस्कार करके मेरी आज्ञा के बिना इस नगरी में कोई प्रवेश नहीं कर सकता। आज मेरे द्वारा मारे जाने पर प्राणहीन तुम यहीं सोओगे ॥ २९ ॥ हे वनवासी ! लङ्का की रक्षिका होने के नाते मैं स्वयं नगरी लङ्का हूं। हरेक प्रकार से मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ। इस लिये मैं तुम से इन शब्दों में बोल रही हूँ ॥ ३० ॥ लङ्का के इन वचनों को सुन कर पवनसुत हनुमान् अपने कर्त्तव्य का निश्चय करते हुए अचल पर्वत के समान उसके सामने खड़े रहे ॥ ३१ ॥ उस भयंकर रूप वाली स्त्री को देख कर मेधावी तथा धैर्यशाली वनवासि श्रेष्ठ हनुमान् उस से बोले ॥ ३२ ॥ अट्टालिकाओं तथा रमणीय कृति से पूर्ण इस लङ्का को देखने के लिये मैं यहाँ आया हूँ। इस को देखने की मुझे प्रबल इच्छा है ॥ ३३ ॥ लङ्का के उद्यान वाटिका, रमणीय वन तथा मुख्य मुख्य महलों को देखने के लिये ही

वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च । सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥३४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी । भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ॥३५॥
मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिता । न शक्यमद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ॥३६॥
ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम् । दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ॥३७॥
ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयावहम् । तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥३८॥
ततः स कपिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम् । ननाद सुमहानादं वीर्यवान् पवनात्मजः ॥३९॥
ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः । मुष्टिनाभिजघानैनां हनूमान् क्रोधमूर्छितः ॥४०॥
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः । सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ॥४१॥
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ॥
ततस्तु हनुमान् प्राज्ञस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम् । कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं तु ताम् ॥४२॥
ततो वै भृशसंविग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम् । उवाचागर्वितं वाक्यं हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥४३॥
प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम । समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥४४॥
अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम । निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ॥४५॥
इदं च तथ्यं शृणु वै ब्रुवत्या मे हरीश्वर । स्वयंभुवा पुरा दत्तं वरदानं यथा मम ॥४६॥
यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् । तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥४७॥

मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३४ ॥ हनुमान् की इन बातों को सुन कर वह कामरूपिणी लङ्का की रक्षिका पुनः कठोर शब्दों में हनुमान् से यह बोली ॥ ३५ ॥ हे दुर्बुद्धि अधम वनवासी ! मुझे विना जीते राक्षसराज रावण पालित लंका को तुम नहीं देख सकते ॥ ३६ ॥ पश्चात् हनुमान् पुनः उस राक्षसी से बोले—हे कल्याणि ! इस नगरी को देखने के पश्चात् मैं अपने स्थान को चला जाऊँगा ॥ ३७ ॥ हनुमान् के ऐसा कहने पर राक्षसी लङ्का ने भयङ्कर गर्जन करके हनुमान् के ऊपर थप्पड़ से प्रबल प्रहार किया ॥ ३८ ॥ पश्चात् पराक्रमी बनवासी वीर हनुमान् राक्षसी लङ्का के द्वारा इस प्रकार ताड़ित होने पर भयङ्कर गर्जन किया ॥ ३९ ॥ गर्जन के पश्चात् क्रोधावेश में आए हुए हनुमान् ने अपने बायें हाथ की अङ्गलियों को एकत्र कर के उस राक्षसी पर घूंसे से प्रहार किया ॥ ४० ॥ यह स्त्री जाति है, ऐसा समझ कर उस पर विशेष क्रोध नहीं किया, किन्तु विकराल मुख वाली वह निशाचरी उस हल्के एक घूंसे ही के प्रहार से शिथिल अङ्ग हो कर भूमि पर सहसा गिर पड़ी ॥ ४१ ॥ उसको गिरी हुई देख कर तथा यह स्त्री है, ऐसा समझ कर तेजस्वी वीर हनुमान् ने उस पर दया दिखलाई ॥ ४२ ॥ घूंसा खाने के पश्चात् उद्विग्न चित्त वाली वह लङ्का दीनता पूर्वक गद्गदवाणी में हनुमान् से बोली ॥ ४३ ॥ हे विशाल बाहु वनवासी वीर मुझ पर कृपा करो और मेरी रक्षा करो । हे सौम्य ! धैर्यशाली महाबली व्यक्ति प्रतिज्ञा के धनी होते हुए मर्यादित रहते हैं ॥ ४४ ॥ हे वनवासी वीर ! मैं स्वयं इस लङ्का नगरी की प्रधान रक्षिका हूँ । हे महाबली ! आप ने अतुल बल पराक्रम से मुझ को जीत लिया ॥ ४५ ॥ हे हरीश्वर ! मैं एक आपबीती सच्ची घटना कह रही हूँ उसको सुनिये । एक बार मुझ पर प्रसन्न हो कर स्वयं ब्रह्मा (चतुर्वेद वक्ता योगी) ने मुझे वरदान देते हुए यह कहा था ॥ ४६ ॥ जब कोई बनवासी वीर तुम्हें अपने पराक्रम से जीत लेगा, उस समय तुम यह समझना कि राक्षस वंश पर अब भयङ्कर घोर विपत्ति आ गई ॥ ४७ ॥ हे सौम्य ! आप के दर्शन तथा इन घटित घटनाओं से वह समय अब निश्चित आ गया । ब्रह्मा का कहा हुआ वह वचन निश्चित है उस में किसी प्रकार का

स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात् । स्वयंभुविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ॥४८॥
सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः । रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपस्थितः ॥४९॥
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम् । विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि ॥५०॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वर पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम् ।
दिदृक्षया त्वं जनकात्मजां सतीं विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे लङ्काधिदेवताविजयो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थः सर्गः

लङ्कापुरीप्रवेशः

स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम् । विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ॥ १ ॥
अद्वारेण महाबाहुः प्राकारमभिपुप्लुवे । निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः । चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥
प्रविष्टः सत्त्वसंपन्नो निशायां मारुतात्मजः । स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ॥ ४ ॥

व्यतिक्रम नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ सीता के निमित्त को ले कर दुरात्मा राक्षसराज रावण तथा सम्पूर्ण राक्षस वंश के विनाश का समय उपस्थित हो गया है ॥ ४९ ॥ हे बनवासि श्रेष्ठ हनुमान् ! रावण पालित लङ्का में अब तुम स्वच्छन्द प्रवेश करो और जो जो काम यहाँ करना चाहते हो उन्हें स्वच्छन्दता पूर्वक करो ॥ ५० ॥ हज़ारों दीन दुःखियों के शोक, शाप से सन्दग्ध राक्षसराज पालित इस रमणीय लङ्का पुरी में प्रवेश कर के अप्रतिहत गति से सुख पूर्वक जनकराजपुत्री सीता की खोज करो ॥ ५१ ॥

इस प्रकार बाल्मीकिरामायण के सुन्दर काण्ड का 'लङ्का रक्षिका पर विजय' विषयक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

लङ्का पुरी में प्रवेश

महातेजस्वी वनवासी वीर धीर हनुमान् अपने पराक्रम से लङ्का नगरी की श्रेष्ठ रक्षिका लङ्का को जीत कर ॥ १ ॥ सिंह द्वार (प्रधान प्रवेशद्वार) छोड़ कर तथा चहारदीवारी को लांघ कर रात्रि के समय में प्रविष्ट हुए ॥ २ ॥ बनवासी राजा सुग्रीव के हितैषी हनुमान् रात्रि के समय लङ्का नगरी में प्रवेश कर के शत्रुओं के सिर पर अपने बायें पैर का प्रहार किया ॥ ३ ॥ धैर्यशाली पवन सुत हनुमान् रात्रि में उस नगरी में प्रविष्ट हो कर उस विशाल मार्ग से चले जिस पर फूल बिछाये हुये थे ॥ ४ ॥ उस नगरी में

ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः । हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरःसरैः ॥ ५ ॥
वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः । गृहमुख्यैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥ ६ ॥
प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः । सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः । तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः ॥ ८ ॥
राघवार्थं चरन् श्रीमान् ददर्श च ननन्द च । भवनाद्भवनं गच्छन् ददर्श पवनात्मजः ॥ ९ ॥
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः । शुश्राव मधुरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥
स्त्रीणां मदसमृद्धानां दिवि चाप्सरसामिव । शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निस्वनम् ॥ ११ ॥
सोपाननिनदांश्चैव भवनेषु महात्मनाम् । आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेलितांश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै । स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः ॥ १३ ॥
रावणस्तवसंयुक्तान् गर्जतो राक्षसानपि । राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोबलं महत् ॥ १४ ॥
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून् । दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोऽजिनाम्बरवाससः ॥ १५ ॥
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा । कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥ १६ ॥
एकाक्षानेककर्णांश्च लम्बोदरपयोधरान् । करालान् भुग्नवक्त्रांश्च विकटान् वामनांस्तथा ॥ १७ ॥
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् । परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥

कहीं अट्टहास हो रहा था, कहीं बाजों की ध्वनि हो रही थी, ऐसी रमणीय लङ्कापुरी में हनुमान् गये ॥ ५ ॥ मतवाले ऐरावत (श्वेत गज) के समान स्फटिक मणियों की खिड़कियों से युक्त धवल गृहों के कारण वह नगरी मेघाच्छन्न आकाश के समान आच्छादित हो रही थी ॥ ६ ॥ श्वेत मेघ के समान गृह तथा नाना प्रकार के रंग विरंगे राक्षसों के गृहों से परिपूर्ण वह लङ्का उस समय देदीप्यमान हो रही थी। जिसमें पद्म-गृह (कमल के आकार वाले) तथा स्वस्तिक गृह (जिस घर में पूर्व की ओर द्वार न हो) भी सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥ हरेक ओर वर्धमान गृह (जिस गृह में दक्षिण द्वार न हो) भी जिस में सुशोभित हो रहे थे। चित्र विचित्र माला तथा आभरणों से अलंकृत उस नगरी को सुग्रीव के हितैषी ॥ ८ ॥ रामचन्द्र के कार्य के लिए घूमते हुए हनुमान् ने देखा तथा देखकर प्रसन्न हो गये। एक भवन से दूसरे भवन पर जाते हुए वीर हनुमान् ने अनेक भवनों को देखा ॥ ९ ॥ नाना प्रकार की आकृति वाले भवनों को इधर उधर देखते हुए हनुमान् ने त्रिस्थान (हृदय कण्ठ-मूर्द्धा) स्वर से विभूषित सुन्दर गीतों को सुना ॥ १० ॥ काम-कलाप से विह्वल स्त्रियों के काञ्ची (करधनी) तथा नूपुर ध्वनि को देवलोक में अप्सराओं की ध्वनि के समान सुना ॥ ११ ॥ सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने के शब्द, तालियों की ध्वनि तथा सिंह के समान गर्जन उन भवनों में सुना ॥ १२ ॥ उन राक्षसों के घरों में वेदमन्त्रों का जप करते हुए तथा वेदमन्त्रों का स्वाध्याय करते हुए राक्षसों को हनुमान् ने देखा ॥ १३ ॥ राक्षसराज रावण की स्तुति करते हुए सड़क को घेरकर इधर उधर खड़े हुए राक्षसों के समूह को देखा ॥ १४ ॥ नगर के मध्य चतुष्पथ (चौक) में बहुत से गुप्तचरों को जो कोई गृहस्थ के रूप में कोई जटाधारी वनवासी के रूप में, कोई मुण्डित संन्यासी के रूप में, कोई गोचर्म धारण करने वाले कोई मृगचर्म धारण करने वाले तथा कोई दिगम्बर (नग्न) थे, हनुमान् ने देखा ॥ १५ ॥ मुट्ठी में कुश लेकर प्रहार करने वाले, अग्निकुण्ड के समीप बैठकर शत्रुनाशार्थ अभिचार आदि कर्म करने वाले, कूट मुद्गर धारण करने वाले, दण्ड तथा अन्य प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले ॥ १६ ॥ एक आँख वाले अनेक वर्ण वाले, लम्बे पेट तथा उन्नत वक्षस्थल वाले, भयङ्कर आकृति वाले तथा नाटे कद वाले टेढ़े मुख वाले ॥ १७ ॥ धनुष तथा खड्ग धारण करने वाले, शतघ्नी (तोप) तथा मुसलास्त्र धारण करनेवाले उत्तम परिघ तथा जाज्वल्यमान तथा विचित्र कवच धारण करने वाले ॥ १८ ॥ न अत्यन्त मोटे, न अत्यन्त

नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान् । नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्न वामनान् ॥१९॥
विरूपान् बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः । पताकाध्वजिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ॥२०॥
शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः । क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥२१॥
स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् । नानावेषसमायुक्तान् यथास्वैरगतान् बहून् ॥२२॥
तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् । शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥२३॥
रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तः पुराग्रतः । स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥२४॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् । पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥२५॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः । त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥२६॥
बाजिहेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा । रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा गजहयैः शुभैः ॥२७॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः । भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥२८॥
रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः । राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥२९॥

सहेमजाम्बूनदचक्रवालं महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
परार्ध्यकालागरुचन्दनाक्तं स रावणान्तःपुरमाविवेश ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे लङ्कापुरीप्रवेशो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

दुर्बल, न अति लम्बे, न बिल्कुल छोटे, न अत्यन्त गौर न अत्यन्त काले, न कुबड़े, न छोटे ॥ १९ ॥ विकृत रूप वाले, अनेकों रूप वाले, सुन्दर रूप वाले, प्रतिभाशाली, ध्वजापताका वाले तथा अनेक प्रकार के अस्त्र धारण करने वाले राक्षसों को हनुमान् ने देखा ॥ २० ॥ शक्ति (बर्छी) वृक्ष आयुध, पट्टिश, व्रज धारण करने वाले, पाश धारण करने वाले तथा दूर से फेंक कर प्रहार करने वाले राक्षसों को वीर हनुमान् ने देखा ॥ २१ ॥ मालाधारी, सुगन्धित चन्दन का लेप करने वाले उत्तम अलंकारों से अलंकृत, नाना प्रकार के वेष धारण करने वाले, स्वच्छन्द विहार करने वाले ॥ २२ ॥ तीक्ष्ण शूलधारी तथा वज्र धारण करने वाले महाबलवान् मध्य चतुष्पथ (चौक) की रक्षा करने में सावधान एक लाख राक्षसों को हनुमान् ने देखा ॥ २३ ॥ अन्तःपुर के समक्ष राक्षसराज रावण के लिये निर्मित गृह को हनुमान् ने देखा। उन सब गृहों को देखकर पश्चात् उत्तम सोने के तोरण से युक्त ॥ २४ ॥ पर्वत के शिखर पर निर्मित राक्षसराज रावण के उस महल को जो श्वेत कमलों से परिपूर्ण, खाइयों से घिरा हुआ ॥ २५ ॥ तथा ऊँची चहारदीवारियों से सब ओर से वेष्टित था, जो स्वर्गीय भवन के समान प्रतीत हो रहा था तथा जिसमें दिव्य ध्वनि गुंजारित हो रही थी, उसे वीर हनुमान् ने देखा ॥ २६ ॥ जहाँ घोड़ों की हिनहिनाहट, आभूषणों की ध्वनि; रथ, यान, विमान उत्तम घोड़े हाथियों से युक्त ॥ २७ ॥ श्वेत मेघ के समान सुभूषित चार दांत वाले हाथी तथा प्रफुल्लित पशु पक्षियों से परिपूर्ण उस राजभवन का द्वार सुशोभित हो रहा था ॥ २८ ॥ हजारों महाबली राक्षस जिस राक्षसराज रावण के भवन की रक्षा कर रहे थे उस भवन में हनुमान् ने प्रवेश किया ॥ २९ ॥ जिसकी चहार दीवारी सोने की बनी हुई थी, उत्तम मूल्यवान् मणि, मुक्ताओं से जिसका भीतरी भाग सुशोभित हो रहा था, उत्तम जाति के चन्दन तथा अगर की सुगन्धि जहाँ हो रही थी, ऐसे रावण के अन्तःपुर में हनुमान् ने प्रवेश किया ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का "लङ्कापुरी में प्रवेश" विषयक चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

भवनविचयः

ततः स मध्यं गतमंशुमन्तं ज्योत्स्नावितानं महदुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान् दिवि भानुमन्तं गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १ ॥
लोकस्य पापानि विनाशयन्तं महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥
या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था तथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥
हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ४ ॥
स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो महाचलः श्वेत इवोच्चशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो रराज चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५ ॥
विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवाञ्शशाङ्कः ॥ ६ ॥

पञ्चम सर्ग

भवनों में अन्वेषण

रावण के अन्तः पुर में प्रवेश करने के पश्चात् बुद्धिमान् हनुमान् ने ताराओं से मण्डित आकाश में अपनी किरणों को भूमि पर फैलाते हुए चन्द्रमा को इस प्रकार देखा जिस प्रकार गौओं के गोष्ठ में घूमने वाला मत्त सांड ॥ १ ॥ सम्पूर्ण लोकों के कल्मष को नष्ट करते हुए, समुद्र को उद्वेलित करते हुए तथा सम्पूर्ण प्राणियों को अपने ज्योत्स्ना वितान से प्रफुल्लित करते हुए उदय होते हुए चन्द्रमा को हनुमान् ने देखा ॥ २ ॥ जो शोभा इस पृथ्वी पर मन्दराचल की है तथा रात्रि में जो शोभा समुद्र की होती है, जल में जो शोभा पद्म की होती है, उसी प्रकार आज रात्रि में चन्द्रमा की शोभा हो रही है ॥ ३ ॥ चाँदी के पिंजड़े में जैसे हंस सुशोभित होता है, पर्वत की गुफा में जैसे सिंह सुशोभित होता है, मदमत्त गजराज की पीठ पर बैठा हुआ जैसे वीर शोभित होता है, उसी प्रकार विमल आकाश में चन्द्रमा शोभित हो रहा है ॥ ४ ॥ तीक्ष्ण शृङ्गों वाले वृषभ के समान, समुन्नत शिखर वाले श्वेत पर्वत के समान, स्वर्ण मण्डित दन्त वाले हस्ती के समान अपनी सम्पूर्ण किरणों से युक्त चन्द्रमा आकाश में शोभित हुआ ॥ ५ ॥ जिस का शीतल जल तथा हिम पङ्क नष्ट हो गया है, सूर्य की किरणों से जिस का अन्धकार दूर हो गया है, प्रकाश की अधिकता से जिस का कलङ्क लुप्त हो गया है, ऐसा चन्द्रमा आकाश सुशोभित होने लगा ॥ ६ ॥ सम शिलातल को प्राप्त कर जैसे मृगराज सुशोभित होता है, महासंग्राम[illegible] में जा कर जैसे गजराज

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥
प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः स्वर्गप्रकाशो भगवान प्रदोषः ॥ ८ ॥
तन्त्रीस्वनाः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥
मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि रथाश्वभद्रासनसंकुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि ददर्श धीमान स कपिः कुलानि ॥१०॥
परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥११॥
रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥१२॥
ददर्श कान्ताश्च समालपन्त्यस्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः ।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः क्रुद्धाः पराश्चापि विनिःश्वसन्त्यः ॥१३॥
महागजैश्चापि तथा नदद्भिः सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भिर्ह्रदो भुजङ्गैरिव निःश्वसद्भिः ॥१४॥
बुद्धिप्रधानान् रुचिराभिधानान् संश्रद्दधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान् रुचिराभिधानान् ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान् ॥१५॥

सुशोभित होता है, राज्य को प्राप्त कर जैसे राजा सुशोभित होता है, उसी प्रकार आकाश में चन्द्र सुशोभित हुआ ॥ ७ ॥ चन्द्रमा के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो गया, मांसाहारी निशाचरों के मांस भक्षण की प्रवृत्ति बढ़ गई, स्त्रियों के चित्त में काम आदि विकार की वृद्धि हो गई, इस प्रकार रात्रि समय सब के लिये सुखकारी हुआ ॥ ८ ॥ कानों को सुख देने वाले वीणा के शब्द होने लगे, स्त्रियाँ अपने पतियों के पास सो गईं, अभद्र काम करने वाले राक्षस भी अपने आमोद प्रमोद में लग गये ॥ ९ ॥ धन आदि से मदोन्मत्त लोगों से पूर्ण मकानों को, जहाँ रथ, घोड़ा, उत्तम आसन आदि भरे पड़े हैं तथा जहाँ वीरता आदि के चिह्न प्रतीत हो रहे हैं, ऐसे स्थानों को हनुमान् ने देखा ॥ १० ॥ जहाँ राक्षस एक दूसरे पर आक्षेप कर रहे थे, अपनी मोटी भुजाओं को इधर उधर फेंक रहे थे, मदोन्मत्त लोग जहाँ प्रलाप कर रहे थे और मदमत्तता के कारण जहाँ लोग एक दूसरे पर आक्षेप कर रहे थे ॥ ११ ॥ जहाँ पुरुष अपनी स्त्रियों का हस्त आदि से स्पर्श कर रहे थे, नाना प्रकार के विचित्र चित्रों का जहाँ निर्माण कर रहे थे, जहाँ दृढ़ धनुष पर प्रत्यञ्चा का आरोपण कर रहे थे ॥ १२ ॥ जहाँ स्त्रियाँ अपने पतियों से प्रेमालाप कर रही थीं, अन्य बहुत सी स्त्रियाँ जहाँ शयन कर रही थीं, कमनीय मुख वाली स्त्रियाँ जहाँ हँस रही थीं तथा कुछ स्त्रियाँ रोष में आकर लम्बी लम्बी सांस ले रही थीं, उन सब को हनुमान् ने देखा ॥ १३ ॥ मतवाले हाथियों की चिंघाड़ से युक्त, पूज्य सज्जनों से जहाँ पूजनीयों का सत्कार हो रहा था, वीर लोग जहाँ दहाड़ रहे थे, इस प्रकार वह स्थान फूत्कार करने वाले सर्पों के समान प्रतीत हो रहा था ॥ १४ ॥ उस राक्षसों की नगरी लंका में उत्तम से उत्तम बुद्धिमान्, मधुरभाषी, श्रद्धावान्, जगत्प्रसिद्ध, नाना प्रकार के उत्तम रूप तथा सुन्दर नाम

ननन्द दृष्ट्वा च स तान् सुरूपान्नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान् स तदानुरूपान् ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥१६॥
ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावास्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः ।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा ददर्श तारा इव सुप्रभावाः ॥१७॥
श्रिया ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा यथा विहङ्गाः विहगोपगूढाः ॥१८॥
अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टाः ।
भर्तुः प्रिया धर्मपरा निविष्टा ददर्श धीमान् मदनाभिविष्टाः ॥१९॥
अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः काश्चित्पराध्यास्तिपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः ॥२०॥
ततः प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान् सुप्रीतियुक्ताः सुमनोभिरामाः ।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥२१॥
चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमाला वक्राक्षिपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः ।
विभूषणानां च ददर्श मालाः शतह्रदानामिव चारुमालाः ॥२२॥
न त्वेव सीतां परमाभिजातां पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लतां प्रफुल्लामिव साधु जातां ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥२३॥

वाले पुरुषों को हनुमान् ने देखा ॥ १५ ॥ अनेकों सुन्दर रूप वाले, नाना गुणों से अलंकृत, अपने गुण के अनुकूल कार्य करने वाले, बहुतों को सुन्दर तथा अनेकों को कुरूप देख कर हनुमान् प्रसन्न हो गये ॥१६॥ उत्तम वस्त्रों वाली, पवित्र अन्तःकरण वाली, समुन्नत विचार वाली, अपने पति और मद्यपान में प्रेम रखने वाली तथा नक्षत्रों के समान शोभावाली इन स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥ १७ ॥ उत्तम कान्ति वाली, लज्जायुक्त स्त्रियाँ मध्य रात्रि के समय अपने पतियों से आलिङ्गित, कुछ स्त्रियाँ मदनार्त्ता अपने पतियों से इस प्रकार आलिङ्गित हो रही थीं, जैसे पक्षी परस्पर युक्त होते हैं, इन सब को हनुमान् ने देखा ॥१८॥ अन्य स्त्रियाँ मकान की छतों पर अपने प्रिय पतियों के अङ्क में सुख पूर्वक बैठी थीं, कुछ पतिपरायण स्त्रियाँ पति सेवा में लगी थीं और कुछ मदनाविष्ट स्त्रियाँ काम कलाप में लगी थीं, ऐसी स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥ १९ ॥ कुछ प्रोषित भर्तृका (पति वियुक्ता) स्त्रियाँ खुले स्थानों में बैठी थीं। पति वियोग के कारण जो स्वर्ण रेखा के समान कृशकाय हो रही थीं, कोई मूल्यवान् स्वर्ण के समान गौरवर्णा थीं, कुछ चन्द्रकिरण के समान वर्ण वाली थीं, पति से वियुक्त दुर्बल होने पर भी सुन्दर प्रतीत हो रही थीं ॥ २० ॥ अपने अनुकूल पतियों को प्राप्त कर सर्वाङ्ग चेष्टा से परिपूर्ण कामना वाली, घरों में अनेक प्रसन्न वदन स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥ २१ ॥ चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख की पंक्ति, सुन्दर पक्ष्म (बरौनी) तथा वक्र प्रेक्षण से युक्त नेत्र पंक्ति तथा नाना प्रकार के आभूषणों की पंक्ति को हनुमान् ने विद्युत्पंक्ति के समान देखा ॥ २२ ॥ किन्तु परम श्रेष्ठ राजकुल में उत्पन्न होने वाली, पुष्पित लता के समान मनोभिरामा सीता को हनुमान् ने वहाँ नहीं देखा ॥ २३ ॥ सनातन सज्जनों के मार्ग में स्थित, रामचन्द्र के प्रति सतत अनुराग रखने वाली पति परायणा होने के नाते अपने पति के हृदय में निवास करने वाली, स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ जानकी को हनु-

सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां रामेक्षणां तां मदनाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां स्त्रीभ्यो वराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥२४॥
उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं वने प्रनृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥२५॥
अव्यक्तरेखामिव चन्द्ररेखां पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम् ।
क्षतप्ररूढामिव बाणरेखां वायुप्रभिन्नामिव मेघरेखाम् ॥२६॥
सीतामपश्यन् मनुजेश्वरस्य रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य ।
बभूव दुःखाभिहतश्चिरस्य प्लवङ्गमो मन्द इवाचिरस्य ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे भवनविचयो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

रावणगृहावेक्षणम्

स निकामं विमानेषु विषण्णः कामरूपधृत् । विचचार पुनर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥ १ ॥

मान् ने नहीं देखा ॥ २४ ॥ पति वियोग से पीड़ित, निरन्तर आँसू बहाने वाली, रामचन्द्र के साथ सदा उत्तम हार आदि आभूषण धारण करने वाली, सुन्दर पक्ष्म (बरौनी) तथा कल कण्ठ वाली, वन में नृत्य करती हुई मयूरी के समान सीता को वीर हनुमान् ने नहीं देखा ॥ २५ ॥ मेघ माला से ढकी हुई चन्द्ररेखा के समान, धूल धूसरित स्वर्ण रेखा के समान, क्षत तथा व्रण के परिपूर्ण हो जाने पर तद्रेखा के समान और वायु से छिन्न-भिन्न मेघ पंक्ति के समान ॥ २६ ॥ बोलने वालों में श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता को न देखकर वनवासी वीर हनुमान् अत्यन्त दुःखी हो गये तथा उनका उत्साह एक प्रकार से शिथिल हो गया ॥ २७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'भवनों में अन्वेषण' विषयक पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग

रावण के गृह का निरीक्षण

स्वेच्छा पूर्वक रूप परिवर्त्तन करने वाले, स्वेच्छा पूर्वक विमान (सात मंजिल वाले भवनों) को शीघ्रता पूर्वक देखते हुए हनुमान् लङ्का में विचरने लगे ॥ १ ॥ सूर्य के समान देदीप्यमान चहारदीवारी से घिरे

आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् । प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥ २ ॥
रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद्वनम् । समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः ॥ ३ ॥
रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषितैः । विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारैश्च रुचिरैर्वृतम् ॥ ४ ॥
गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः । उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः ॥ ५ ॥
सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतैः । घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ॥ ६ ॥
बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभाजनम् । महारथसमावासं महारथमहासनम् ॥ ७ ॥
दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः । विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ८ ॥
विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् । मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ९ ॥
मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् । वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् ॥१०॥
तद्राजगुणसंपन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः । महाजनैः समाकीर्णं सिंहैरिव महद्वनम् ॥११॥
भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम् । नित्यार्चितं पर्वहुतं पूजितं राक्षसैः सदा ॥१२॥
समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रमिव निःस्वनम् । महात्मनो महद्वेश्म महारत्नपरिच्छदम् ॥१३॥
महारत्नसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः । विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसंकुलम् ॥१४॥
लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः । चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः ॥१५॥
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः । वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥१६॥

हुए राक्षसराज रावण के भवन में हनुमान् पहुँचे ॥ २ ॥ वन के राजा सिंह के समान वीर राक्षस जिस भवन की रक्षा कर रहे हैं उसे देखकर हनुमान् प्रफुल्लित हो गये ॥ ३ ॥ चांदी निर्मित चित्रों से, काञ्चन निर्मित तोरणों से, चित्र विचित्र प्रकोष्ठ (छोटी कोठरियां) से तथा सुन्दर द्वारों से वह भवन सुशोभित हो रहा था ॥ ४ ॥ जहाँ हाथियों पर हाथीवान् तथा श्रम रहित सैनिक बैठे हुए थे, रथों में चलने वाले उत्तम जाति के घोड़े जहाँ उपस्थित थे ॥ ५ ॥ सिंह तथा व्याघ्र के चमड़ों से वेष्टित, सोने चांदी तथा हाथी दांत की कारीगरी से अलंकृत, रथों के इधर उधर घूमने से जहाँ शब्द हो रहा था ॥६॥ उन रथों में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए थे, महारथियों के बैठने वाले रथों के रखने का जहाँ स्थान बना था ॥ ७ ॥ अत्यन्त दर्शनीय मृग पक्षियों का नाना प्रकार का समूह चारों ओर परिपूर्ण था ॥ ८ ॥ विनीत स्वभाव वाले अन्तःपुर के रक्षकों से जो रक्षित हो रहा था तथा मुख्य सुन्दर स्त्रियों से वह भवन परिपूर्ण हो रहा था ॥ ९ ॥ प्रसन्न स्त्रियों के समूह से राक्षसराज रावण का भवन सुशोभित हो रहा था। स्त्रियों के उत्तम आभूषणों की झङ्कार से समुद्र के शब्द के समान प्रतिध्वनित हो रहा था ॥१०॥ राक्षसराज रावण का भवन उत्तम जाति के चन्दनों तथा राजकीय सामग्रियों से परिपूर्ण था। अनेक शूर वीरों से वह भवन इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जिस प्रकार वनराज सिंह से वन शोभित होता है ॥ ११ ॥ भेरी, मृदङ्ग, शंख आदि वाद्यों के घोषों से निनादित पर्व (दर्शपौर्णमास) के दिनों में उत्तम राक्षसों से परिमार्जित, यज्ञों से परिपूर्ण ॥ १२ ॥ रत्न आदि के संचय से रत्नाकर समुद्र के समान, आभूषणों की झङ्कार से ध्वनित होने से भी समुद्र के समान, राक्षसराज रावण का भवन रत्नादि अलंकारों से परिपूर्ण था ॥१३॥ हाथी, घोड़े, रथ से संयुक्त, मूल्यवान् रत्नों से परिपूर्ण आकृति से अत्यन्त शोभायमान राक्षसराज रावण के भवन को हनुमान् ने देखा ॥ १४ ॥ उस भवन को हनुमान् ने लङ्का का आभूषण समझा। रावण के भवन के समीप ही हनुमान् घूमने लगे ॥ १५ ॥ एक घर से दूसरे घर पर तथा राक्षसों की सम्पूर्ण वाटिकाओं को देखते हुए निर्भय होकर अट्टालिकाओं के ऊपर घूमने लगे ॥ १६ ॥ पराक्रमी वेगवान् हनुमान् प्रहस्त के मकान से कूद कर महापार्श्व की अटारी पर चढ

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् । ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥१७॥
अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् । विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥१८॥
महोदरस्य च गृहं विरूपाक्षस्य चैव हि । विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ॥१९॥
वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः । शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः ॥२०॥
तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः । जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम भवनं ततः ॥२१॥
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च । वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥२२॥
धूम्राक्षस्य च संपातेर्भवनं मारुतात्मजः । विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥२३॥
शुकनासस्य वक्रस्य शठस्य विकटस्य च । ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥२४॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः । विद्युज्जिह्वेन्द्रजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥२५॥
करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि । क्रममाणः क्रमेणैव हनुमान् मारुतात्मजः ॥२६॥
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः । तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥२७॥
सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः । आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥२८॥
रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः । विचरन् हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥२९॥
शूलमुद्गरहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणीः । ददर्श विविधान् गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥३०॥
राक्षसांश्च महाकायान्नानाप्रहरणोद्यतान् । रक्तान्श्वेतान् सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ॥३१॥
कुलीनान् रूपसंपन्नान् गजान् परगजारुजान् । निष्ठितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि ॥३२॥
निहन्तॄन् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः । क्षरतश्च यथा मेघान् स्रवतश्च यथा गिरीन् ॥३३॥

गये ॥ १७ ॥ मेघ के समान कुम्भकर्ण तथा विभीषण के भवन पर भी वनवासी वीर हनुमान् चढ़े ॥ १८ ॥ महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युन्माली, वज्रदंष्ट्र, महा वेगवान् शुक, तथा बुद्धिमान् सारण के महल पर भी हनुमान् चढ़े ॥१९, २०॥ इन्द्रजित, जम्बुमालि, सुमाली के भवनों पर भी वनवासी सेनापति हनुमान् चढ़े ॥ २१ ॥ रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, वज्रकाय के भवनों पर हनुमान् चढ़े ॥ २२ ॥ धूम्राक्ष, संपाति, भयंकर विद्युद्रूप, घन, विघन ॥ २३ ॥ शुकनास, वक्र, शठ, विकट, ह्रस्वदंष्ट्र और राक्षस रोमश के भवन पर भी हनुमान् चढ़े ॥ २४ ॥ युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, इन्द्रजिह्व तथा हस्तिमुख राक्षस के ॥ २५ ॥ कराल, पिशाच, शोणिताक्ष आदि राक्षसों के भवनों पर भी हनुमान् कूदते फाँदते गये ॥ २६ ॥ उन उन मूल्यवान् भवनों में महायशस्वी हनुमान् ने धनवान् राक्षसों की सम्पत्ति को देखा ॥ २७ ॥ उन सारे भवनों को देखते हुए हनुमान् राक्षराज रावण के भवन पर पहुँचे ॥ २८ ॥ रावण के शयनकक्ष की रक्षा करने वाली भयंकर आँखों वाली राक्षसियों को विचरण करते हुए वनवासी वीर हनुमान् ने देखा ॥ २९ ॥ शूल, मुद्गर, शक्ति, तोमर आदि शस्त्र धारण करने वाली राक्षसियों के समूह को रावण के भवन में हनुमान् ने देखा ॥ ३० ॥ विशाल शरीर वाले, हाथों में नाना प्रकार के शस्त्र लिये हुए राक्षसों को तथा लाल, श्वेत बन्धे हुए वेगवान् घोड़ों को देखा ॥ ३१ ॥ अच्छे वंश में उत्पन्न होने वाले, शत्रु गज का मान तोड़ने वाले, अत्यन्त सुन्दर तथा शिक्षित हाथियों को जो संग्राम में ऐरावत गज के समान काम करने वाले थे ॥ ३२ ॥ शत्रु की सेना का संहार करने वाले, बरसती हुई मेघ धारा तथा गिरते हुए पर्वतीय झरनों के समान जिनके मद जल स्रावित हो रहे हैं, ऐसे हाथियों को भी उस भवन में हनुमान् ने देखा ॥ ३३ ॥ मेघ के समान गर्जन करने वाले, संग्राम में शत्रुओं से अपराजित गजों को तथा स्वर्ण

मेघस्तनितनिर्घोषान् दुर्धर्षान् समरे परैः । सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ॥३४॥
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने । शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः ॥३५॥
हेमजालपरिच्छन्नास्तरुणादित्यवर्चसः । लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥३६॥
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानपि । कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ॥३७॥
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने । स मन्दरगिरिप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम् ॥३८॥
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् । अनेकरत्नसंकीर्णं निधिजालसमावृतम् ॥३९॥
धीरनिष्ठितकर्मान्तं गृहं भूतपतेरिव ।
अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च । विरराजाथ तद्वेश्म रश्मिमानिव रश्मिभिः ॥४०॥
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च । भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ॥४१॥
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम् । मनोरममसंबाधं कुबेरभवनं यथा ॥४२॥
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निनदेन च । मृदङ्गतलघोषैश्च घोषवद्भिर्विनादितम् ॥४३॥
प्रासादसङ्घातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम् । सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान् प्रविवेश महागृहम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रावणगृहावेक्षणं नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

अलंकारों से अलंकृत हजारों सैनिकों को देखा ॥३४॥ विविध आकार वाली पालकियाँ हनुमान् ने राक्षसेन्द्र रावण के भवन में देखीं जो स्वर्ण जाल से निर्मित तथा देदीप्यमान सूर्य के समान कान्ति वाली थीं। चित्र-गृह, चित्रनिर्माण शाला ॥ ३५, ३६ ॥ क्रीड़ा गृह, काष्ठ निर्मित पर्वतीय गृह, विलास गृह, सुन्दर दिवस विहार गृह को हनुमान् ने देखा ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावण के भवन में पर्वताकार ऊँची अट्टालिकाएँ, मोरों के रहने का स्थान ॥ ३८ ॥ ध्वजा-पताकाओं से युक्त, अनन्त रत्न राशि से युक्त, कोषागार, उत्तम कारीगरों से निर्मित प्रजापति के गृह के समान भवनों से परिपूर्ण रावण के महल को हनुमान् ने देखा ॥ ३९ ॥ रत्नावली की किरणों से तथा देदीप्यमान राक्षसराज रावण के तेज से वह राक्षसराज रावण का भवन किरणों से युक्त सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४० ॥ शयन, आसन तथा सभी पात्र जिन को हनुमान् ने वहाँ देखा वे सभी सोने के बने हुए थे ॥ ४१ ॥ अनेक प्रकार की मदिराओं से परिपूर्ण, मणिमय पात्रों से युक्त रमणीय उस विशाल भवन को देखा जो कुबेर के भवन के समान था ॥ ४२ ॥ काञ्ची तथा नूपुरों की ध्वनि से ध्वनित, मृदङ्ग तथा अन्यान्य वाद्यों की ध्वनि से वह भवन गूँज रहा था ॥ ४३ ॥ अनेक अटारियों से युक्त तथा पृथक् २ भवन (कमरों) से युक्त सैकड़ों स्त्री रत्नों से व्याप्त उस महान् राक्षसराज रावण के गृह में हनुमान् ने प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रावण के गृह का निरीक्षण' विषयक छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

पुष्पकदर्शनम्

स वेश्मजालं बलवान् ददर्श व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम् ॥१॥
निवेशनानां विविधाश्च शालाः प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥२॥
गृहाणि नानावसुराजितानि देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥३॥
तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥४॥
ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपं गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥५॥
महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम् ॥६॥
नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं तडिद्भिरम्भोदवदर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं श्रिया युतं खे सुकृतां विमानम् ॥७॥

सातवां सर्ग

पुष्पक का दर्शन

वैदूर्य मणि तथा स्वर्णजाल युक्त खिड़कियों वाले उन मकानों को जिन में मयूर आदि पले हुए पक्षी निवास कर रहे थे, जो वर्षा काल के विद्युत् युक्त मेघ के समान प्रतीत हो रहा था उसे हनुमान् ने देखा ॥ १ ॥ उत्तम शंख आयुध धनुष आदि शस्त्रों से सुशोभित होने वाले अनेकों गृह तथा मनोहर विशाल भवन सर्वोपरि चन्द्रशाला (ऊपरी छत का भवन) को हनुमान् ने देखा ॥ २ ॥ नाना प्रकार की सम्पत्ति से युक्त, देव असुरों से प्रशंसित, प्रत्येक दोष से विवर्जित, जिसे रावण ने अपने भुजबल से अर्जित किया था, ऐसे रावण के भवन को हनुमान् ने देखा ॥ ३ ॥ जिन्हें साक्षात् विश्वकर्मा (कारीगर) मय ने अपने प्रयत्न से निर्मित किया है इस भूभाग पर सम्पूर्ण उत्तम गुणों से परिपूर्ण, लङ्कापति रावण के घरों को हनुमान् ने देखा ॥ ४ ॥ मेघ के समान समुन्नत, स्वर्ण के समान देदीप्यमान, मनोहारी, राक्षसराज रावण के योग्य उस अप्रतिम उत्तम भवन को हनुमान् ने देखा ॥ ५ ॥ पृथ्वी तल पर स्वर्ग के समान प्रतीत होने वाला, रत्न आदि की कान्ति से देदीप्यमान, नाना प्रकार के वृक्षों के पुष्पों से व्याप्त वह रावण का भवन पुष्प पराग से परिपूर्ण पर्वत शिखर के समान प्रतीत हो रहा था ॥ ६ ॥ स्त्री मण्डल से शोभायमान, विद्युत् युक्त मेघ के समान सुन्दर भवन तथा आकाश में हंसों से खींचे जाते हुए कान्ति युक्त सुनिर्मित विमान को हनुमान् ने देखा ॥ ७ ॥ जैसे पर्वत की चोटी अनेक धातुओं से चित्रविचित्र प्रतीत होती है तथा जिस

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतमेघचित्रं विमानरत्नं बहुरत्नचित्रम् ॥८॥
मही कृता पर्वतराजिपूर्णा शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ॥९॥
कृतानि वेश्मानि च पाण्डराणि तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि धन्यानि चित्राणि तथा वनानि ॥१०॥
पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं रत्नप्रभाभिश्च विघूर्णमानम् ।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं महाकपिस्तत्र महाविमानम् ॥११॥
कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा रूप्यप्रवालैश्च यथा विहङ्गाः ।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः ॥१२॥
प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः ॥१३॥
नियुज्यमानास्तु गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥१४॥
इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं सविस्मयो नगमिव चारुशोभनम् ।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥१५॥
ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां चरन् पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम् ॥१६॥

प्रकार आकाश चन्द्र नक्षत्रों से चित्रित होता है, उसी प्रकार युक्तिपूर्वक मेघ आदि चित्रों से चित्रित तथा रत्न आदि से अलंकृत उस विमान को हनुमान् ने देखा ॥ ८ ॥ जिस विमान की भूमि पर्वत पंक्ति के चित्रों से पूर्ण थी, जिस विमान की चित्रित कारीगरी में पर्वत वृक्ष-लताओं से परिपूर्ण थे तथा जिस निर्मित चित्र के वृक्ष पुष्प पराग पत्रों से परिपूर्ण थे ॥ ९ ॥ उस विमान में पीत वर्ण के गृह बने हुए थे, तथा पुष्पों से युक्त पुष्करिणी निर्मित थीं, केसर युक्त कमल तथा वन जिस में चित्रित थे ॥ १० ॥ रत्नों की कान्ति से विराजमान, इतस्ततः घूमते हुए, उत्तम से उत्तम अर्थात् विमानों में श्रेष्ठ पुष्पक नाम के महाविमान को हनुमान् ने देखा ॥ ११ ॥ उस विमान में वैदूर्य मणि तथा चाँदी-मूंगे से पक्षियों का निर्माण किया गया था। नाना प्रकार की वस्तुओं से जहाँ सर्पों का निर्माण किया गया था तथा विमान के अनुरूप ही जिसमें शोभन अङ्ग वाले अश्वों का निर्माण किया गया था ॥ १२ ॥ प्रवाल, सोना तथा पुष्पों से सीधे सरल उत्तम जिन के पक्ष (पंख) बने हुए थे, जो मदन सहायक कामोद्दीपन करने वाले हैं ऐसे सुन्दर मुख वाले पक्षियों का वहाँ निर्माण किया गया था ॥१३॥ उस विमान में केसर कमलयुक्त सरोवर में हाथी का निर्माण किया गया था जिसके सूँड़ में कमल सुशोभित हो रहा था तथा कमल हाथ में लिये हुए पद्मा लक्ष्मी देवी का भी उस में निर्माण किया गया था ॥ १४ ॥ वसन्त ऋतु में सुन्दर गुफा वाले पर्वत के समान शोभायमान उस गृह में जाकर हनुमान् अत्यन्त चकित हो गये और शोभायुक्त पर्वत के समान तथा सुगन्ध पूर्ण उस विमान को देख कर हनुमान् पुनः अति चकित हो गये ॥ १५ ॥ रावण के बाहु से पालित तथा अत्यन्त प्रशंसित उस लङ्का पुरी में जा कर अपने पति के गुण स्मरण से उद्विग्न, दुःख से पूर्ण तथा पूजनीया जनक पुत्री सीता को

ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः ।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः सुचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पुष्पकदर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

पुष्पकानुवर्णनम्

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितं महद्विमानं बहुरत्नचित्रितम् ।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं ददर्श वीरः पवनात्मजः कपिः ॥१॥
तदप्रमेयाप्रतिकारकृत्रिमं कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा ।
दिवं गतं वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मवत् ॥२॥
न तत्र किंचिन्न कृतं प्रयत्नतो न तत्र किंचिन्न महार्हरत्नवत् ।
न ते विशेषा नियताः सुरेष्वपि न तत्र किंचिन्न महाविशेषवत् ॥३॥
तपःसमाधानपराक्रमार्जितं मनःसमाधानविचारचारिणम् ।
अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं ततस्ततस्तुल्यविशेषदर्शनम् ॥४॥

नहीं देखा ॥ १६ ॥ सुनीति मार्ग पर चलने वाले, सुन्दर नेत्र वाले, विचार वाले, विविध प्रकार की भावनाओं से परिचित हनुमान् का मन सीता को न देखते हुए अत्यन्त दुःखी हो गया ॥ १७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'पुष्पक का दर्शन' विषयक सातवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ सर्ग

पुष्पक का वर्णन

उस रावण के भवन के मध्य में स्थित मणि रत्नों से चित्रित तथा काञ्चन की खिड़कियों से युक्त विशाल विमान को बुद्धिमान् पवनसुत हनुमान् ने देखा ॥ १ ॥ अनुपम कारीगरी से युक्त उस विमान की विश्वकर्मा ने भी प्रशंसा की थी । जिस समय वायुपथ आकाश में वह विमान गमन करता था तो अपनी देदीप्यमान कान्ति से सूर्य के समान प्रतीत होता था ॥ २ ॥ उस विमान में ऐसा कोई निर्माण नहीं था जिस के बनाने में उत्तम प्रयत्न न किया गया हो, उस में कोई ऐसी रचना नहीं थी जिसमें महान् रत्नराशि न लगाई गई हो, उसमें कोई ऐसी रचना नहीं थी जो वैशिष्ट्ययुक्त न हो, वह विशेष निर्माण कौशल देवताओं के विमान में भी नहीं था ॥ ३ ॥ तपश्चर्या, उपासना तथा पराक्रम से रावण ने इस विमान को प्राप्त किया था, मन की गति के समान इच्छानुसार चलने वाला, अनेक निर्माण जिस में विशेषतापूर्ण था तथा कहीं अन्य विमानों के समान एवं कहीं विशेष निर्माण कौशल उस विमान में था ॥ ४ ॥ मानसिक

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं दुरावरं मारुततुल्यगामिनम् ।
महात्मनां पुण्यकृतां महर्द्धिनां यशस्विनामग्र्यमुदामिवालयम् ॥५॥
विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम् ।
मनोऽभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ॥६॥
वहन्ति यं कुण्डलशोभिताननना महाशना व्योमचरा निशाचराः ।
निवृत्तविध्वस्तविशाललोचना महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥७॥
वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं वसन्तमासादपि कान्तदर्शनम् ।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं ददर्श तद्वानरवीरसत्तमः ॥८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पुष्पकानुवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः

संकुलान्तःपुरम्

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम् । ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥

इच्छा के अनुकूल, शीघ्रता पूर्वक चलने वाला, वायु के समान गमन करने वाला वह विमान अन्यों के लिये अप्राप्य था। पुण्यकर्मा, ऋद्धिपरिपूर्ण, यशस्वी महापुरुषों के भवन के समान वह विमान था ॥ ५ ॥ विशेषता को प्राप्त कर के विशेष रूप से वायु में स्थित विचित्र नाना प्रकार की चोटियों से युक्त, निर्मल शरत् चन्द्र के समान मनोभिराम पर्वत के समान वह विमान प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ कुण्डल धारण से जिन के मुख शोभित हो रहे थे, बड़े वेगवान्, अत्यन्त खाने वाले, विशाल तथा विकृत आँखों वाले हजारों आकाशचारी राक्षस उस विमान के संचालन का प्रबन्ध कर रहे थे ॥ ७ ॥ वसन्त ऋतु के फूलों से परिपूर्ण, अत्यन्त शोभनीय वह विमान वसन्त ऋतु से भी अधिक सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार वहाँ उत्तम पुष्पक विमान को धैर्यशाली वीर हनुमान् ने देखा ॥ ८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'पुष्पक का वर्णन' विषयक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

संकुल अन्तःपुर

उस उत्तम प्रासाद के बीच में निर्मल तथा विशाल आकार वाले एक उत्तम भवन को पवनसुत हनुमान् ने देखा ॥ १ ॥ वह राक्षसराज रावण का भवन आधा योजन चौड़ा, एक योजन लम्बा तथा अनेक अट्टालि-

अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं हि तत् । भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ २ ॥
मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् । सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः ॥ ३ ॥
उत्तमं राक्षसावासं हनुमानवलोकयन् । आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ४ ॥
चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च । परिक्षिप्तमसंबाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥
राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् । आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥
तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिङ्गिलझषाकुलम् । वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥ ७ ॥
या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने । सा रावणगृहे सर्वा नित्यमेवानपायिनी ॥ ८ ॥
या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च । तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥
तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थं वेश्म चान्यत्सुनिर्मितम् । बहुनिर्यूहसंकीर्णं ददर्श पवनात्मजः ॥१०॥
ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा । विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥११॥
परेण तपसा लेभे यत्कुबेरः पितामहात् । कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद्राक्षसेश्वरः ॥१२॥
ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः । सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥१३॥
मेरुमन्दरसंकाशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् । कूटागारैः शुभाकारैः सर्वतः समलंकृतम् ॥१४॥
ज्वलनार्कप्रतीकाशं सुकृतं विश्वकर्मणा । हेमसोपानसंयुक्तं चारुप्रवरवेदिकम् ॥१५॥
जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि । इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ॥१६॥
विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः । निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम् ॥१७॥

काओं से परिपूर्ण था ॥ २ ॥ विशालनेत्रा विदेहराजकुमारी सीता की खोज करते हुए अरिमर्दन हनुमान् ने सब स्थानों में भ्रमण किया ॥ ३ ॥ राक्षसों के निवास को देखते हुए हनुमान् राक्षसराज रावण के उत्तम भवन के समीप पहुँचे ॥ ४ ॥ चार दाँत वाले तथा तीन दाँत वाले हाथी और सशस्त्र रक्षक सैनिकों से वह स्थान पूर्ण था ॥ ५ ॥ राक्षसवर्ग की स्त्रियाँ तथा रावण के द्वारा बलात् हरकर लाई हुई राजकुल की कन्याओं से रावण का भवन परिपूर्ण हो रहा था ॥ ६ ॥ नक्र, मगर, तिमिंगिल तथा अन्य मछलियों से परिपूर्ण तथा वायु से कम्पित समुद्र के समान रावण का घर प्रतीत हो रहा था ॥ ७ ॥ जो शोभा अलका पुरी के राजा कुबेर के भवन में है, जो शोभा चन्द्र में है तथा जो इन्द्रपुरी अमरावती में है वह शोभा रावण के घर में सदा विद्यमान रहती है ॥ ८ ॥ जो सम्पत्ति अलकापुरी के राजा कुबेर के भवन में है, जो समृद्धि यम और वरुण के पास है, उस प्रकार की तथा उससे भी अधिक यहाँ राक्षसों के घरों में है ॥ ९ ॥ उस प्रासाद के मध्य भाग में एक सुनिर्मित भवन था जो अगल बगल चबूतरों से अलंकृत था। उसको पवनपुत्र हनुमान् ने देखा ॥ १० ॥ अनेक रत्नों से विभूषित, विश्वकर्मा ने जिस दिव्य पुष्पक विमान को ब्रह्मा के लिये निर्मित किया था ॥११॥ और जिसको कठिन तपश्चर्या के द्वारा कुबेर ने ब्रह्मा से प्राप्त किया था, उसी पुष्पक विमान को राक्षसराज रावण ने अपने बल के द्वारा कुबेर से जीतकर प्राप्त कर लिया ॥ १२ ॥ तप्त सोने के बने हुए भेड़ियों से युक्त स्वर्णमय खम्भों से जिसकी कान्ति बढ़ रही थी ॥ १३ ॥ विशाल, गगनचुम्बी गुप्तगृह तथा शोभागृह से सुसज्जित वह विमान था ॥ १४ ॥ देदीप्यमान सूर्य के समान विश्वकर्मा ने सोने की सीढ़ियाँ तथा बैठने के लिये उत्तम वेदियाँ उसमें बनाई थीं ॥ १५ ॥ स्वर्ण तथा स्फटिक मणियों के जाल से युक्त खिड़कियाँ उसमें लगी थीं । नीलम तथा उत्तम जाति के नीलम से जहाँ वेदियाँ बनाई गई थीं ॥ १६ ॥ मूंगा तथा विचित्र मणियों से वह विमान शोभित हो रहा था । गोल मोतियों से जिसका तल भाग जड़ा हुआ था ॥ १७ ॥ काञ्चन के समान प्रकाशमान रक्तचन्दन तथा उत्तम सुगन्धियों से परिपूर्ण वह विमान दुष्प्रेक्ष्य

चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च । सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम् ॥१८॥
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः । तत्रस्थः स तदा गन्धं पानभक्ष्यान्नसंभवम् ॥१९॥
दिव्यं संमूर्छितं जिघ्रद्रूपवन्तमिवानिलम् । स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ॥२०॥
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः । ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शुभाम् ॥२१॥
रावणस्य मनःकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् । मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ॥२२॥
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् । मुक्ताभिश्च प्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ॥२३॥
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् । समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ॥२४॥
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव । महत्या कुथयास्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ॥२५॥
पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहमालिनीम् । नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ॥२६॥
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम् । धूम्रामगरुधूपेन विमलां हंसपाण्डराम् ॥२७॥
चित्रां पुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् । मनःसंह्लादजननीं वर्णस्यापि प्रसादिनीम् ॥२८॥
तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियः संजननीमिव । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैश्च पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ॥२९॥
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता । स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्येयं पुरी भवेत् ॥३०॥
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥
प्रध्यायत इवापश्यत्प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् । धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥३१॥

तरुण सूर्य के समान प्रतीत हो रहा था ॥ १८ ॥ वनवासी वीर हनुमान् उस दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़ गये । वहाँ पान, भक्ष्य, अन्न से उत्पन्न होने वाली गन्ध सब ओर फैल रही थी ॥ १९ ॥ उन गन्धों से युक्त वायु हनुमान् की नासिका तक पहुँची । वह गन्ध उस महावीर हनुमान् को जैसे कोई अपने भाई को बुलाता हो ॥ २० ॥ 'इधर आओ' 'इधर आओ' इस प्रकार कहकर रावण के समीप बुलाने लगी । वहाँ से उतर कर हनुमान् ने एक अत्यन्त सुन्दर विशाल कोष्ठ को देखा ॥ २१ ॥ कमनीय कान्ता स्त्री के समान रावण की अत्यन्त रमणीय शाला थी जिसकी सीढ़ियाँ मणिनिर्मित थीं तथा जिसकी खिड़कियाँ सोने के जालों से बनी हुई थीं ॥ २२ ॥ उसका तल भाग हाथी के दाँत तथा स्फटिक मणियों से निर्मित था । मोती, हीरा, मूंगा, चाँदी तथा सोने से निर्मित ॥ २३ ॥ मणिमय सीधे ऊँचे अनेकों खम्भों से वह कोष्ठ शोभित हो रहा था ॥ २४ ॥ अपने ऊँचे २ स्तम्भ रूपी पक्षों से वह आकाश में उड़ना चाहता है । पृथ्वी (नदी, पर्वत, वन आदि) के चित्रों से चित्रित विशाल कुथ (कालीन) जिसमें बिछा हुआ था ॥ २५ ॥ पृथ्वी के समान विस्तार वाली राष्ट्रशाला (राष्ट्र को सन्देश पहुँचाने वाली) से युक्त, जिसमें प्रसन्न पक्षिगण बोल रहे थे तथा दिव्य गन्ध से जो सुगन्धित हो रही थी ॥ २६ ॥ मूल्यवान् बिछौने वहाँ पर बिछे हुए थे, जहाँ राक्षसराज रावण स्वयं निवास करता था । अगर आदि धूप से श्वेत तथा पीत धूमवाली हो रही थी ॥ २७ ॥ पुष्प आदि के उपहार से वह अत्यन्त चित्र विचित्र गौ के समान अत्यन्त शोभा वाली हो रही थी । मन को आनन्द देने वाली तथा शोभा को बढ़ाने वाली थी ॥ २८ ॥ शोक को नाश करने वाली, दिव्य कान्ति को देने वाली उस शाला ने हनुमान् की प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को पञ्च तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) को ॥ २९॥ माता के समान तृप्त किया । यह स्वर्ग है, देव लोक अथवा इन्द्र की अमरावती पुरी है अथवा ब्रह्म लोक है, ऐसा हनुमान् मन में विचार करने लगे ॥ ३० ॥ ध्यान करने वाले के समान तथा जुए के द्वारा बड़े जुआरी से पराजित छोटे जुआरी के समान हनुमान् ने वहाँ स्वर्णमय दीपों को देखा ॥३१॥ अनेक दीपकों के प्रकाश से, रावण

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च । अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेवाभ्यमन्यत ॥३२॥
ततोऽपश्यत्कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् । सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥३३॥
परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम् । क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं बलवत्तदा ॥३४॥
तत्प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषणम् । निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥३५॥
तासां संवृतदन्तानि मीलिताक्षाणि मारुतिः । अपश्यत्पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥३६॥
प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये । पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥३७॥
इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः । अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥३८॥
इति चामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः । मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥३९॥
सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता । शारदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥४०॥
स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः । यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरभिसंवृतः ॥४१॥
याश्च्यवन्तेऽम्बरात्ताराः पुण्यशेषसमावृताः । इमास्ताः संगताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥४२॥
ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् । प्रभा वर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥४३॥
व्यावृत्तकचपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः । पानव्यायामकालेषु निद्रापहृतचेतसः ॥४४॥
व्यावृत्ततिलकाः काश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः । पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित्परमयोषितः ॥४५॥

के तेज से तथा रत्न जटित आभूषणों के प्रकाश से वह लङ्कापुरी अग्निशिखा के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ३२ ॥ पश्चात् हनुमान् ने उत्तम कालीन पर नाना प्रकार के वस्त्र तथा मालाओं को पहने हुए, नाना प्रकार की वेषभूषा से अलंकृत हजारों उत्तम स्त्रियों को बैठे हुए देखा ॥ ३३ ॥ आधी रात के आने पर और नृत्य आदि क्रीडाओं के समाप्त हो जाने पर मद्य पान आदि से जहाँ बहुत सी स्त्रियाँ घोर निद्रा में सो रही थीं ॥ ३४ ॥ शब्दहीन वह स्त्रियों का शयनकक्ष इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जिस प्रकार शब्द हीन हंस भ्रमण से युक्त महान् कमल वन शोभित होता है ॥ ३५ ॥ उन सोई हुई स्त्रियों की मिली हुई दन्त पंक्ति, निमीलित आँखें तथा कमल के गन्ध वाले मुखों को हनुमान् ने देखा ॥ ३६ ॥ जैसे दिन में खिले हुए कमल रात्रि में मुकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकार उन प्रसुप्त स्त्रियों का मुख कमल रात्रि में मुकुलित हो गया था ॥ ३७ ॥ मतवाले भ्रमर विकसित कमल के समान स्त्रियों के मुख कमल को बार बार अवश्य ही चाहते होंगे ॥ ३८ ॥ वनवासी वीर हनुमान् ने तर्क के द्वारा प्रसुप्त स्त्रियों के मुख सुगन्धि आदि हेतुओं को देख कर उनको सरोवर से उत्पन्न कमल के समान ही समझा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार की उन स्त्रियों से परिपूर्ण वह रावण की शाला नक्षत्र मण्डित शरत् काल के आकाश के समान शोभित हुई ॥ ४० ॥ उन स्त्रियों से घिरा हुआ राक्षसराज रावण इस प्रकार सुशोभित हुआ जिस प्रकार नक्षत्रों से वेष्टित चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ ४१ ॥ पुण्य के शेष हो जाने पर जो नक्षत्र गण आकाश से गिरते हैं, वे सब यहीं एकट्ठे हो गये हैं, ऐसा हनुमान् ने उस समय समझा ॥ ४२ ॥ स्पष्ट ही नक्षत्र गण की वह कान्ति (ज्योति) तथा प्रसन्नता उन स्त्रियों में विराजमान थी ॥ ४३ ॥ मद्य पान तथा नृत्य आदि के श्रम से घोर निद्रा में आई हुई उन स्त्रियों के केश, मोटी मालाएँ तथा उत्तम भूषण सब शिथिल हो गये थे ॥ ४४ ॥ किन्हीं स्त्रियों के सिन्दूर आदि के तिलक मिट गये थे, किन्हीं स्त्रियों के नूपुर अपने स्थान से फिसल गये थे, किन्हीं सुन्दर स्त्रियों के मुक्ताहार टूट गये थे, ॥ ४५ ॥ किन्हीं के वस्त्र शिथिल हो गये थे, किन्हीं की रशना (कटि आभूषण) पृथक्

मुक्ताहारावृताश्चान्याः काश्चिद्विस्रस्तवाससः । व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥४६॥
अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः । गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥४७॥
चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुत्कटाः । हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥४८॥
अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः । हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥४९॥
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः । आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥५०॥
किंकिणीजालसंकोशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः । भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥५१॥
मृदुष्वङ्गेषु कासांचित्कुचाग्रेषु च संस्थिताः । बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ॥५२॥
अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः । उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥५३॥
ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः । नानावर्णाः सुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ॥५४॥
ववल्गुश्चात्र कासांचित्कुण्डलानि शुभार्चिषाम् । मुखमारुतसंपर्कान्मन्दं मन्दं सुयोषिताम् ॥५५॥
शर्करासवगन्धैश्च प्रकृत्या सुरभिः सुखः । तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥५६॥
रावणाननशङ्काश्च काश्चिद्रावणयोषितः । मुखानि स्म सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुनः पुनः ॥५७॥
अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः । अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥५८॥
बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषितान् । अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ॥५९॥

हो गई थी जो भार वहन से थकी हुई घोड़ी के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ४६ ॥ किन्हीं स्त्रियों के कुण्डल गिर गये थे तथा अनेक स्त्रियों की टूटी हुई छिन्न-भिन्न माला इस प्रकार मर्दित हो रही थी जैसे विशाल वन में पुष्पित लता हाथी के द्वारा मर्दित कर दी गई हो ॥ ४७ ॥ चन्द्र की किरणों के समान प्रकाशित हार स्त्रियों के स्तनों के मध्य में आ जाने से सोये हुए हंस के समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ४८ ॥ अन्य स्त्रियों के वैदूर्य मणि के हार जलीय पक्षी के समान प्रतीत हो रहे थे तथा अन्य स्त्रियों के गले का सूत्र चक्रवाक दम्पति के समान प्रतीत हो रहा था ॥ ४९ ॥ हंस, सारस, चक्रवाक आदि से युक्त तथा जघनरूपी पुलिन (तट) से युक्त वे प्रसुप्त स्त्रियाँ नदी के समान प्रतीत हो रही थीं ॥ ५० ॥ वे सोई हुई स्त्रियाँ जो नदी के समान प्रतीत हो रही थीं, उनकी रशना कली के समान थी, उनके स्वर्णालंकार कमल के समान थे। उनकी हाव-भाव-भङ्गी नक्र के समान थी और उनके यश नदी के तट के समान थे ॥ ५१ ॥ किन्हीं स्त्रियों के कुच आदि कोमल अङ्गों पर भूषणों के द्वारा जो रेखा पड़ गई थी, वह भूषण के समान ही सुशोभित होने लगी ॥ ५२ ॥ किन्हीं स्त्रियों के मुख वायु से कम्पित जो वस्त्र बार बार उनके मुख पर गिर रहे थे, उन वस्त्रों को वे बार बार हटाती थीं ॥ ५३ ॥ रावण की उन स्त्रियों के द्वारा मुख के पास से नाना वर्ण वाले तथा सुवर्ण निर्मित वह वस्त्र सुवर्ण तारों से बनी हुई फहराती पताका के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ५४ ॥ किन्हीं स्त्रियों के चमकते हुए कुण्डल उन्हीं के सांस से कम्पित मन्द मन्द हिल रहे थे ॥ ५५ ॥ स्वभावतः सुगन्धित तथा सुखकारी शर्करासव गन्ध से युक्त स्त्रियों के मुख वायु को रावण ने सेवन किया ॥ ५६ ॥ रावण के मुख की आशंका से कुछ स्त्रियाँ अपनी सपत्नियों के मुख सूंघ रही थीं ॥ ५७ ॥ रावण में अत्यन्त अनुराग रखने वाली तथा मद से घूर्णित पराधीन वे स्त्रियाँ अपनी सपत्नियों का उस समय प्रियाचरण ही कर रही थीं ॥ ५८ ॥ कोई स्त्रियाँ अलंकारों से अलंकृत अपनी भुजा को सिर के नीचे रख कर तथा कुछ स्त्रियाँ अपने रमणीय वस्त्रों को सिर के नीचे रख कर सो रही थीं ॥ ५९ ॥ कोई स्त्रियाँ दूसरों के वक्षःस्थल पर, कोई

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काश्चित्पुनर्भुजम्। अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा भुजौ ॥६०॥
ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः। परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः ॥६१॥
अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात्प्रीयमाणाः सुमध्यमाः। एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ॥६२॥
अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा। मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ॥६३॥
लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात्। अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ॥६४॥
व्यतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम् । आसीद्वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥६५॥
उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा। विवेकः शक्य आधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ॥६६॥
रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः। ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रैक्षन्तानिमिषा इव ॥६७॥
राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः। राक्षसानां च याः कन्यास्तस्य कामवशं गताः ॥६८॥
युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः। समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥६९॥

न तत्र काश्चित्प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा विना वरार्हां जनकात्मजां ताम् ॥७०॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता।
भार्याभवत्तस्य न हीनसत्त्वा न चापि कान्तस्य नाकमनीया ॥ ॥७१॥

किसी की गोद में तथा कोई किसी की भुजाओं पर सो रही थीं ॥ ६० ॥ मद तथा प्रेम के वशीभूत छाती से छाती, बगल, कमर तथा पीठ इन अङ्गों को एक दूसरे से मिला कर सो रही थीं ॥ ६१ ॥ परस्पर एक दूसरे के अङ्ग स्पर्श से प्रसन्न होतीं हुई वे स्त्रियाँ आपस में बाहु से बाहु मिला कर सो रही थीं ॥ ६२ ॥ परस्पर भुजा रूपी सूत्र से ग्रथित वह स्त्रियों की माला भ्रमरों से युक्त सूक्त-ग्रथित माला के समान सुशोभित हो रही थी ॥ ६३ ॥ वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित लताएँ वायु के झोंके से एक दूसरे से मिल कर फूलों से गुम्फित तथा भ्रमर युक्त माला के समान परस्पर एक दूसरे से कन्धे से कन्धा मिलाये हुए तथा परस्पर आलिङ्गित वह रावण की स्त्रियों का वन वायु कम्पित वन के समान ही प्रतीत हो रहा था ॥ ६४, ६५ ॥ यद्यपि वे भूषणों को अपने उचित स्थान पर पहने हुए थीं, यह स्पष्ट था, किन्तु विवेक पूर्वक यह निश्चय करना कि यह भूषण-वसन कौन किसका है, यह कठिन था ॥ ६६ ॥ रावण के सुखपूर्वक सो जाने पर स्वर्ण दीपक की जाज्वल्यमान प्रभा निर्निमेष दृष्टि से उन स्त्रियों को देखने लगी ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, दैत्य, गन्धर्व तथा राक्षसों की कन्याएं कामासक्त होकर ही रावण की स्त्रियाँ बनी थीं ॥ ६८ ॥ उनमें बहुत सी स्त्रियाँ युद्ध लिप्सु रावण के द्वारा अपहरण करके लाई गई थीं, कुछ स्त्रियाँ मदनार्दित होकर रावण के पास आई थीं ॥ ६९ । बलवान् होने पर भी रावण बलात किसी स्त्री को अपनी पत्नी नहीं बनाता था, किन्तु उसके गुणों पर मुग्ध होकर ही वे उसे पति रूप में स्वीकार करती थीं। एक श्रेष्ठ सीता को छोड़कर कोई स्त्री ऐसी नहीं थी जो रावण को छोड़कर दूसरों को चाहती हो तथा पहले दूसरे की स्त्री रह चुकी हो ॥ ७० ॥ रावण की उन स्त्रियों में कोई भी ऐसी नहीं थी जो अकुलीन वंश में उत्पन्न हुई हो, कुरूप हो, मूर्ख तथा अचतुर हो, भूषणों से रहित हो तथा अपने पति को प्रिय न हो ॥ ७१ ॥ समुन्नत विचार वाले हनुमान् के अन्दर उस समय यह भावना उत्पन्न हुई कि यदि रावण की अन्य स्त्रियों के समान रामचन्द्र की भार्या सीता भी हो गई है तो रावण के लिये ठीक ही है) भाव यह है कि अन्य स्त्रियों की

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा यथा राक्षसराजभार्याः सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥७२॥
पुनश्च सोऽचिन्तयदार्तरूपो ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान् महात्मा लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे संकुलान्तःपुरं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

मन्दोदरीदर्शनम्

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् । अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम् ॥ १ ॥
दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २ ॥
तस्य चैकतमे देशे सोऽग्र्यमालाविभूषितम् । ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम् ॥ ३ ॥
जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानुसमप्रभम् । अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥

भाँति सीता भी रावण के वश में हो गई तो उसका मनोरथ सफल हुआ । ऐसी अवस्था में गवेषण रूपी मेरा यह प्रयत्न तथा राम का यहाँ आगमन निष्प्रयोजन ही है) ॥ ७२ ॥ उदात्त विचार वाले हनुमान् के मन में पुनः यह भाव उत्पन्न हुआ कि पतिव्रता आदि गुणों से पूर्ण सीता अन्य स्त्रियों से विशिष्ट स्थान रखती है । लङ्केश्वर रावण ने सीता का हरण रूपी गर्हित अनार्य कर्म किया है (भाव यह है कि यदि सीता अन्य स्त्रियों के समान रावण के प्रति आकृष्ट होती तो रावण के हरण करने का अवसर ही क्यों आता । अतः मेरा प्रथम विचार भ्रांति पूर्ण था ।) ॥ ७३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'संकुल अन्तःपुर' विषयक नवम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ सर्ग

मन्दोदरी का दर्शन

इधर उधर खोज करते हुए हनुमान् ने स्फटिक मणि तथा रत्नों से सुभूषित अनुपम रावण का शयनासन पर्यङ्क (पलंग) देखा ॥ १ ॥ वह पलंग हाथी के दाँत, काञ्चन तथा वैदूर्य मणि से निर्मित तथा मूल्यवान् उत्तम बिछौने से अति विचित्र दिखाई दे रहा था ॥२॥ उस पलंग के एक भाग में दिव्य मालाओं से अलंकृत चन्द्रमा के समान एक श्वेत छत्र हनुमान् ने देखा ॥ ३ ॥ सोने की कारीगरी से युक्त, अशोक पुष्प की माला से युक्त, सूर्य के समान देदीप्यमान उस पलंग को हनुमान् ने देखा ॥ ४ ॥ हाथ में छोटे-छोटे

वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः । गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥ ५ ॥
परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम् । दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥ ६ ॥
तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोत्तमकुण्डलम् । लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥ ७ ॥
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना । सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतटिद्गणम् ॥ ८ ॥
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् । सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥ ९ ॥
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् । प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥ १० ॥
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः । भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥
निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरर्षभः । आसाद्य परमोद्विग्नः सोऽपासर्पत्सुभीतवत् ॥ १२ ॥
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः । क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥ १३ ॥
शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनोत्तमम् । गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत् ॥ १४ ॥
काञ्चनाङ्गदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः । विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥ १५ ॥
ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ । वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ॥ १६ ॥
पीनौ समसुजातांसौ सङ्गतौ बलसंयुतौ । सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ ॥ १७ ॥
संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ । विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ १८ ॥

चँवर लेकर जहाँ स्त्रियाँ सब ओर से हवा कर रही थीं तथा नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से एवं उत्तम प्रकार की धूपों से उस पलंग का स्थान परिपूर्ण हो रहा था ॥ ५ ॥ वह पलंग विशिष्ट जाति की भेड़ों के कोमल रोमपूर्ण त्वचा से आवृत था तथा उस पर मूल्यवान् उत्तम बिछौना बिछा हुआ था और सब ओर उत्तम मालाओं से शोभित हो रहा था ॥ ६ ॥ उत्तम वस्त्रालङ्कारों से अलंकृत उस पलंग पर मेघ के समान चमकीले कुण्डल पहने हुए, लाल आंखों वाले, पीताम्बरधारी, विशाल भुजा वाले ॥ ७ ॥ सुगन्धित लाल चन्दन से अनुलिप्त सन्ध्याकाल की लालिमा से युक्त, आकाश में विद्युत् युक्त मेघ के समान प्रतीत होने वाले ॥ ८ ॥ दिव्य अलंकारों से अलंकृत सुन्दर रूप वाले, स्वेच्छापूर्वक रूप धारण करने वाले, वृक्ष-वन-गुल्म से युक्त, निद्रित मन्दर के समान ॥ ९ ॥ रात्रि में खेल आदि से उपरत, उत्तम भूषणों से भूषित, राक्षस कन्याओं के प्रमास्पद, राक्षसों के सुखदायक ॥ १० ॥ मद्यपान जिसने समाप्त कर लिया है, इस प्रकार वीर राक्षसराज रावण को देदीप्यमान पलंग पर सोते हुए वनवासी वीर हनुमान् ने देखा ॥ ११ ॥ मतवाले गजराज के समान साँस लेते हुए रावण के समीप जाकर डरे हुए के समान हनुमान् वहाँ से लौट पड़े ॥ १२ ॥ पश्चात सीढ़ी के सहारे समीप ही एक दूसरी वेदि पर जाकर खड़े हुए महावीर हनुमान् ने उस मद्यप राक्षसराज रावण को देखा ॥ १३ ॥ रावण के सोते हुए वह पलंग इस प्रकार शोभायमान हो रहा था जैसे गन्धहस्ती (जिसकी गन्ध को अन्य गज सहन नहीं करते) से युक्त प्रस्रवण पर्वत सुशोभित होता है ॥ १४ ॥ इन्द्र की ध्वजा के समान काञ्चन अङ्गद (हाथ का आभूषण विजायट) से अलंकृत राक्षसराज रावण की फैली हुई दोनों भुजाओं को हनुमान् ने देखा ॥ १५ ॥ ऐरावत के दाँतों के आघात से जो चिह्नित हो रहा था, वज्र के आघात से मोटे कन्धे छिदे हुए थे । वैष्णव चक्र से जिन पर आघात हुआ था ॥ १६ ॥ जिसके दोनों कन्धे मोटे तथा मिले हुए थे । शोभनीय नख से पूर्ण अंगूठे वाले तथा सुन्दर अंगुलियों से दोनों भुजदण्ड परिपूर्ण थे ॥ १७ ॥ गोल परिघ के समान पुष्ट तथा हाथी के सूँड के समान, शुभ आसन पर फैले हुए उसके दोनों भुजदण्ड पाँच शिर वाले दो सर्पों के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ १८ ॥ उसके दोनों बाहु खरगोश के शोणित

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना । चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ ॥१९॥
उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ । यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥२०॥
ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ । मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव ॥२१॥
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः । शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥२२॥
चूतपुंनागसुरभिर्वकुलोत्तमसंयुतः । मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः ॥२३॥
तस्य राक्षससिंहस्य निश्चक्राम महामुखात् । शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् ॥२४॥
मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजितम् । मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥२५॥
रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना । पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजितम् ॥२६॥
पाण्डरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम् । महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तमवाससा ॥२७॥
माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत् । गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥२८॥
चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानचतुर्दिशम् । प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥२९॥
पादमूलगताश्चान्या ददर्श सुमहात्मनः । पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥३०॥
शशिप्रकाशवदनाश्चारुकुण्डलभूषिताः । अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥३१॥
नृत्तवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः । वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे हरिः ॥३२॥
वज्रवैदूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् । ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥३३॥

के समान लाल शीतल सुगन्धित मूल्यवान् चन्दन से अनुलिप्त थे ॥ १९ ॥ उत्तम स्त्रियों का आलिङ्गन करने वाले तथा उत्तम गन्ध का अनुलेपन करने वाले, पन्नग, गन्धर्व, देव, दानवों को सदा रुलाने वाले ॥ २० ॥ पलंग पर सोते हुए रावण के दोनों भुजदण्डों को मन्दराचल की गुफा में क्रुद्ध दो सर्पों के समान हनुमान् ने देखा ॥ २१ ॥ उन दोनों भुजाओं से युक्त राक्षसराज रावण दो शिखर वाले मन्दर पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था ॥ २२ ॥ आम, सुपारी, बकुल (मौलसरी), उत्तम अन्न, रस तथा मद्य के गंन्ध से पूर्ण ॥ २३ ॥ राक्षसराज रावण के मुख से श्वास प्रश्वास के द्वारा जो गन्ध निकली, उससे सारा भवन परिपूण हो रहा था ॥ २४ ॥ मोती, रत्न तथा काञ्चन से निर्मित उसका सुन्दर मुकुट, निद्रित होने के कारण, अपने स्थान से हट गया था । उसका मुख मण्डल चमकते हुए कुण्डल से परिपूर्ण था ॥ २५ ॥ लाल चन्दन से अनुलिप्त तथा उत्तम हार से परिपूर्ण उसका विशाल समुन्नत वक्षःस्थल सुशोभित हो रहा था ॥ २६ ॥ पहनने का श्वेत रेशमी वस्त्र कुछ अस्त-व्यस्त हो गया था तथा मूल्यवान् पीत वर्ण का उत्तरीय धारण किये हुए था । उसके नेत्र रक्तवर्ण के थे ॥ २७ ॥ उड़द की राशि के समान श्यामवर्ण वाला, सर्प के समान लम्बी सांस लेने वाला वह रावण विशाल गंगाजल में सोने वाले हाथी के समान प्रतीत हो रहा था ॥२८॥ चारों दिशाओं में सोने के चार दीपकों से विद्युत् द्वारा प्रकाशित मेघ के समान उसके सम्पूर्ण अङ्ग प्रकाशित हो रहे थे ॥२९॥ उस राक्षसराज के भवन में विलासी रावण के चरण के समीप पड़ी हुई उसकी स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥३०॥ वे स्त्रियाँ चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली थीं, उत्तम कुण्डल धारण किये हुये थीं तथा जिनके माला-आभरण कभी मुर्झाते नहीं थे, ऐसी स्त्रियों को वीर हनुमान् ने देखा ॥३१॥ नाचने बजाने में कुशल, रावण की छत्र छाया में रहने वाली, उत्तम आभूषण धारण करने वाली स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥ ३२ ॥ उन सोती हुई स्त्रियों के स्फटिक तथा वैदूर्यमणि से जटित उत्तम सोने के कुण्डल (कर्णभूषण) अङ्गद (हाथ के भूषण) हनुमान् ने देखे ॥३३॥ शुभ तथा उत्तम कुण्डलों से युक्त तथा चन्द्रमा के समान उन स्त्रियों के मुखों से युक्त वह

तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः । विरराज विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥३४॥
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः । तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥३५॥
अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्तशालिनी । विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ॥३६॥
काचिद्वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता संप्रकाशते । महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ॥३७॥
अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा । प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥३८॥
पटहं चारुसर्वाङ्गी पीड्य शेते शुभस्तनी । चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव भामिनी ॥३९॥
काचिद्वंशं परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना । रहः प्रियतमं गृह्य सकामेव च कामिनी ॥४०॥
विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्तशालिनी । निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥४१॥
अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः । मृदङ्गं परिपीड्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥४२॥
भुजपार्श्वान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी । पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥४३॥
डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा । प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगूह्येव भामिनी ॥४४॥
काचिदाडम्बरं नारी भुजसंयोगपीडितम् । कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥४५॥
कलशीमपविध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी । वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥४६॥
पाणिभ्यां च कुचौ काचित्सुवर्णकलशोपमौ । उपगूह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥४७॥
अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना । अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं प्रसुप्ता मदविह्वला ॥४८॥

भवन नक्षत्र मण्डित आकाश के समान सुशोभित हो रहा था ॥३४॥ मद्य के नशे तथा नृत्य आदि की थकावट से राक्षसराज रावण की वे स्त्रियाँ जिसको जहाँ स्थान मिला, वह वहीं सो गईं ॥३५॥ अङ्गराग आदि से अनुलिप्त, कोमल शुभनृत्य करने वाली तथा अत्यन्त शोभन अङ्गवाली कुछ स्त्रियाँ अपने उत्तम आभूषणों को अलग करके सो रही थीं ॥ ३६ ॥ कोई स्त्री वीणा (सितार) का आलिङ्गन कर सोती हुई इस प्रकार प्रतीत हो रही थी जैसे विशाल नदी में किसी कुमुदिनी ने दीर्घ नौका का आश्रय लिया हो ॥ ३७ ॥ दूसरी कोई स्त्री मड्डुक वाद्य को गोद में लेकर इस प्रकार सोई थी जैसे कोई पुत्रवत्सला माता पुत्र को गोद में लेकर सोई हो ॥ ३८ ॥ कोई सुन्दर वक्षःस्थल वाली उत्तम सुन्दरी अपने वक्षःस्थल पर पटह (ढोलक) का आलिङ्गन कर इस प्रकार सो रही थी, मानो चिरकाल के पश्चात् मिले पति का आलिङ्गन कर कोई कामिनी सो रही हो ॥ ३९ ॥ कोई कमलनयनी स्त्री वंश (विशेष वीणा) का आलिङ्गन कर इस प्रकार सो रही थी मानो मदनार्दिता कोई कामिनी अपने पति का आलिङ्गन करके सो रही हो ॥ ४० ॥ कोई विशिष्ट नर्तकी विपञ्ची (एक प्रकार की वीणा) का आलिङ्गन कर इस प्रकार सो रही थी मानो अपने पति के साथ सो रही हो ॥४१॥ कोई मदघूर्णिता नायिका स्वर्ण के समान अपने पुष्ट तथा कमनीय अङ्गों से मृदङ्ग का आलिङ्गन करके सो रही थी ॥ ४२ ॥ मादकता तथा नृत्य आदि के श्रम से क्लान्त कृशोदरी पणव वाद्य का भुज पार्श्व से आलिङ्गन करके सो रही थी ॥ ४३ ॥ डिण्डिम नाम के वाद्य से प्रेम करने वाली नायिका डिण्डिम का आलिङ्गन कर सो रही थी मानो कोई नायिका अपने हृष्ट-पुष्ट बच्चे को लेकर सो रही हो ॥ ४४ ॥ मदघूर्णिता कोई कमलनयनी आडम्बर नामक वाद्य का अपनी भुजाओं से आलिङ्गन करके सो रही थी ॥ ४५ ॥ कोई स्त्री जलपूर्ण घट को लुढ़का कर सोती हुई इस प्रकार प्रतीत हो रही थी जैसे वसन्त ऋतु में चित्रविचित्र नाना प्रकार के पुष्पों से बनी हुई जल से भीगी माला ॥ ४६ ॥ कोई नायिका स्वर्ण कलश के समान अपने दोनों स्तनों को अपने दोनों हाथों से ढाँप कर सो रही थी ॥ ४७ ॥ चन्द्रमुखी, कमलनयनी कोई नायिका दूसरी नायिका का आलिङ्गन करके सो रही थी ॥ ४८ ॥ अन्य अनेक सुन्दर स्त्रियाँ नाना प्रकार के वाद्यों का

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्यापराः स्त्रियः । निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥४९॥
तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे । ददर्श रूपसंपन्नामपरां स कपिः स्त्रियम् ॥५०॥
मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम् । विभूषयन्तीमिव तत्स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥५१॥
गौरीं कनकवर्णाङ्गीमिष्टामन्तःपुरेश्वरीम् । कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥५२॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः । तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसंपदा ॥५३॥
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम ।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे मन्दोदरीदर्शनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

पानभूमिविचयः

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा । जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी । न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥

आलिङ्गन कर सो रही थीं मानो अनेक कामुक अपनी कामिनियों के साथ सो रहे हों ॥ ४९ ॥ उन स्त्रियों से अलग एक दूसरे शोभनीय पलंग पर सोई हुई एक परम सुन्दरी स्त्री को हनुमान् ने देखा ॥ ५० ॥ मोती, माणिक्य आदि से युक्त भूषणों से अलंकृत वह देवी अपने सौन्दर्य तथा आभूषणों से उस भवन को प्रकाशित कर रही थी ॥ ५१ ॥ काञ्चन के समान गौर वर्णा परम सुन्दरी लङ्कापुरी की महारानी लङ्केश्वर रावण की धर्मपत्नी मन्दोदरी को हनुमान् ने देखा ॥ ५२ ॥ विशाल भुजा वाले पवनसुत हनुमान् ने उस देवी को देख कर लावण्य तथा यौवन से सम्पन्न सीता समझ लिया तथा अत्यन्त हर्ष से वे प्रफुल्लित हो गये ॥ ५३ ॥ हनुमान् अपने पृष्ठ भाग पर बन्धे हुए अपने राष्ट्रीय ध्वज को उछालते तथा चूमते हुए प्रसन्न हो गये, खेलने लगे, गाते हुए खम्भों पर चढ़ने उतरने लगे। इस प्रकार उस समय हनुमान् अपनी वनवासी जाति की सहज लीला के द्वारा प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'मन्दोदरी का दर्शन' विषयक दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

पानभूमि का अन्वेषण

थोड़े ही समय के पश्चात् अपनी पूर्व निर्धारित विचारधारा को दूर कर हनुमान् निर्भ्रान्त हो गये तथा सीता के विषय में अन्य प्रकार की चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ वह देवी राम से वियुक्त होने के कारण इस प्रकार सो नहीं सकती, रस आदि पदार्थों का भोग नहीं कर सकती, शरीर को अलंकृत नहीं कर सकती, आसव आदि का पान नहीं कर सकती ॥ २ ॥ वह किसी भी पर-पुरुष के पास नहीं जा सकती, चाहे वह

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् । न हि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥ ३ ॥
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः । पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः ॥ ४ ॥
क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथापराः । नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ॥ ५ ॥
मुरजेषु मृदङ्गेषु पीठिकासु च संस्थिताः । तथास्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ॥ ६ ॥
अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः । रूपसँल्लापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ॥ ७ ॥
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना । रताधिकेन संयुक्तां ददर्श हरियूथपः ॥ ८ ॥
अन्यत्रापि वरस्त्रीणां रूपसंलापशालिनाम् । सहस्रं युवतीनां तु प्रसुप्तं स ददर्श ह ॥ ९ ॥
देशकालाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधायि तत् । रताविरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः ॥१०॥
तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः । गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ॥११॥
स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् । करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः ॥१२॥
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः । ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥१३॥
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः । तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः ॥१४॥
रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वर्धभक्षितान् । ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा ॥१५॥
वराहवाध्रीणसकान् दधिसौवर्चलायुतान् । शल्यान् मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत ॥१६॥
क्रकरान् विविधान् सिद्धांश्चकोरानर्धभक्षितान् । महिषानेकशल्यांश्च च्छागांश्च कृतनिष्ठितान् ॥१७॥
लेह्यानुच्चावचान् पेयान् भोज्यानि विविधानि च । तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागषाडवैः ॥१८॥

देवराज इन्द्र ही क्यों न हो । क्योंकि राम की समता करने वाला देवलोक में भी कोई नहीं है ॥ ३ ॥ यह कोई और ही है ऐसा निश्चय करके वनवासी वीर हनुमान् सीता के दर्शन की उत्सुकता से पुनः उस खान-पान के भवन में घूमने लगे ॥ ४ ॥ कोई नृत्य-क्रीड़ा आदि से क्लान्त हो रही थी, कोई गान एवं नृत्य से क्लान्त हो रही थी और कोई मद्यपान से मूर्छित हो रही थी ॥ ५ ॥ कुछ स्त्रियाँ मुरज, मृदङ्ग, पीठिका वाद्यों पर पड़ी हुई थीं तथा कुछ स्त्रियाँ अपनी उत्तम शय्या पर पड़ी थीं ॥ ६ ॥ मूल्यवान् आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत करने वाली, अपने सौन्दर्य का कथन करने वाली तथा गीत के अर्थों पर विचार करने वाली ॥ ७ ॥ देश-काल के व्यवहार से युक्त तथा समुचित वाणी का व्यवहार करने वाली स्त्रियों से परिपूर्ण उस पानभूमि को हनुमान् ने देखा ॥ ८ ॥ अन्य स्थानों में भी उन सुन्दर स्त्रियों को तथा अपने रूप सौन्दर्य की चर्चा करने वाली सहस्रों सोती हुई युवतियों को हनुमान् ने देखा ॥ ९ ॥ देश-काल के व्यवहार को जानने वाली, उचित वार्तालाप करने वाली, काम कलाप से विरत होकर सोने वाली स्त्रियों को हनुमान् ने देखा ॥ १० ॥ उन स्त्रियों के बीच में विशाल भुजा वाला राक्षसराज रावण इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे महान् गौओं के समूह में साँड़ शोभित होता है ॥ ११ ॥ वह राक्षसराज रावण उन स्त्रियों से घिरा हुआ वन में हथनियों से घिरे हुए गजराज के समान प्रतीत हो रहा था ॥ १२ ॥ उस राक्षसराज रावण के महल में सम्पूर्ण आवश्यक सामग्रियों से युक्त खान-पान भूमि को वनवासिसिंह हनुमान् ने देखा ॥ १३ ॥ उस पानभूमि में पृथक् पृथक् मृग, भैंस, वराह के मांसों को रखे हुए हनुमान् ने देखा ॥ १४ ॥ सोने के विशाल पात्रों में मोर, मुर्गे के मांस को जो कुछ खा लिया गया है, हनुमान् ने देखा ॥ १५ ॥ सूअर, वाध्रीणसक (बकरा), गोह, हरिण, मोर के मांसों को नमक-दधि से युक्त हनुमान् ने देखा ॥ १६ ॥ क्रकर (विशेष पक्षी), नाना प्रकार के बकरे, अर्धभक्षित चकोर, भैंसे, विशेष मछली, आदि जन्तुओं के मांस खण्डों को ॥ १७ ॥ चटनियों, उत्तम पेय खाद्य तथा नमक खटाई से युक्त पकान्नों को हनुमान् ने देखा ॥१८॥

हारनूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः । पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ॥१९॥
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकं पुष्यति श्रियम् । तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टैः शयनासनैः ॥२०॥
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते । बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ॥२१॥
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् । दिव्याः प्रसन्ना विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ॥२२॥
शर्करासवमाध्वीकपुष्पासवफलासवाः । वासचूर्णैश्च विविधैर्दृष्टास्तैस्तैः पृथक्पृथक् ॥२३॥
संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः । हिरण्मयैश्च विविधैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ॥२४॥
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता । राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ॥२५॥
पानश्रेष्ठं तथा भूरि कपिस्तत्र ददर्श सः । सोऽपश्यच्छातकुम्भानि शीधोर्मणिमयानि च ॥२६॥
राजतानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः । क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित्पीतानि सर्वशः ॥२७॥
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह । क्वचिद्भक्ष्यांश्च विविधान् क्वचित्पानानि भागशः ॥२८॥
क्वचिदन्नावशेषाणि पश्यन् वै विचचार ह । क्वचित्प्रभिन्नैः करकैः क्वचिदालोलितैर्घटैः ॥२९॥
क्वचित्संपृक्तमाल्यानि मूलानि च फलानि च । शयनान्यत्र नारीणां शुभ्राणि बहुधा पुनः ॥३०॥
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित्सुप्ता वराङ्गनाः । काश्चिच्च वस्त्रमन्यस्याः स्वपन्त्याः परिधाय च ॥३१॥
आहृत्य चाबलाः सुप्ता निद्राबलपराजिताः । तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् ॥३२॥
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्यमन्दमिवानिलम् । चन्दनस्य च शीतस्य शीधोर्मधुरसस्य च ॥३३॥
विविधस्य च माल्यस्य धूपस्य विविधस्य च । बहुधा मारुतस्तत्र गन्धं विविधमुद्वहन् ॥३४॥
रसानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्छितः । प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा ॥३५॥

इधर-उधर बिखरे हुए मूल्यवान् नूपुर, केयूर, इधर-उधर लुढ़के हुए प्याले तथा नाना प्रकार के फलों से युक्त ॥ १९ ॥ फूलों के आधिक्य से वहाँ का शयनीय स्थान तथा भूभाग अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २० ॥ वहाँ की पानभूमि बिना अग्नि के ही प्रकाशित हो रही थी, बहुत प्रकार के मसालों से युक्त तथा पाकविद्या विशारदों के द्वारा पकाये हुए मांस और दिव्य विविध प्रकार की बनाई हुई सुराएँ ॥ २१, २२ ॥ इक्षुरस आदि से बनी हुई, महुए के पुष्पों तथा अन्य फलों से पृथक्-पृथक् निर्मित सुगन्ध युक्त सुराओं को देखा ॥२३॥ सोने के कलशों तथा स्फटिक मणि के पात्रों से युक्त और नाना प्रकार की मालाओं से परिपूर्ण वहाँ की भूमि निरन्तर शोभायमान हो रही थी ॥२४॥ बहुत से सोने के बने हुए घट तथा छोटे पात्र और चाँदी के बने हुए घड़ों को ॥२५॥ हनुमान् ने उस पानभूमि में देखा। रत्न जटिल उन स्वर्ण कलशों को सुरा से पूर्ण हनुमान् ने देखा ॥२६॥ उन सुरापूर्ण पात्रों को हनुमान् जी ने वहाँ देखा जिनमें कुछ आधे पिये हुए थे और कुछ की सारी सुरा पी ली गई थी ॥२७॥ कुछ ऐसे पान पात्रों को देखा जो बिल्कुल नहीं पिये गये थे और नाना प्रकार के भक्ष्य एवं सुराओं को हनुमान् ने वहाँ देखा ॥२८॥ कुछ ऐसे पात्र थे जिनमें भक्ष्य अन्न बचे हुए थे, कुछ ऐसे घट थे जो टूटे हुए थे और कुछ ऐसे थे जो अस्त व्यस्त उलटे पड़े थे ॥ २९ ॥ कहीं फल मूल से युक्त स्त्रियों की शोभनीय शय्या को देखते हुए हनुमान् विचरने लगे ॥ ३० ॥ कुछ उत्तम स्त्रियाँ परस्पर आलिङ्गन करके सो रही थीं। कुछ स्त्रियाँ दूसरों के वस्त्र को खींचकर तथा ओढ़ कर ॥ ३१ ॥ अत्यन्त निद्रा से युक्त होकर दूसरों की शय्या पर सो गई थीं। उनके मन्द-मन्द साँस से उनकी माला तथा शरीर पर के वस्त्र ॥ ३२ ॥ अति कम्पित नहीं हो रहे थे जैसे मन्द वायु वेग से बाह्य वस्तु अति स्पन्दित नहीं होती। शीतल चन्दन की तथा मधुर सुरा की ॥ ३३ ॥ विविध प्रकार की माला और पुष्पों की, चन्दन-जल की तथा उठती हुई धूपों की उत्तम गन्ध को लेकर सुगन्धित वायु उस पुष्पक विमान में बह रही थी ॥३४, ३५॥ वहाँ

श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित्कृष्णा वराङ्गनाः । काश्चित्काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये ॥३६॥
तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन च मूर्छितम् । पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद्यथैव हि ॥३७॥
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः । ददर्श सुमहातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥३८॥
निरीक्षमाणश्च तदा ताः स्त्रियः स महाकपिः । जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥३९॥
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् । इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥४०॥
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी । अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥४१॥
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः । निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥४२॥
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः । न हि मे मनसः किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥४३॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तने । शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥४४॥
नान्यत्र च मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् । स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सर्वथा परिमार्गणे ॥४५॥
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमृग्यते । न शक्या प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ॥४६॥
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया । रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥४७॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् । अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ॥४८॥
तामपश्यन् कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥४९॥

पर श्यामवर्ण वाली, गौरवर्ण वाली तथा कोई सर्वथा कृष्णवर्ण वाली, कोई स्वर्ण के समान अत्यन्त गौर रंग रावण के भवन में थी ॥ ३६ ॥ निद्रासक्त तथा मदनार्दित होने के कारण मुकुलित पद्मिनी के समान वे स्त्रियाँ प्रतीत हो रही थीं ॥३७॥ इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान् ने रावण के सम्पूर्ण अन्तःपुर (रनिवास) को देखा, किन्तु जानकी को उन्होंने नहीं देखा ॥ ३८ ॥ उन स्त्रियों को इस अवस्था में देखते हुए धर्मलोप की आशङ्का से उनके मन में महती चिन्ता उत्पन्न हो गई ॥ ३९ ॥ स्त्रियों के अन्तःपुर में जाना तथा प्रसुप्त स्त्रियों को देखना, यह सब मेरे धर्म का अत्यन्त लोप कर देगा ॥ ४० ॥ यद्यपि दूसरों की स्त्रियों पर मेरी दृष्टि विषयासक्त नहीं है तो भी मैंने परायी स्त्रियों को यहाँ देख ही लिया ॥४१॥ कर्त्तव्याकर्तव्य को निश्चित करने वाली बुद्धि जिसकी है, ऐसे दृढ़ विचार वाले मनस्वी हनुमान् के मन में दूसरी विचारधारा उत्पन्न हो गई ॥ ४२ ॥ ठीक है, मैंने रावण की सम्पूर्ण स्त्रियों को निश्चिन्त अवस्था में सोते हुए देखा, किन्तु इनके दर्शन से भी मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ४३ ॥ शुभ अशुभ कार्यों में इन्द्रियों को प्रेरित करने के लिये ही मन प्रधान कारण माना गया है, किन्तु वह मन सुव्यवस्थित (मेरे वश में, शुभ संकल्प वाला) है ॥ ४४ ॥ इसके अतिरिक्त सीता को मैं अन्य किस स्थान पर खोज सकता था ? प्रायः स्त्रियों की खोज करने वाले उन्हें स्त्रियों में खोजा करते हैं ॥ ४५ ॥ जिस प्राणी की जो योनि होती है उसे उसी जाति में खोजा जाता है । कोई भूली हुई स्त्री हरिणियों में नहीं खोजी जाती ॥ ४६ ॥ इसलिये मैंने शुद्ध मन से रावण के सम्पूर्ण अन्तःपुर को देखा, किन्तु जानकी को यहाँ नहीं देखा ॥४७॥ देव, गन्धर्व, नागकन्याओं को देखते हुए वीर हनुमान् ने वहाँ जानकी को नहीं देखा ॥ ४८ ॥ अन्य स्त्रियों को देखते हुए भी सीता को वहाँ न देखकर हनुमान् वहाँ से अन्य स्थान को जाने के लिए तैयार हो गये ॥ ४९ ॥

स भूयस्तु परं श्रीमान् मारुतिर्यत्नमास्थितः । आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पानभूमिविचयो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

हनूमद्विषादः

स तस्य मध्ये भवनस्य मारुतिर्लतागृहांश्चित्रगृहान्निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रति दर्शनोत्सुको न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥१॥
स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम् ।
ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥२॥
सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती ।
अनेन नूनं प्रतिदुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे वरे स्थिता ॥३॥
विरूपरूपा विकृता विवर्चसो महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
समीक्ष्य सा राक्षसराजयोषितो भयाद्विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥४॥

वे हनुमान् सम्पूर्ण पान भूमि को छोड़कर सीता की खोज करने के लिये उद्योग में प्रवृत्त हुए ॥५०॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'पान भूमि का अन्वेषण' विषयक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥११॥

बारहवाँ सर्ग

हनुमान् का विषाद

रावण के भवन के मध्य में सीता के दर्शन के इच्छुक हनुमान् ने लतागृह(लताओं से आच्छादित) चित्रगृह (चित्र निर्माण गृह) निशागृह (शयनागार) में जाकर सब देखा, किन्तु चारुदर्शना सीता को न देखा ॥ १ ॥ रामचन्द्र की प्राणप्रिया जानकी को न देखकर हनुमान् के मन में यह चिन्ता उत्पन्न हो गई कि निश्चय ही सीता अब इस संसार में नहीं है क्योंकि यदि वह होती तो इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक खोज करने पर मुझे अवश्य मिल जाती ॥ २ ॥ अपने चरित्र की रक्षा में निरन्तर लगी हुई सीता को जो सदा आर्यों के मार्ग पर चलने वाली थी, नीच कर्म करने वाले राक्षसराज रावण ने अवश्य मार दिया है ॥ ३ ॥ विकृत रूपवाली, कान्तिहीना, भयङ्कर रूपवाली राक्षसराज रावण की स्त्रियों को देखकर सीता ने स्वयं प्राण त्याग दिया होगा ॥ ४ ॥ सीता को देखकर प्रयत्न पूर्वक समुद्र के तैरने का फल न पाकर वनवासियों

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥ ५ ॥
दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः । न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ६ ॥
किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः । गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥ ७ ॥
अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् । ध्रुवं प्रायमुपैष्यन्ति कालस्य व्यतिवर्तने ॥ ८ ॥
किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः । गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥ ९ ॥
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् । अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ॥१०॥
करोति सफलं जन्तोः कर्म यत्तत्करोति सः । तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ॥११॥
भूयस्तावद्विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः । अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान् ॥१२॥
आपानशाला विचितास्तथा पुष्पगृहाणि च । चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ॥१३॥
निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः । इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ॥१४॥
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि । उत्पतन्निष्पतंश्चापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः पुनः ॥१५॥
अपावृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघाटयन् । प्रविशन्निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्नपि ॥१६॥
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः । चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ॥१७॥
रावणान्तःपुरे तस्मिन् यं कपिर्न जगाम सः ॥

के साथ सुग्रीव की दी हुई सीता को खोजने की काल अवधि बिता कर राजा सुग्रीव के पास जाने की स्थिति में अब मैं नहीं रहा। वनवासी राजा सुग्रीव कठोर दण्ड देने वाले तथा बलवान् हैं ॥ ५ ॥ रावण का सम्पूर्ण अन्तःपुर देख लिया, राक्षसराज रावण की सम्पूर्ण स्त्रियों को भी देख लिया किन्तु साध्वी सीता कहीं भी नहीं दिखाई दी। इस लिये सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ हुआ ॥ ६ ॥ यहाँ से लौट जाने पर जब ये सब मेरे साथी वनवासी मिलेंगे तो वे क्या कहेंगे ? हे वनवासी वीर हनुमान् ! तुमने वहाँ जाकर क्या किया, हम लोगों से बताओ ॥ ७ ॥ विना जानकी के देखे हुए उन लोगों से मैं क्या कहूंगा। निश्चय ही खोजने की अवधि बीत जाने पर अन्न-जल छोड़कर प्राण त्याग करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ वहाँ जाने पर वृद्ध जाम्बवान् तथा राजकुमार अङ्गद और अन्य वनवासी वीर मुझसे मिलने पर क्या कहेंगे ॥ ९ ॥ उत्साह ही सम्पूर्ण सफलता का मूल है, उत्साह ही परम सुख है, उत्साह ही सम्पूर्ण सफलताओं का प्रवर्त्तक है ॥ १० ॥ मनुष्य जो कुछ भी काम करता है उसमें उत्साह से ही सफलता मिलती है। इस लिये मैं उत्साह पूर्वक उत्तम प्रयत्न करने की चेष्टा करूँ ॥ ११ ॥ फिर भी उन स्थानों को मैं देखूँगा जिनको नहीं देखा है। रावण से पालित लङ्का के उन स्थानों को भी देखूँगा जिनको अब तक नहीं देखा है ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण पानशाला को खोजा, पुष्प-गृह, चित्रशालागृह तथा क्रीड़ागृह को भी मैंने खोजा ॥ १३ ॥ वाटिका के समीप गलियों को देखा, सब ओर से विमानों को भी देखा। ऐसा विचार करते हुए हनुमान् पुनः सीता की खोज में लग गये ॥ १४ ॥ भूमिगृह, (तहखाना) मण्डपगृह, एकान्त में बने हुए गृह, इन घरों के ऊपर चढ़ते हुए, कहीं खड़े होकर, कहीं चलते हुए हनुमान् सीता को खोजने लगे ॥ १५ ॥ कहीं दरवाजों को खोलकर, कहीं बन्द करके, कहीं घरों में प्रवेश करके, कहीं अन्दर से बाहर आकर, कहीं ऊपर जाकर, कहीं नीचे जाकर ॥ १६ ॥ उन सम्पूर्ण स्थानों पर हनुमान् ने सीता को खोजा। रावण के अन्तःपुर में चार अङ्गुल का भी ऐसा कोई स्थान शेष नहीं रहा जहाँ हनुमान् न गये हों ॥ १७ ॥ चहारदीवारियों के समीप की गलियाँ, मण्डप की बेदियाँ

प्राकारान्तररथ्याश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः । दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् ॥१८॥
राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तदा । दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥१९॥
रूपेणाप्रतिमा लोके वरा विद्याधरस्त्रियः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥२०॥
नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु सीता सुमध्यमा ॥२१॥
प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः । दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥२२॥
सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । विषसाद मुहुर्धीमान् हनुमान् मारुतात्मजः ॥२३॥
उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च । व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागमत् ॥२४॥
अवतीर्य विमानाच्च हनुमान् मारुतात्मजः । चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनुमद्विषादो नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

हनूमन्निर्वेदः

विमानात्तु सुसंक्रम्य प्राकारं हरिपुंगवः । हनुमान् वेगवानासीद्यथा विद्युद्घनान्तरे ॥ १ ॥

(बैठने के स्थान), नहरों तथा कमल युक्त तालावों को हनुमान् ने देखा ॥ १८ ॥ नाना प्रकार से विकृत रूप वाली तथा कुरूपा राक्षस स्त्रियों को वहाँ देखा किन्तु जनककुमारी सीता को वहाँ नहीं देखा ॥ १९ ॥ लोक में अप्रतिम रूप वाली, विद्याधर जाति की स्त्रियों को वहाँ देखा, किन्तु जनककुमारी सीता को नहीं देखा ॥ २० ॥ चन्द्रमा के समान मुखवाली नाग कन्याओं को वहाँ देखा, किन्तु जनकनन्दिनी सीता को नहीं देखा ॥ २१ ॥ रावण के द्वारा बलपूर्वक लाई हुई नाग-कन्याओं को वहाँ देखा, किन्तु सीता को वहाँ नहीं देखा ॥ २२ ॥ अन्य स्त्रियों को वहाँ देखकर तथा सीता को न देखकर विशाल भुजा वाले बुद्धिमान् पवनसुत हनुमान् विषाद करने लगे ॥ २३ ॥ अपने वनवासी साथियों का उद्योग, स्वयं समुद्र को पार करने का परिश्रम, इन सबको निष्फल देखकर हनुमान् पुनः चिन्तित हो गये ॥ २४ ॥ पवनसुत हनुमान् विमान से उतर कर शोक से खिन्न होते हुए चिन्ता पूर्वक विचार करने लगे ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का विषाद' विषयक बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ सर्ग

हनुमान् का शोक

वनवासी सेनापति वेगवान् हनुमान् विमान से उतर कर चहारदीवारी के समीप इस प्रकार आये जैसे मेघमाला में विद्युत् गमन करती है ॥ १ ॥ रावण के इस राजमहल में सब ओर खोजने पर हनुमान्

संपरिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशनम् । अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥ २ ॥
भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् । न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३ ॥
पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा । नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ॥ ४ ॥
लोलिता वसुधा सर्वा न तु पश्यामि जानकीम् । इह संपातिना सीता रावणस्य निवेशने ॥ ५ ॥
आख्याता गृध्रराजेन न च पश्यामि तामहम् ॥
किं नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा । उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ ६ ॥
क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः । बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥ ७ ॥
अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते । मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ॥ ८ ॥
रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च । तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥ ९ ॥
उपर्युपरि वा नूनं सागरं क्रमतस्तदा । विवेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ॥१०॥
आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः । अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ॥११॥
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा । अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ॥१२॥
संपूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता ॥१३॥
हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली । विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति ॥१४॥
अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने । नूनं लालप्यते सीता पञ्जरस्थेव शारिका ॥१५॥

ने जब जानकी को नहीं देखा तो अपने आप इस प्रकार बोले ॥ २ ॥ रामचन्द्र के प्रिय कार्य की इच्छा से मैंने लङ्का का पुनः अन्वेषण किया, किन्तु सर्वाङ्ग सुन्दरी सीता को मैं तब भी नहीं देख पाया ॥ ३ ॥ छोटे बड़े तालाब, छोटी बड़ी नदियाँ, नदी के तट के वन, दुर्गम पर्वतमाला ॥ ४ ॥ आदि सम्पूर्ण लङ्का की भूमि खोज डाली किन्तु जानकी नहीं दिखाई दी। गृध्र जाति के राजर्षि संपाति ने यह कहा था कि सीता रावण के भवन में है, किन्तु वह यहाँ नहीं दिखाई दे रही है ॥ ५ ॥ रावण के द्वारा बलात् हरी हुई विवश सीता क्या रावण को स्वीकार कर लेगी? किन्तु ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि वह संभ्रांत कुल विदेह की पुत्री है ॥ ६ ॥ राम के बाण से डरा हुआ रावण जानकी को लेकर जब आकाश में उड़ा होगा तो भयातुरा सीता गिर गई होगी, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ७ ॥ सिद्ध, चारणों से सेवित आकाश मार्ग से जब रावण उड़ा होगा, तो उस समय समुद्र को देखकर आर्या सीता का हृदय अवश्य फट गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ रावण के अत्यंत वेग से ले जाते हुए उसकी भुजाओं से पीड़ित विशालाक्षी आर्या सीता ने अवश्य प्राण त्याग दिये होंगे ॥ ९ ॥ समुद्र को पार करते हुए जिस समय रावण सीता को ले जा रहा था, उस समय छटपटाती सीता कहीं सागर में तो नहीं गिर गई ॥ १० ॥ अपने चरित्र की रक्षा करती हुई बन्धु-बान्धवहीन तपस्विनी सीता को इस पतित रावण ने कहीं खा तो नहीं लिया ॥ ११ ॥ अथवा राक्षसराज रावण की दुष्ट विचार वाली पत्नियों ने कमलनयनी साध्वी सीता को खा लिया होगा ॥ १२ ॥ पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले कमलनेत्र रामचन्द्र के मुखमण्डल का ध्यान करते हुए सम्भव है, उसने प्राण त्याग दिया होगा ॥ १३ ॥ हा रामचन्द्र ! हा लक्ष्मण ! हा अयोध्या ! इस प्रकार बहुविलाप करते हुए मिथिलेश कुमारी सीता ने प्राण त्याग दिया होगा ॥१४॥ अथवा यहीं कहीं रावण के महल में ही सीता को अवरुद्ध कर दिया गया है और वहाँ पिंजड़े में रहने वाली मैना के समान रामपरायणा वह देवी बार-बार राम का नाम जप रही है ॥ १५ ॥

जनकस्य सुता सीता रामपत्नी सुमध्यमा। कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥१६॥
विनष्टा वा प्रनष्टा वा मृता वा जनकात्मजा। रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥१७॥
निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने। कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥१८॥
अस्मिन्नेवं गते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम्। भवेदिति मतं भूयो हनूमान् प्रविचारयन् ॥१९॥
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः। गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥२०॥
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति। प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥२१॥
किं मां वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वा समागताः। किष्किन्धां समनुप्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ ॥२२॥
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परमप्रियम्। न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२३॥
परुषं दारुणं क्रूरं तीक्ष्णमिन्द्रियतापनम्। सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ॥२४॥
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम्। भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ॥२५॥
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति। भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥२६॥
पुत्रान् मृतान् समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः। कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ॥२७॥
कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः। रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२८॥
दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी। पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२९॥
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता। पञ्चत्वं च गते राज्ञि तारापि न भविष्यति ॥३०॥

सुमध्यमा विदेह जनक के कुल में उत्पन्न होकर तथा राम की धर्मपत्नी होकर कमलनयनी सीता रावण के वश में कैसे हो सकती है ॥ १६ ॥ वह जानकी कहीं अवरुद्ध कर ली गई, चली गई या मर गई। जानकी से स्नेह करने वाले रामचन्द्र से प्रमाण के अभाव में ये बातें नहीं कही जा सकतीं ॥ १७ ॥ राम से निवेदन करने में दोष दिखाई देता है और न कहने में भी दोष दिखाई दे रहा है। अब इस अवस्था में मैं क्या करूँ, यह बड़ा विषम परिस्थिति है ॥ १८ ॥ ऐसी विषम परिस्थिति वाले कार्य में या अनिश्चित अवस्था में क्या करना चाहिये हनुमान् इस पर विचार करने लगे ॥ १९ ॥ यदि सीता को विना देखे यहाँ से वनवासि-सम्राट् की किष्किन्धा पुरी में जाऊँगा तो मेरे पुरुषार्थ की विशेषता ही क्या होगी ॥ २० ॥ मेरा समुद्र का पार करना व्यर्थ होगा, लङ्का में प्रवेश करना और राक्षसों का दर्शन करना व्यर्थ ही होगा ॥ २१ ॥ यहाँ से जाने पर राजा सुग्रीव क्या कहेंगे ? मिलने पर वहाँ के वनवासी साथी भी क्या कहेंगे तथा किष्किन्धा में पहुँचने पर वे राम लक्ष्मण भी क्या कहेंगे ॥ २२ ॥ वहाँ जाकर रामचन्द्र से यह हृदय द्रावक कठोर शब्द—सीता को मैंने नहीं देखा यदि कहूँगा तो रामचन्द्र अवश्य ही प्राण त्याग देंगे ॥२३॥ इस हृदय द्रावक, कठोर, हृदय को संतप्त करनेवाले सीता के विषय में—सीता को नहीं देखा—दारुण वचन को सुनकर निश्चय ही रामचन्द्र जीवित नहीं रहेंगे ॥२४॥ इस प्रकार रामको विपत्ति में देखकर तथा मरने के लिये समुद्यत देखकर भ्रातृवत्सल बुद्धिमान् लक्ष्मण भी इस संसार में नहीं रह सकेंगे ॥२५॥ दोनों भाईयों के इस दुःखद समाचार को सुनकर भरत भी मर जायेंगे और भरत के मरते ही शत्रुघ्न भी प्राण त्याग देंगे ॥२६॥ अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी मर जायेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ कृतज्ञ, सत्यव्रती, वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव राम की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने जीवन को त्याग देंगे ॥ २८ ॥ दुःखिनी, मर्माहत, आनन्द से रहित, दीन, तपस्विनी रुमादेवी पतिशोक से पीड़ित होकर अपने प्राण त्याग देगी ॥ २९ ॥ अपने पति वाली के देहावसान के दुःख से पीड़ित तथा शोक से कर्शित देवी तारा सुग्रीव के मरने का समाचार सुनकर समाप्त हो जायेगी ॥३०॥ माता पिता तथा सुग्रीव की भी मृत्यु का समाचार सुनकर राजकुमार

मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च । कुमारोऽप्यङ्गदः कस्माद्धारयिष्यति जीवितम् ॥३१॥
भर्तृजेन तु दुःखेन ह्यभिभूता वनौकसः । शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ॥३२॥
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना । लालिताः कपिराजेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ॥३३॥
न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः । क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ॥३४॥
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः । शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेत्य विषमेषु च ॥३५॥
विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा । उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ॥३६॥
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति । इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ॥३७॥
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः । न च शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥३८॥
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ । आशया तौ धरिष्येते वानराश्च मनस्विनः ॥३९॥
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः । वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥४०॥
सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके । चितां कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥४१॥
उपविष्टस्य वा सम्यग्लिङ्गिनं साधयिष्यतः । शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ॥४२॥
इदं महर्षिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः । सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥४३॥
सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी । प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ॥४४॥
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः । नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम् ॥४५॥

अङ्गद भी अपने प्राण छोड़ देंगे ॥ ३१ ॥ अपने स्वामी के प्राणत्याग से दुःखित वनवासी प्रजा भी अपने हाथों से ही अपने सिर को पीट लेगी ॥ ३२ ॥ यशस्वी वनवासी राजा सुग्रीव के द्वारा सहानुभूति तथा सम्मान से पालित यह वनवासी प्रजा भी अपने प्राणों को त्याग देगी ॥ ३३ ॥ शेष जनपद के वनवासी वीर न वनों में, न पर्वतों पर, न गुप्त स्थानों में क्रीड़ा आदि का सुख अनुभव करेंगे ॥ ३४ ॥ अपने पुत्र, स्त्री तथा मन्त्रियों के सहित वे वनवासी लोग भी अपने राजा के मृत्यु समाचार से दुःखित होकर पर्वत की चोटी से सम-विषम भूमि पर गिर कर प्राण त्याग देंगे ॥ ३५ ॥ वे सभी विष खालेंगे, गले में फांसी लगा लेंगे, अग्नि में प्रवेश कर जायेंगे, उपवास कर लेंगे अथवा शस्त्र के द्वारा अपने प्राणों का त्याग कर देंगे ॥३६॥ मेरे यहाँ से जाने पर निश्चय ही वहाँ घोर आक्रन्दन होगा। इक्ष्वाकु कुल और वनवासी कुल का नाश हो जायेगा ॥३७॥ इस लिये मैं यहाँ से किष्किन्धा नगरी को नहीं जाऊँगा। सीता को विना देखे हुए मैं सुग्रीव का भी दर्शन नहीं करूँगा ॥ ३८ ॥ मेरे यहाँ से न जाने पर हो सकता है सीता के मिलने की आशा से राम लक्ष्मण जीवित रह जायें तथा मनस्वी वनवासी भी जीवित रहें ॥ ३९ ॥ जानकी को न देखते हुए मैं हाथ के द्वारा तथा पक्षियों के मुख से गिरे हुए फल फूल आदि को खाकर नियमपूर्वक वृक्षों के नीचे रह कर यहीं वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर दूँगा ॥ ४० ॥ बहुत मूल फल तथा जल वाले समुद्र के तट के पास चिता बना कर प्रज्वलित अग्नि में मैं प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४१ ॥ अथवा प्राण त्यागने के लिये प्रायोपवेश (भूख-प्यास) में बैठे हुए मेरे शरीर को कौवे तथा हिंसक जन्तु खा जायेंगे ॥ ४२ ॥ यह भी प्राण त्याग के लिये ऋषियों का कथित मार्ग है—जल में शरीर विसर्जित करना। यदि जानकी नहीं मिली तो मैं जल में प्रवेश कर अपना प्राण त्याग दूँगा ॥ ४३ ॥ जानकी का दर्शन न होने से उत्तरोत्तर बढ़ने वाली, स्थिर मूल वाली मेरी कीर्त्ति माला अवश्य ही नष्ट हो जायेगी ॥ ४४ ॥ वृक्ष मूल निवासी निश्चय ही मैं तपस्वी हो जाऊँगा, किन्तु विना जानकी के देखे मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा ॥ ४५ ॥ यदि सीता को बिना खोजे मैं यहाँ

यदीतः प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् । अङ्गदः सह तैः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ॥४६॥
विनाशे बहवो दोषा जीवन् भद्राणि पश्यति । तस्मात्प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ॥४७॥
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन् मुहुः । नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ॥४८॥
ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जरः । रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ॥४९॥
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ॥
अथवैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् । रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ॥५०॥
इति चिन्तां समापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् । ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ॥५१॥
यावत्सीतां हि पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् । तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥५२॥
संपातिवचनाचापि रामं यद्यानयाम्यहम् । अपश्यन् राघवो भार्यां निर्दहेत्सर्ववानरान् ॥५३॥
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः । न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ॥५४॥
अशोकवनिका चेयं दृश्यते या महाद्रुमा । इमामभिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया ॥५५॥
वसून् रुद्रांस्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च । नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ॥५६॥
जित्वा तु राक्षसान् सर्वानिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम् । संप्रदास्यामि रामाय यथा सिद्धिं तपस्विने ॥५७॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्तावग्रथितेन्द्रियः । उदतिष्ठन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ॥५८॥

से लौट जाऊँ, तो सम्पूर्ण वनवासियों के सहित अङ्गद का जीवन संकट में पड़ जाएगा ॥ ४६ ॥ अनेक दोषों वाली मृत्यु तो सहज है। यदि मनुष्य किसी प्रकार जीता रहे, तो कभी न कभी कल्याण का अधिकारी हो जाता है। इस लिये मैं मरने का विचार छोड़ कर जीवित रहने का ही प्रयत्न करूँगा। जीते रहने पर कभी न कभी सीता का दर्शन हो ही जायेगा ॥ ४७ ॥ इस प्रकार नाना प्रकार के दुःखदायी विचार उनके मन में उठ रहे थे, किन्तु वे वनवासी वीर हनुमान् इस शोक से पार जाने के लिये किसी परिणाम पर न पहुँच सके ॥ ४८ ॥ पश्चात् उत्साह तथा पराक्रम का सहारा लेकर धैर्यधारिधौरेय हनुमान् ने यह निश्चय किया कि महाबली रावण को मैं मारूँगा तथा सीता के हरण का प्रतिकार करूँगा ॥ ४९ ॥ अथवा समुद्र के ऊपर ही ऊपर इस रावण को राम के पास इस प्रकार ले जाऊँगा जैसे कोई पशु अपने स्वामी पशुपति के पास ले जाया जाता है ॥ ५० ॥ सीता को न प्राप्त कर हनुमान् अत्यन्त चिन्तित हो गये। सीता के न मिलने की चिन्ता से चिन्तित वनवासी हनुमान् विचार मग्न हो गये ॥ ५१ ॥ राम की धर्मपत्नी यशस्विनी सीता को जब तक नहीं देख लेता, तब तक इस लङ्कापुरी को बार-बार खोजूँगा ॥ ५२ ॥ यदि सम्पाति के कथनानुसार रामचन्द्र को ही यहाँ लङ्का में ले आऊँ, तो रामचन्द्र अपनी भार्या सीता को देखकर अवश्य ही सम्पूर्ण वनवासियों को दग्ध कर देंगे ॥ ५३ ॥ इस लिये इन्द्रियों को वश में करके, नियत आहार करते हुए मैं यहीं निवास करूँगा जिससे कि एक मेरे कारण सम्पूर्ण वनवासियों का नाश न हो ॥ ५४ ॥ बड़-बड़ विशाल वृक्षों वाली यह विशाल अशोक वाटिका दृष्टिगोचर हो रही है। मैं अब इसमें जाऊँगा क्योंकि इसे मैंने अब तक नहीं खोजा था ॥ ५५ ॥ राक्षसों के शोक को बढ़ाने वाला मैं आठ वसु ग्यारह रुद्र १२ आदित्य, अश्विनीकुमार, वायु आदि सम्पूर्ण भूतों के पति परमात्मा को प्रणाम कर जाऊँगा ॥ ५६ ॥ सारे राक्षसों को जीत कर इक्ष्वाकुकुल का आनन्द बढ़ाने वाली सीता को राम को इस प्रकार समर्पित करूँगा जिस प्रकार सिद्धि तपस्वियों को समर्पित की जाती है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार चिन्ता से शिथिल इन्द्रियों वाले पवनसुत हनुमान् कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् उठ खड़े हुए ॥ ५८ ॥ लक्ष्मण के संहित मर्यादा-

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥५९॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः । दिशः सर्वाः समालोक्य ह्यशोकवनिकां प्रति ॥६०॥
स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् । उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥६१॥
ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला । अशोकवनिकाचिन्त्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥६२॥
रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् । भगवानपि सर्वात्मा नातिक्षोभं प्रवाति वै ॥६३॥
संक्षिप्तोऽयं मयात्मा च रामार्थे रावणस्य च । सिद्धिं मे संविधास्यन्ति देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥६४॥
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् देवाश्चैव दिशन्तु मे । सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ॥६५॥
वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च । अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः शर्व एव च ॥६६॥
सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः । दास्यन्ति मम ये चान्ये ह्यदृष्टाः पथि गोचराः ॥६७॥

तदुन्नसं पाण्डरदन्तमव्रणं शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदा न्वहं प्रसन्नताराधिपतुल्यदर्शनम् ॥६८॥
क्षुद्रेण पापेन नृशंसकर्मणा सुदारुणालंकृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ॥६९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमन्निर्वेदो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

पुरुषोत्तम राम को मेरा नमस्कार हो, जनक नन्दिनी जानकी को मेरा नमस्कार हो, रुद्र, यम, वायु, चन्द्र, सूर्य तथा सम्पूर्ण देवगण—इन सभी को मेरा नमस्कार हो ॥ ५९ ॥ हनुमान् उन सबको नमस्कार करके, सम्राट् सुग्रीव को नमस्कार करके तथा सम्पूर्ण दिशाओं को देखकर अशोक वाटिका के प्रति ॥ ६० ॥ ध्यान पूर्वक पहुँच कर उस शुभ अशोक वाटिका में पवनसुत हनुमान् भविष्य के कार्य की चिन्ता करने लगे ॥ ६१ ॥ निश्चय ही यह अशोक वाटिका अनेक रक्षक राक्षसों से युक्त होगी। यह सुन्दर अशोक वाटिका जल आदि से सिञ्चित तथा परिमार्जित होगी ॥ ६२ ॥ यहाँ के रक्षक निश्चय ही वृक्षों की रक्षा कर रहे हैं। विश्व के प्राणस्वरूप वायु देव भी यहाँ अतिवेग से नहीं बह सकते ॥ ६३ ॥ रामचन्द्र के कार्य के लिये मैंने अपने आपको रावण की वाटिका में अर्पित कर दिया। ऋषि-गणों के साथ सभी देव मण्डल मेरी सफलता में सहायक हों ॥ ६४ ॥ ब्रह्मा, भगवान् स्वयंभू, देवगण, अग्नि, वायु तथा वज्रधारी इन्द्र ये सभी मेरे कार्य में सहायक हों ॥ ६५ ॥ पाशधारी वरुण, चन्द्र, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण मेरी सफलता में सहायक हों ॥ ६६ ॥ सम्पूर्ण देव तथा प्राणिवर्ग और इनके स्वामी देवाधिदेव जगत्पति परमात्मा तथा इस कार्य पथ में जो दृष्ट अदृष्ट सहायक हैं वे सभी मेरे इस पवित्र कार्य में सहायक हों ॥ ६७ ॥ उन्नत नासिका वाले, श्वेत दन्तयुक्त, व्रण आदि से रहित, मन्द हास से युक्त, कमल के समान नेत्र वाले, पूर्ण तथा स्वच्छ चन्द्रमा के समान वर्ण वाले आर्या जानकी के मुखमण्डल को मैं कब देखूँगा ॥ ६८ ॥ क्षुद्र-बुद्धि, अधम, क्रूर-कर्मा, भयानक तथा अलंकृत वेषधारी रावण के द्वारा जो बलपूर्वक हरण करके लाई गई है, उस देवी का दर्शन मैं कब करूँगा ॥ ६९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का शोक' विषयक तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

अशोकवनिकाविचयः

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् । अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥
स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः । पुष्पिताग्रान् वसन्तादौ ददर्श विविधान् द्रुमान् ॥ २ ॥
सालानशोकान् भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान् । उद्दालकान्नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि ॥ ३ ॥
अथाम्रवणसंछन्नां लताशतसमावृताम् । ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥
स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् । राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥ ५ ॥
विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् । उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान् कपिः ॥ ६ ॥
वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः । कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ७ ॥
प्रहृष्टमनुजे काले मृगपक्षिसमाकुले । मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥
मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् । सुखप्रसुप्तान् विहगान् बोधयामास वानरः ॥ ९ ॥
उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैः सालाः समाहताः । अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥१०॥
पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनुमान् मारुतात्मजः । अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥११॥

चौदहवाँ सर्ग

अशोक वाटिका में खोज

थोड़ी देर तक विचार करके, मन ही मन सीता का ध्यान करके महातेजस्वी हनुमान् उस भवन से चलकर अशोक वाटिका की चहारदीवारी पर पहुँचे ॥ १ ॥ उस चहारदीवारी पर बैठे हुए हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हुए । वसन्त ऋतु में खिलने वाले फूल फल से युक्त उस वाटिका को देखा ॥ २ ॥ साल, अशोक, रमणीय पुष्पित चम्पा, उद्दालक, नाग तथा लाल वर्ण वाले आम के वृक्षों को देखा ॥ ३ ॥ सैकड़ों लताओं से परिपूर्ण आम्र के वन को वहाँ देखा । प्रत्यञ्चा मुक्त बाण के समान अत्यन्त वेग से हनुमान् उस अशोक वाटिका में इधर-उधर घूमने लगे ॥ ४ ॥ सोने तथा चाँदी के समान चमकने वाले वृक्षों से परिपूर्ण तथा पक्षियों के कलरव से निनादित उस विचित्र अशोक वाटिका में प्रवेश कर ॥ ५ ॥ नाना प्रकार के पक्षी और मृगझुण्डों से युक्त, चित्रविचित्र वन विभाग वाले सूर्य के समान चमकती हुई उस अशोक वाटिका को बली हनुमान् ने देखा ॥ ६ ॥ अनेक प्रकार के फल-फूल वाले नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त तथा मतवाले कोकिल और भौंरों से सेवित ॥ ७ ॥ जिसमें जाने वाला प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न हो जाता था, मदमत्त मृग तथा पक्षिगण जहाँ तहाँ घूम रहे थे, मतवाले मोर जहाँ बोल रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे तथा अन्य भी अनेक प्रकार के पक्षिगण जहाँ विद्यमान थे ॥ ८ ॥ अनिन्दिता राजकुमारी सीता का अन्वेषण करते हुए वनवासी वीर हनुमान् ने सुख से सोये हुए पक्षिसमूह को जगा दिया ॥ ९ ॥ उस कोलाहल से उड़ते हुए पक्षियों के पंखों की हवा लगने से पुष्पित वृक्षों से फूल गिरने लगे ॥ १० ॥ उन फूलों के गिरने से पुष्पयुक्त हनुमान् उस अशोक वाटिका के बीच में पुष्पमय पर्वत की चोटी के समान प्रतीत होने लगे ॥ ११ ॥ वृक्षों के बीच

दिशः सर्वाः प्रधावन्तं वृक्षषण्डगतं कपिम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥१२॥
वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः । रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥१३॥
तरस्विना ते तरवस्तरसाभिप्रकम्पिताः । कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥१४॥
निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफला द्रुमाः । निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥१५॥
हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः । पुष्पपर्णफलान्याशु मुमुचुः पुष्पशालिनः ॥१६॥
विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः । बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेनेव निर्धुताः ॥१७॥
निर्धूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका । निष्पीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता ॥१८॥
तथा लाङ्गलहस्तैश्च चरणाभ्यां च मर्दिता । बभूवाशोकवनिका प्रभग्नवरपादपा ॥१९॥
महालतानां दामानि व्यधमत्तरसा कपिः । यथा प्रावृषि विन्ध्यस्य मेघजालानि मारुतः ॥२०॥
स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः । तथा काञ्चनभूमीश्च ददर्श विचरन् कपिः ॥२१॥
वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा । महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥२२॥
मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः । काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥२३॥
फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपकूजिताः । नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥२४॥
दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः । अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥२५॥

में इधर-उधर घूमते हुए हनुमान् को देखकर सब प्राणियों ने 'यह शरीरधारी साक्षात् वसन्त है' ऐसा समझा ॥ १२ ॥ नाना प्रकार के वृक्षों के गिरे हुए फूलों से आच्छादित वहाँ की भूमि अलंकृत स्त्री के समान सुशोभित हो रही थी ॥ १३ ॥ वेगवान् हनुमान् ने अपने बाहुबल से अनेक वृक्षों को हिलाया जिससे चित्र विचित्र फूलों की सृष्टि वहाँ हो गई ॥ १४ ॥ कम्पाये हुए वे वृक्ष जो पत्र, फूल, फल से रहित हो गये थे, वस्त्र आभूषण से रहित जूए में हारे हुए जुआरी के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ १५ ॥ वेगवान् हनुमान् के द्वारा कम्पाये हुए पत्र, फूल, फल वाले वृक्षों ने अपने पत्र, फूल, फल को त्याग दिया ॥ १६ ॥ पक्षिसमूहों से हीन, पत्र-पुष्प-फल से रहित, जिनमें केवल डालियाँ तथा टहनियाँ ही शेष रह गई हैं वायु से कम्पित वे वृक्ष पहचान में ही नहीं आते थे ॥ १७ ॥ जिस युवति के केश बिखर गये हैं, जिसके अङ्गराग छूट गये हैं तथा उत्तम दन्त वाले ओष्ठों का पान कर लिया गया है, नख तथा दन्त से जो क्षत विक्षत हो रही है, ऐसी नायिका के समान ॥ १८ ॥ हनुमान् के हाथ पैरों से मर्दित वृक्षों वाली वह अशोक वाटिका प्रतीत हो रही थी ॥ १९ ॥ हनुमान् ने बड़ी-बड़ी लताओं के गुच्छों को अपने वेग से इस प्रकार तोड़ डाला जैसे वर्षाकाल की मेघमाला को वेगवान् वायु छिन्न-भिन्न कर देता है ॥ २० ॥ उस वाटिका में घूमते हुए हनुमान् ने मणि, काञ्चन तथा चाँदी आदि धातुओं से मण्डित भूमि को देखा ॥ २१ ॥ उस वाटिका में उत्तम जल से भरे हुए अनेक सरोवर थे जिनके चारों ओर घाट तथा सीढ़ियाँ उत्तम मणियों से निर्मित थीं ॥ २२ ॥ मोती, मूँगा, बालू से जिनका तट परिपूर्ण हो रहा था, जिनका भीतरी भाग स्फटिक मणियों से निर्मित था तथा जिनके तट सोने के समान पीतवर्ण के वृक्षों से सुशोभित हो रहे थे ॥ २३ ॥ जिनमें कमल खिल रहे थे, चकवा-चकवी, जल कुक्कुट, हंस, सारस आदि जल पक्षियों से जो निनादित हो रहे थे ॥ २४ ॥ जिस वाटिका में अनेक बड़े बड़े सरोवर थे जिनके तट अनेक वृक्षों से मण्डित थे, जो अमृत के समान जल से भरे हुए थे ॥ २५ ॥ सैकड़ों लताओं से तथा अनेक प्रकार के फूलों से जिनके तट सुभूषित हो रहे थे और जलीय लताओं के गुल्मों से जिनका जल ढँपा हुआ था। उस वाटिका में करवीर वृक्षों की क्यारियाँ बनी

लताशतैरवतताः संतानकुसुमावृताः । नानागुल्मावृतघनाः करवीरकृतान्तराः ॥२६॥
ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् । विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥२७॥
शिलागृहैरवततं नानावृक्षैः समावृतम् । ददर्श हरिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥२८॥
ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः । अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥२९॥
जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् । वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥३०॥
पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः । प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥३१॥
तस्यादूराच्च पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः । ददर्श हरिशार्दूलो हनुमान् मारुतात्मजः ॥३२॥
कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा । मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥३३॥
विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् । प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥३४॥
कृत्रिमैः काननैश्चापि सर्वतः समलंकृताम् । ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥३५॥
सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः । लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥३६॥
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श हनुमान् कपिः । वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥३७॥
सोऽपश्यद्भूमिभागांश्च गर्तप्रस्रवणानि च । सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिखिसंनिभान् ॥३८॥
तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव दिवाकरः । अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति वानरः ॥३९॥
तां काञ्चनैस्तरुगणैर्मारुतेन च वीजिताम् । किङ्किणीशतनिर्घोषां दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥४०॥

हुई थीं। २६ ॥ उस वाटिका में समुन्नत मेघ के समान अनेक चित्रविचित्र चोटियों से युक्त ॥ २७ ॥ अनेक प्रकार की चट्टानों से परिपूर्ण नाना प्रकार के वृक्षों से ढँपे हुए, संसार में सबसे रमणीय एक पर्वत को वीर हनुमान् ने देखा ॥ २८ ॥ उस पर्वत से गिरती हुई एक नदी को हनुमान् ने इस प्रकार देखा जैसे अपने प्रिय के अङ्क से गिरती हुई प्रिया ॥ २९ ॥ जल के प्रपात से समीप के वृक्षों की शाखाएँ इस प्रकार झुकी हुई हैं मानों वे नदी से लौट जाने के लिये इस प्रकार प्रार्थना कर रही हैं जैसे क्रुद्ध स्त्री को उसके शुभ-चिन्तक बान्धवगण लौटाने का प्रयत्न करते हैं ॥ ३० ॥ पुनः पर्वत की ओर लौटती जल धारा को हनुमान् ने इस प्रकार देखा जैसे पति पर प्रसन्न होकर कोई कान्ता पुनः लौट आई हो ॥ ३१ ॥ उस पर्वत के समीप ही नाना प्रकार के पक्षिसमूह से युक्त अनेक तालाबों को वनवासिकेसरी हनुमान् ने देखा ॥ ३२ ॥ शीतलजल से भरी हुई बनावटी नदियों (नहरों) को हनुमान् ने देखा जिनमें जहाँ तहाँ मणिमय सीढ़ियाँ बनी हुई थीं तथा मुक्तामय बालू से जिनका पुलिन सुशोभित हो रहा था ॥ ३३ ॥ वह वाटिका विविध प्रकार के पशुओं से युक्त, चित्र विचित्र छोटे-छोटे वाटिका भागों से युक्त, विश्वकर्मा (उत्तम वास्तुविद्या विशारद) से निर्मित विशाल भवनों से परिपूर्ण थी ॥ ३४ ॥ कृत्रिम वृक्षसमूहों से अलंकृत उस वाटिका को हनुमान् ने देखा जिसमें सब ऋतुओं में फलने-फूलने वाले वृक्ष थे ॥ ३५ ॥ छाते के समान जिनकी शाखाएँ दिखाई दे रही थीं, जिनके अगल-बगल सोने की वेदियाँ बनी हुई थीं तथा आलवाल बने हुए थे। पत्तों वाली अनेक लताओं के जाल से वेष्टित ॥ ३६ ॥ सोने के समान चमकने वाले एक शिंशप (शीशम) वृक्ष को हनुमान् ने देखा जो स्वर्णमय वेदिकाओं से अलंकृत हो रहा था ॥ ३७ ॥ वहाँ के भूमिभाग, पर्वत, झरने अग्नि तथा सुवर्ण के समान देदीप्यमान अन्य वृक्षों को हनुमान् ने देखा ॥ ३८ ॥ चमकते हुए वृक्षों की प्रभा से विशाल-काय वीर हनुमान् अपने आप को स्वर्णमय ही समझने लगे ॥ ३९ ॥ उस सोने के समान चमकने वाले शिंशपा के वृक्ष को जो वायु के झोंके से प्रकम्पित हो रहा था, जिसमें सैकड़ों घण्टियों के शब्द हो रहे थे, देख कर हनुमान् अत्यन्त चकित हो गये ॥ ४० ॥ जिसके सुन्दर फूल तथा कोमल पत्ते थे, जिसकी सम्पूर्ण

स पुष्पिताग्रां रुचिरां तरुणाङ्कुरपल्लवाम् । तामारुह्य महाबाहुः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥४१॥
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् । इतश्चेतश्च दुःखार्तां संपतन्तीं यदृच्छया ॥४२॥
अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः । चम्पकैश्चन्दनैश्चापि वकुलैश्च विभूषिता ॥४३॥
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता । इमां सा राममहिषी ध्रुवमेष्यति जानकी ॥४४॥
सा रामा राममहिषी राघवस्य प्रिया सती । वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥४५॥
अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा । वनमेष्यति सार्येह रामचिन्तानुकर्शिता ॥४६॥
रामशोकाभिसंतप्ता सा देवी वामलोचना । वनवासे रता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥४७॥
वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा । रामस्य दयिता भार्या जनकस्य सुता सती ॥४८॥
सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी । नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥४९॥
तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा । शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥५०॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना । आगमिष्यति सावश्यमिमां शिवजलां नदीम् ॥५१॥

एवं तु मत्वा हनुमान् महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पत्रघने निलीनः ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अशोकवनिकाविचयो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

शाखाएँ पत्तों से आच्छादित हो रही थीं, ऐसे उस शिंशपा वृक्ष पर महावेगवान् हनुमान् चढ़ गये ॥ ४१ ॥ यहाँ पर राम के दर्शन के लिये उत्सुक मिथिलेश कुमारी जानकी को देखूंगा । यहीं पर दुःख से संतप्त सहसा जानकी को देखूंगा ॥ ४२ ॥ दुरात्मा रावण की यह सुसज्जित तथा रमणीय अशोक वाटिका चन्दन, चम्पा, मौलसरी वृक्षों से सुशोभित हो रही है ॥ ४३ ॥ पक्षिसमूह से परिपूर्ण यह जो सरोवर है, इस पर महारानी सीता अवश्य ही आती होगी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्र की प्राणप्रिया जानकी वन भ्रमण में बहुत कुशल है, इस लिये वह जानकी यहाँ अवश्य आएगी ॥ ४५ ॥ रामचन्द्र की चिन्ता से कृश शरीर वाली, मृगनयनी सीता इस वन से अति परिचित होने के कारण वह यहाँ अवश्य आयेगी ॥ ४६ ॥ राम के शोक से अतिसंतप्त, वनवास से प्रेम करने वाली तथा वन में घूमने वाली सीता यहाँ अवश्य आयेगी ॥ ४७ ॥ जनक की राजकुमारी तथा रामचन्द्र की प्राणप्रिया भार्या पहले निश्चय ही वनजन्तुओं से प्रेम करती रही होगी ॥ ४८ ॥ सुन्दरी श्यामा (नवोढा) जानकी सायंकालिक सन्ध्याकृत्य करने के लिये इस शुभ जल वाली नदी पर अवश्य आयेगी ॥ ४९ ॥ शुभलक्षणों वाली रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता के लिये यह अशोक वाटिका ही अनुकूल है ॥ ५० ॥ चन्द्र के समान मुख मण्डल वाली वह देवी सीता यदि जीवित होगी, तो इस शीतल जल वाली नदी पर अवश्य आयेगी ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पत्र-पुष्पों से आच्छादित उस घने शिंशपा वृक्ष में छिपे हुए हनुमान् जी सीता के आने की प्रतीक्षा करते हुए अपनी दृष्टि को चारों ओर दौड़ा कर देखने लगे ॥ ५२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'अशोक वाटिका में खोज' विषयक चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१४॥

पञ्चदशः सर्गः

सीतोपलम्भः

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् । अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥ १ ॥
संतानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् । दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम् ॥ २ ॥
तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् । हर्म्यप्रासादसंबाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥ ३ ॥
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् । बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥ ४ ॥
सर्वर्तुकुसुमै रम्यां फलवद्भिश्च पादपैः । पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥ ५ ॥
प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत । निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥ ६ ॥
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः । आमूलपुष्पनिचितैरशोकैः शोकनाशनैः ॥ ७ ॥
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् । कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः । पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ॥ ९ ॥
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः । शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः ॥१०॥
नीलाञ्जननिभाः केचित्तत्राशोकाः सहस्रशः । नन्दनं विविधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ॥११॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

सीता की उपलब्धि

इस प्रकार सीता के दर्शन की इच्छा रखते हुए तथा उसकी खोज करते हुए हनुमान् उस वृक्ष पर बैठे हुए सब ओर से आस-पास की भूमि को देखने लगे ॥ १ ॥ सघन लता प्रतानों से परिपूर्ण, अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, दिव्य गन्ध रस से परिपूर्ण, सब प्रकार से अलंकृत ॥ २ ॥ अनेक उत्तम पशु पक्षियों से युक्त, नन्दनवन के समान बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से परिपूर्ण, कोकिल के कलरव से प्रतिध्वनित ॥ ३ ॥ काञ्चन के समान पीतकमलों से युक्त, वापियों से युक्त, अनेक प्रकार के उत्तम कालीनों तथा अनेक तह-खानों से युक्त ॥ ४ ॥ सब ऋतुओं में फलने फूलने वाले रमणीय वृक्षों से युक्त, सूर्योदय की प्रभा के समान फूले हुए अशोक की शोभा से पूर्ण ॥ ५ ॥ पक्षियों के द्वारा बार-बार पत्र और शाखाओं से हीन उस वाटिका की भूमि को हनुमान् ने देखा ॥६॥ सैकड़ों प्रकार के गिरे हुए चित्र विचित्र पुष्पों से सुशोभित, शोक का नाश करने वाले, आमूल चूल पुष्पित अशोक वृक्षों से परिपूर्ण ॥ ७ ॥ फूले हुए पलाश तथा कर्णिकार वृक्षों से युक्त फूलों के भार से जिनकी शाखाएँ पृथ्वी का स्पर्श कर रही थीं ॥ ८ ॥ पुन्नाग, सप्तपर्ण, चम्पा, उद्दालक के पुष्पित वृक्षों की शोभा से सब ओर से सुशोभित ॥ ९ ॥ इस प्रकार दृढ़ मूल वाले अनेक पुष्पित वृक्ष जहाँ सुशोभित हो रहे थे । कोई सोने की कान्ति के समान तथा कोई अग्नि शिखा के समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ १० ॥ नीलाञ्जन के सदृश सहस्रों अशोक वृक्षों से परिपूर्ण वह भूमि देवों के उद्यान नन्दनवन के समान तथा धनाध्यक्ष कुबेर के चैत्रवन के समान सुशोभित हो रही थी ॥ ११ ॥ अनेक प्रकार के पुष्पित वृक्ष तथा लताओं से परिपूर्ण, अचिन्त्य तथा दिव्य शोभा से युक्त, नक्षत्र मण्डित द्वितीय आकाश के समान

अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यं श्रियावृतम् । द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम् ॥१२॥
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा । सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ॥१३॥
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः । अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोरमम् ॥१४॥
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् । अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुंगवः ॥१५॥
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमुच्छ्रितम् । मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डरम् ॥१६॥
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् । मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥१७॥
विमलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् । ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥१८॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः । ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥१९॥
मन्दं प्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् । पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥२०॥
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा । सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥२१॥
पीडितां दुःखसंतप्तां परिम्लानां तपस्विनीम् । ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥२२॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च । शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥२३॥
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् । स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणाभिवृतामिव ॥२४॥
नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया । नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥२५॥

वह वाटिका सुशोभित हो रही थी ॥ १२ ॥ पुष्परूपी रत्नों से परिपूर्ण वह उद्यान पांचवें सागर के समान प्रतीत हो रहा था । सब ऋतुओं में खिलने वाले सुगन्धित पुष्प वाले वृक्षों से युक्त ॥ १३ ॥ नाना प्रकार के पशु पक्षियों के शब्दों से प्रतिध्वनित, अनेक प्रकार के मनोहारी पुण्य गन्ध से युक्त ॥ १४ ॥ द्वितीय पर्वत-राज गन्धमादन के समान वह भूभाग प्रतीत हो रहा था । उस अशोक वाटिका से वनवासी श्रेष्ठ हनुमान् ने ॥ १५ ॥ कैलास पर्वत के समान धवल, हजारों खम्भों से युक्त, अत्यन्त समुन्नत, पास ही में स्थित एक चतुष्पथ वाले भवन को देखा ॥ १६ ॥ वह भवन मूँगे की सीढ़ियों से तथा स्वर्ण की वेदिकाओं से सुशोभित हो रहा था । इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण जाज्वल्यमान प्रभा से आँखों को चकाचौंध कर रहा था ॥१७॥ वह भवन अत्यन्त निर्मल था, अत्यन्त ऊँचा होने से आकाश को स्पर्श कर रहा था । उसी समय मलिन वस्त्र से युक्त घोर राक्षसियों से घिरी हुई ॥ १८ ॥ उपवास करने से अत्यन्त दुर्बल, बार-बार सांस लेती हुई अत्यन्त दुःखी, शुक्ल पक्ष के आरम्भ में द्वितीया की क्षीण चन्द्ररेखा के समान निर्मल स्त्री को हनुमान् ने देखा । १९॥ निश्चित रूप से पहचान में न आने वाले, कमनीय कान्ति से परिपूर्ण तथा धूम जाल से आवृत अग्नि की शिखा के समान ॥ २० ॥ किसी प्रकार एक उत्तम पीत वस्त्र को धारण किये हुए, अलंकारों से हीन वह नारी पद्महीन, कीचड़वाली बावड़ी के समान प्रतीत हो रही थी ॥ २१ ॥ अत्यन्त पीड़ित, दुःख से सन्तप्त दुर्बल वह तपस्विनी मङ्गल ग्रह से पीड़ित रोहिणी ग्रह के समान प्रतीत हो रही थी ॥ २२ ॥ आँसुओं से पूर्ण मुख वाली, भोजन आदि के न करने से अत्यन्त दुर्बल, अतिदीन, निरन्तर दुःख से परिपूर्ण ॥ २३ ॥ अपने प्रियजनों को न देखती हुई तथा जिसके चारों ओर राक्षसियाँ ही दिखाई दे रही थीं, ऐसी वह अपने दल से पृथक् कुत्तों से घिरी हुई मृगी के समान प्रतीत हो रही थी ॥ २४ ॥ काले सर्प के समान नीचे लटकने वाली उसकी एक वेणी वर्षा के समाप्त हो जाने पर नीली वन-पंक्ति से युक्त पृथ्वी के समान प्रतीत हो रही थी ॥ २५ ॥ विशाल नेत्रों वाली, निरन्तर सुख के योग्य तथा दुःख से संतप्त, दुःख का अनुभव न करने वाली

सुखार्हां दुःखसंतप्तां व्यसनानामकोविदाम् । तां समीक्ष्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम्॥२६॥
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः । ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥२७॥
यथारूपा हि दृष्टा वै तथारूपेयमङ्गना । पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥२८॥
कुर्वतीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः । तां नीलकेशीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम्॥२९॥
सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा । इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥३०॥
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् । निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥३१॥
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् । संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥३२॥
तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव । विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥३३॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव । अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥३४॥
रामोपरोधव्यथितां रक्षोहरणकर्शिताम् । अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां समन्ततः ॥३५॥
बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा । वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥३६॥
मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् । प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥३७॥
तस्य संदिदिहे बुद्धिर्मुहुः सीतां निरीक्ष्य तु । आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥३८॥
दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम् । संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥३९॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् । तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ॥४०॥

मलिन तथा दुर्बल उस देवी को देखकर ॥ २६ ॥ अनेक कारणों से उत्पन्न होनेवाले विचारों के द्वारा स्वेच्छा से रूप-धारण करने वाले राक्षसराज रावण से हरी हुई यह सीता है, ऐसा हनुमान् ने अनुमान किया ॥२७॥ जैसी रूपरेखा एक प्रोषित भर्तृका (पति से वियुक्त) की दीखनी चाहिये, उसी प्रकार की यह स्त्री है । पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली, सुन्दर भौंएँ तथा समुन्नत वक्षःस्थल वाली॥ २८ ॥ अपनी कान्तिमय प्रभा से सारी दिशाओं को प्रकाशित करने वाली, काले केशपाश वाली लाल ओष्ठों वाली कमनीय कटि वाली उस देवी को ॥ २९ ॥ कमल के समान नेत्रवाली, कामदेव की स्त्री रति के समान, सम्पूर्ण जगत् की श्रद्धास्पदा, पूर्ण-चन्द्रमा की प्रभा के सदृश ॥ ३० ॥ व्रत धारण करने वाली तपस्विनी के समान, भूमितल पर बैठी हुई, नागिन के सदृश निरन्तर श्वास छोड़ने वाली ॥ ३१ ॥ महान् शोक के कारण निरन्तर धूम जाल से आवृत अग्नि की शिखा के समान शोभा रहित ॥ ३२ ॥ शङ्कायुक्त स्मृति के समान, गिरी हुई निधि के समान, प्रतिहत श्रद्धा के समान, नष्ट हुई आशा के समान ॥ ३३ ॥ अन्तराय युक्त सिद्धि के समान, कलुषित प्रज्ञा के समान, नाना प्रकार के अपवाद से नष्ट हुई कीर्ति के समान ॥ ३४ ॥ राम की छत्र छाया से रहित दुःखिनी राक्षसगणों से पीडित, असहाय मृगी के समान इधर-उधर देखती हुई ॥ ३५ ॥ आँखों के आँसुओं से भीगी हुई, काली बरौनियों वाले म्लान मुख से बार-बार साँस लेती हुई ॥ ३६ ॥ मल पङ्क से परिपूर्ण, दुःखी, अलंकारों से अलंकृत होने की क्षमता होने पर भी अलंकार हीन, काली मेघमाला से आच्छादित चन्द्रमा की प्रभा के समान ॥ ३७ ॥ अभ्यास के अभाव में विस्मृत विद्या के समान उस सीता को देखकर हनुमान् की बुद्धि सन्देह युक्त हो गई ॥ ३८ ॥ व्याकरण आदि संस्कार से हीन जैसे वाणी शब्दार्थ का बोध कठिनता से कराती है, उसी प्रकार अलंकार आदि से हीन सीता को हनुमान् ने बड़ी कठिनाई से पहचाना ॥ ३९ ॥ विशालाक्षी, अनिन्दित, राजकुमारी उस सीता को देखकर उपर्युक्त कारणों से 'यह सीता है' ऐसा समझा ॥ ४० ॥ सीता के अंगों के जिन आभूषणों का ऋश्यमूक पर्वत पर राम ने वर्णन किया था, शरीर

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् । तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥४१॥
सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ । मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥४२॥
श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च । तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत्॥४३॥
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये । यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः॥४४॥
पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् । उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥४५॥
भूषणानि विचित्राणि दृष्टानि धरणीतले । अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥४६॥
इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम् । तथापि नूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥४७॥
इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया । प्रनष्टापि सती यास्य मनसो न प्रणश्यति ॥४८॥
इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते । कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥४९॥
स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः । पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥५०॥
अस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् । रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥५१॥
अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् । तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥५२॥

को अलंकृत करने वाले उन आभूषणों को हनुमान् ने उस समय वहाँ देखा ॥ ४१ ॥ श्वानदन्त के समान कर्णाभरण अपने स्थान पर शोभित हो रहे थे मणि मूंगों से जटित कङ्कण से हाथ शोभित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ चिरकाल से धारण करने से वे आभूषण कुछ मलिन हो गये थे। उन सभी आभूषणों को देखकर हनुमान् ने मन में यह विचार किया कि ये वे ही आभूषण हैं जिनका वर्णन रामचन्द्र ने मुझसे किया था ॥ ४३ ॥ ऋश्यमूक पर्वत पर सीता के जो आभूषण गिरे हुए मिले, उनको मैं सीता के शरीर पर नहीं देख रहा हूँ और जो आभूषण उन गिराये हुए आभूषणों में नहीं हैं, उनको मैं यहाँ नहीं देख रहा हूँ । इसलिये अब इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ स्वर्ण के समान पीतवर्ण वाले पीताम्बर शुभ वस्त्र को जो वहाँ गिराया था तथा पर्वत पर गिरे हुए जिस वस्त्र को वनवासियों ने उस समय देखा था ॥ ४५ ॥ जो झङ्कार शब्द करने वाले, उत्तम, मुख्य, मूल्यवान् आभूषण उस पर्वत भूमि पर दिखाई दिये थे, वे इसी देवी के द्वारा गिराये गये थे ॥ ४६ ॥ इस देवी का चिरकाल से धारण किया हुआ यह वस्त्र यद्यपि मलिन हो गया है, तथापि निश्चय ही यह उसी प्रकार का तथा वैसा ही सुन्दर है जैसा कि हम लोगों ने उस पर्वत पर देखा था ॥४७॥ स्वर्ण के समान गौरवर्ण अङ्गवाली अवश्य ही रामचन्द्र की प्राणप्रिय धर्मपत्नी है जो रामचन्द्र से दूर होने पर भी उनके मन से कभी भी दूर नहीं हुई है ॥ ४८ ॥ यह सीता वही देवी है जिसके कारण रामचन्द्र करुणा, दया, (आश्रित वत्सलता), शोक, काम इन चार कारणों से निरन्तर दुःखी हो रहे हैं ॥ ४९ ॥ स्त्री के खो जाने के कारण करुणा, वह सदा हमारे आश्रय में रहनेवाली थी, इससे आश्रित वत्सलता, प्राणप्रिय पत्नी नष्ट हो गई है, इससे शोक और प्रिय कमनीय कान्ता होने के नाते मदन (काम)– इन चारों हेतुओं से राम दुःखी हो रहे थे ॥ ५० ॥ इस देवी का जिस प्रकार अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा शरीर का सौन्दर्य है, रामचन्द्र का भी अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा शरीर वैसा ही सुन्दर तथा सुगठित है । इसलिये यह उन्हीं के योग्य है ॥ ५१ ॥ इस देवी का मन रामचन्द्र में तथा रामचन्द्र का मन इसमें आकृष्ट है । इसीलिये यह देवी तथा रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र अब तक जीवित हैं ॥ ५२ ॥ इसके शोक से रामचन्द्र ने अब तक जो प्राण नहीं त्यागा तथा

दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः । धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥५३॥
एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसंभवः । जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीतोपलम्भो नाम पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

षोडशः सर्गः

हनूमत्परीतापः

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुंगवः । गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः । सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनुमान् विललाप ह ॥ २ ॥
मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया । यदि सीतापि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ३ ॥
रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः । नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥ ४ ॥
तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् । राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥ ५ ॥
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् । जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

इसके विना जो रामचन्द्र अपने शरीर को धारण करते हुए अब तक जीवित हैं, यह उनका कार्य अति दुष्कर है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार जनकनन्दिनी सीता को देखकर पवनसुत हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये, राम का ध्यान करने लगे तथा बार-बार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'सीता की उपलब्धि' विषयक पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१५॥

सोलहवां सर्ग

हनुमान् का सन्ताप

प्रशंसनीय सीता की हर प्रकार से प्रशंसा करके हनुमान् गुणाभिराम राम की चिंता में पुनः मग्न हो गये ॥ १ ॥ थोड़ी देर तक इस प्रकार राम का ध्यान करते हुए सीता के लिये विलाप करने लगे तथा उनकी आँखें आंसुओं से पूर्ण हो गईं ॥ २ ॥ गुरु के प्रति विनीत लक्ष्मण के बड़े भाई रामचन्द्र की प्रिय धर्मपत्नी सीता यदि ऐसा दुःख पा रही है, तो यही समझना चाहिये कि काल की गति अनतिक्रमणीय है ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् राम लक्ष्मण के पराक्रम तथा व्यवसाय को जानने वाली सीता दुःख का हेतु होने पर भी उसी प्रकार दुःखी नहीं है जैसे मेघागमन के समय गङ्गा ॥ ४ ॥ चरित्र, अवस्था, व्यवहार तथा सम्भ्रान्त कुल में जन्म—ये सारी बातें रामचन्द्र और सीता दोनों में तुल्य पाई जाती हैं ॥ ५ ॥ नूतन स्वर्ण के समान कान्ति वाली तथा अपनी कमनीय कान्ति से लक्ष्मी के समान शोभा वाली उस जानकी को देख कर हनुमान् ने मन से रामचन्द्र का ध्यान किया ॥ ६ ॥ मर्यादा पुरुषोत्तम महाबली रामचन्द्र ने इसी

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः । रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥ ७ ॥
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः । वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥ ८ ॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ ९ ॥
खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः । दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥१०॥
ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् । अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकसत्कृतम् ॥११॥
सागरश्च मया क्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः । अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥१२॥
यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् । अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥१३॥
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा । त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥१४॥
इयं सा धर्मशीलस्य मैथिलस्य महात्मनः । सुता जनकराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥१५॥
[उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते । पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥ १६ ॥]
विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः । स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥१७॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः । इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥१८॥
सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता । अचिन्तयित्वा दुःखानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥१९॥
संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणे रता । या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥२०॥

विशालाक्षी सीता की प्राप्ति के लिये महाबली बाली को मारा, पराक्रम में रावण के समान कबन्ध को धराशायी किया ॥ ७ ॥ भीषण पराक्रम करने वाला राक्षस विराध संग्राम में पराक्रमी रामचन्द्र के द्वारा इस प्रकार मारा गया जिस प्रकार इन्द्र ने असुरराज शम्बर को मारा था ॥ ८ ॥ अग्नि के समान देदीप्यमान बाणों से जनस्थान में रामचन्द्र ने भीषण कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को मार दिया ॥ ९ ॥ ज्ञान-विज्ञान के धनी महातेजस्वी रामचन्द्र ने संग्राम में खर, दूषण तथा त्रिशिरा को मारा ॥ १० ॥ इस जानकी की प्राप्ति के लिये ही लोक प्रसिद्ध बालि-पालित वनवासियों का ऐश्वर्य तथा दुर्लभ राज्य सुग्रीव ने प्राप्त किया ॥११॥ इसी विशालाक्षी सीता के लिये नदीपति समुद्र को मैंने पार किया तथा इस लङ्का पुरी को देखा ॥ १२ ॥ यदि रामचन्द्र जानकी के उद्धार के लिये समुद्र पर्यन्त पृथ्वी तथा प्राणिमय जगत् को छिन्न भिन्न कर देते तो उनके लिये यह उचित ही होता ॥ १३ ॥ त्रिलोकी का राज्य तथा सीता इन दोनों में सीता का स्थान ही श्रेष्ठ है, क्यों कि त्रिलोकी का समस्त राज्य जानकी की एक कला के बराबर भी नहीं है ॥ १४ ॥ धर्मशील मिथिला के सम्राट् महात्मा जनक की पुत्री यह सीता है जो अपने पति के प्रति दृढ़ विचार रखने वाली है ॥ १५ ॥ यह सीता हल जोतते समय खेत वाली भूमि को फाड़ कर पद्म पराग के समान क्यारियों की धूल से धूसरित निकली थी ॥ १६ ॥ * यह सीता आर्य स्वभाव वाले संग्राम में कभी पीठ न दिखाने वाले पराक्रमी राजा दशरथ की यशस्विनी ज्येष्ठ पुत्रवधू है ॥ १७ ॥ धर्मात्मा, कृतज्ञ, अपने कर्त्तव्य का ज्ञान रखने वाले रामचन्द्र की यह सीता प्राणप्रिया भार्या है जो इस समय राक्षसों के वश में आ गई है ॥ १८ ॥ अपने पति के स्नेह के कारण राजकीय सम्पूर्ण भोगों को छोड़ कर, आने वाले किसी कष्ट पर ध्यान न देते हुए यह सीता निर्जन वन में आई थी ॥ १९ ॥ पति सेवा परायणा सीता फल मूल पर सन्तोष करती हुई जैसे राजमहल में प्रसन्न रहती थी वैसे ही वन में भी प्रसन्न रहती थी ॥ २० ॥ स्वर्ण के समान

* दे०—वा० रा० अयो० ११८ । २९ ॥

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी । सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥२१॥
इमां तु शीलसंपन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः । रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥२२॥
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति । राजा राज्यात्परिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥२३॥
कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च । धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमलालसा ॥२४॥
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् । एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥२५॥
भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि । एषा विरहिता तेन भूषणार्हा न शोभते ॥२६॥
दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः । धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥२७॥
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् । सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः ॥२८॥

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभाक्षी या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः संरक्ष्यते संप्रति वृक्षमूले ॥२९॥
हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परयातिपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥३०॥
अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥३१॥

गौर वर्ण वाली, स्मित भाषिणी, कष्ट न सहने योग्य यह सीता आज इन महान् कष्टों को भोग रही है ॥ २१ ॥ चरित्रशालिनी, रावण के द्वारा हरी हुई इस सीता को रामचन्द्र उसी प्रकार देखना चाहते हैं जैसे कोई पिपासु व्यक्ति पौसाला को प्राप्त करना चाहता है ॥ २२ ॥ जानकी को प्राप्त कर रामचन्द्र अवश्य ही उसी प्रकार प्रसन्न होंगे जिस प्रकार राज्य से भ्रष्ट कोई सम्राट् अपने राज्य को प्राप्त कर प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥ अपने प्रिय जनों से विमुक्त यह सीता, सांसारिक भोगों को त्याग कर अपने पति रामचन्द्र के दर्शन की आशा से ही जीवित है ॥ २४ ॥ यह जानकी अपने समीप रहने वाली राक्षसियों को नहीं देखती, न ही इस वाटिका के फूल-फल-वृक्षों को देखती है। यह राम के प्रेम में मग्न होकर सदा अपने हृदय में राम को ही देखती है ॥ २५ ॥ स्त्रियों के लिये पति ही सम्पूर्ण भूषणों से अधिक शोभादायक होता है, किन्तु शोभा के योग्य यह सीता पति के बिना आज शोभा को नहीं प्राप्त हो रही है ॥ २६ ॥ समर्थ रामचन्द्र इस जानकी के बिना भी जो जीवित हैं तथा इस दुःख में भी अपने आपको संभाले हैं, यह उनके लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है ॥ २७ ॥ काले केश वाली, कमलनयनी, सदा सुख में रहने वाली इस सीता को दुःखी देख कर मेरा मन भी अत्यन्त व्यथित हो गया है ॥ २८ ॥ पृथ्वी के समान क्षमाशील, कमल के समान नेत्र वाली जिस सीता की सदा राम लक्ष्मण रक्षा किया करते थे, वह सीता आज इस वृक्ष के मूल में भयङ्कर नेत्र वाली राक्षसियों से रक्षित हो रही है ॥ २९ ॥ हिमार्दित कमलिनी के समान नष्ट कान्ति वाली तथा बार-बार दुःखों से संतप्त होने वाली, अपने सहचारी चक्रवाक से वियुक्त चक्रवाकी के समान यह जानकी आज शोचनीय दशा को प्राप्त हो गई है ॥ ३० ॥ पुष्पों के भार से नत शाखा वाले ये अशोक वृक्ष इस सीता के शोक संताप को और अधिक बढ़ा रहे हैं तथा हजारों किरणों वाले चन्द्रदेव भी वसन्त आगमन के समय इसे दुःख दे रहे हैं ॥ ३१ ॥ इन बातों पर विचार कर के 'सीता यही है' यह

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव निविष्टबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्परीतापो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

राक्षसीपरिवारः

ततः कुमुदषण्डाभो निर्मलो निर्मलं स्वयम् । प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥
साचिव्यमिव कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभः । चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥
स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥
दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनुमान् पवनात्मजः । स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥
एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा । अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥ ५ ॥
अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् । ध्वस्तकेशीं तथाकेशां केशकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥
लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् । लम्बोष्ठीं चुबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम्॥७॥

निश्चित बुद्धि कर के वन-वासियों के वीर वेगवान् हनुमान् उसी वृक्ष पर शान्तिपूर्वक बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का संताप'
विषयक सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

राक्षसियों का सीता को घेरना

तत्पश्चात् धवल पद्म के सदृश निर्मल चन्द्र आकाश में इस प्रकार उदित हुआ जिस प्रकार नील ज़ल वाले सरोवर में राजहंस ॥ १ ॥ निर्मल प्रभा वाला चन्द्र अपनी शीतल किरणों से मानो हनुमान् को सहायता प्रदान करने के लिये वहाँ उपस्थित हो गया ॥ २ ॥ शोक भार से परिपूर्ण चन्द्रमुखी सीता को पवनसुत हनुमान् ने पानी में अत्यन्त भार से दबी हुई नौका के समान देखा ॥३॥ जानकी को देखने की इच्छा वाले हनुमान् ने वहाँ समीप में ही भयङ्कर आकार वाली राक्षसियों को देखा ॥ ४ ॥ उनमें कोई एक आँख वाली, कोई एक कान वाली, कोई लम्बे कान वाली, कोई कर्णहीन, किसी के उठे हुए कान, किसी का ऊँचा मस्तक तथा ऊँची नाक थी ॥ ५ ॥ कोई लम्बे शरीर वाली, कोई उत्तम अङ्ग वाली, किसी की छोटी ग्रीवा, किसी की लम्बी ग्रीवा, किसी के बाल बिखरे हुए, किसी के सिर पर बाल ही नहीं, किसी ने केश को ही कम्बल के रूप में धारण किया हुआ था ॥६॥ किसी के लम्बे कान, किसी का ललाट तथा पेट लम्बा, कईयों के स्तन, ओष्ठ तथा ठुड्डी लम्बी, कोई लम्बे मुँह वाली, कोई लम्बे घुटने वाली ॥ ७ ॥ कोई लम्बी, कोई नाटी, कोई कुबड़ी,

ह्रस्वां दीर्घां तथा कुब्जां विकटां वामनां तथा । करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥ ८ ॥
विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः । कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥
वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखीः । गजोष्ट्रहयपादीश्च निखातशिरसोऽपराः ॥१०॥
एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः । गोकर्णीहस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥११॥
अनासा अतिनासाश्च तिर्यङ्नासा विनासिकाः । गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः ॥१२॥
हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः । अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥१३॥
अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वानखास्तथा । अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥१४॥
हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः । शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥१५॥
कराला धूम्रकेशीश्च राक्षसीर्विकृताननाः । पिबन्तीः सततं पानं सदा मांससुराप्रियाः ॥१६॥
मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः । ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥१७॥
स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् । तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥१८॥
लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनुमाञ्जनकात्मजाम् । निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम् ॥१९॥
क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव । चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥२०॥
भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषणाम् । राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥२१॥
वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव । चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥२२॥

कोई भयङ्कर आकार वाली, कोई बौनी, कोई विकराल, कोई टेढ़े मुँह वाली, कोई पीली आँखों वाली तथा कोई विकृत मुख वाली थी ॥ ८ ॥ विकृत वेश वाली, पीले, काले वर्ण वाली, क्रोधी, झगड़ालू, लोहे के बने शूल, मुद्गर का धारण करने वाली ॥ ९ ॥ वराह, मृग, व्याघ्र, भैंसा, बकरा, सियार आदि के समान मुखादि आकार वाली, हाथी, घोड़े, ऊँट के समान पैरों वाली तथा किसी का सिर अन्दर धँसा हुआ था ॥ १० ॥ एक हाथ वाली, एक पैर वाली, गधे तथा घोड़े के समान लम्बे कान वाली, गौ तथा हाथी के सदृश कान वाली तथा सिंह के समान कान वाली ॥ ११ ॥ लम्बी नाक वाली, टेढ़ी नाक वाली, नाक रहित, विकृत नाक वाली, अति लम्बी नाक वाली ॥ १२ ॥ हस्तिपाद के समान पैर वाली, लम्बे पैर वाली, गौ के समान पैर वाली, अतिलोम पद वाली, लम्बे सिर-गरदन वाली, लम्बे स्तन तथा उदर वाली ॥ १३ ॥ बड़े मुख तथा आँखों वाली, बड़ी जिह्वा एवं मुख वाली, बकरी के समान मुख वाली, हाथी तथा गौ के मुख वाली तथा सूअर के मुख वाली ॥ १४ ॥ घोड़े, ऊँट तथा गधे के समान मुख वाली, शूल तथा मुद्गर धारण करने वाली, क्रोधी, झगड़ालू ॥ १५ ॥ घोर आकार वाली, धुएँ के समान विकराल केश वाली, विकृत मुख वाली, मद्यमांस की प्रेमी, निरन्तर मद्य पान करने वाली ॥ १६ ॥ मांस और रक्त से सने हुए शरीर वाली, मांस-रक्त का खान-पान करने वाली, अत्यन्त विकराल दर्शन वाली राक्षसियों को हनुमान् ने देखा ॥ १७ ॥ डालियों तथा शाखाओं से परिपूर्ण वृक्ष के चारों ओर वे सब बैठी हुई थीं। उसी वृक्ष के नीचे अनिन्दिता राजकुमारी उस देवी को ॥ १८ ॥ पवनसुत हनुमान् ने देखा। कान्तिहीन, शोक से संतप्त, मल से धूल-धूसरित केश वाली ॥ १९ ॥ पुण्य के क्षीण होने पर (आकर्षण समाप्त होने पर) गिरी हुई तारा (उल्का) के समान, प्रशस्त कीर्ति से युक्त, पति-दर्शन के अभाव से दुःखी ॥ २० ॥ उत्तम आभूषणों से हीन, पतिप्रेम रूपी आभूषणों से सुशोभित, राक्षसराज रावण के द्वारा अवरुद्ध, स्वजनहीना ॥ २१ ॥ अपने संघ से भ्रष्ट, सिंह से आक्रान्त हथिनी के समान, वर्षा के अन्त में शरद् मेघाच्छन्न चन्द्रलेखा के समान ॥ २२ ॥ दयनीय

क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् । सीतां भर्तृवशे युक्तामयुक्तां राक्षसीवशे ॥२३॥
अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् । ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥२४॥
ददर्श हनुमान् देवीं लतामकुसुमामिव । सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलंकृता ॥२५॥
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ।
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् । संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान् कपिः ॥२६॥
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा । रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ॥२७॥
तां दृष्ट्वा हनुमान् सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् । मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ॥२८॥
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान् पल्लवधारिणः । सङ्घातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ॥२९॥
तां क्षामां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् । प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥३०॥
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् । मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥३१॥
नमस्कृत्वा स रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् । सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान् संवृतोऽभवत् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे राक्षसीपरिवारो नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

रूप वाली, न बजाने से विकृत वीणा के समान, पति के प्रेम से युक्त, अशोभनीय राक्षसों के वश में आई हुई सीता को ॥ २३ ॥ जो अशोक वाटिका के मध्य में रह कर भी शोकसागर में डूबी हुई तथा उन क्रूर राक्षसियों से इस प्रकार घिरी हुई थी जिस प्रकार मंगल आदि ग्रह से आक्रान्त रोहिणी ॥ २४ ॥ पुष्पहीन लता के समान, स्नान आदि के अभाव में मलिन गात्र वाली तथापि शारीरिक शोभायुक्त, पङ्कलिप्त कमलिनी के समान शोभायुक्त तथा शोभा रहित देवी जानकी को हनुमान् ने देखा ॥ २५ ॥ मलिन तथा जीर्ण वस्त्रों से युक्त उस मृगनयनी सीता को हनुमान् ने देखा ॥ २६ ॥ कान्तिहीन मुख वाली, पति के तेज तथा पराक्रम पर विश्वास कर हृदय में अदीनता धारण करने वाली, अपने उदात्त विचारों से अपने चरित्र की रक्षा करने वाली, शुभ नेत्रों वाली उस देवी सीता को हनुमान् ने देखा ॥ २७ ॥ मृगशावक के समान नेत्र वाली, भीत मृगी के समान इधर-उधर देखने वाली ॥ २८ ॥ मानों शोक-संतप्त दीर्घ साँसों से पल्लवधारी वृक्षों को जलाती हुई, शोक-राशि के समान, उठे हुए दुःखों की तरङ्ग के समान ॥ २९ ॥ कृशाङ्गी, यथायोग्य अङ्ग वाली, विना आभरणों के भी शोभा वाली मिथिला की राजकुमारी सीता को देख कर हनुमान् अति-प्रसन्न हो गये ॥ ३० ॥ उस जानकी को देख कर हनुमान् हर्षातिरेक से अश्रु बहाने लगे तथा मन से भगवान् रामचन्द्र को प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ पराक्रमी हनुमान् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण को प्रणाम कर के सीता के दर्शन से प्रसन्न हो, उसी वृक्ष पर छिप कर बैठ गये ॥ ३२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'राक्षसियों का सीता को घेरना' विषयक सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

रावणागमनम्

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् । विचिन्वतश्चवैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत् ॥ १ ॥
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् । शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ २ ॥
अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः । प्राबुध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥ ३ ॥
विबुध्य तु यथाकालं राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥ ४ ॥
भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः । न स तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥ ५ ॥
स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् । तां नगैर्बहुभिर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥ ६ ॥
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् । सदामदैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥
ईहामृगैश्च विविधैर्जुष्टां दृष्टिमनोहरैः । वीथीः संप्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाः ॥ ८ ॥
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् । अशोकवनिकामेव प्राविशत्संततद्रुमाम् ॥ ९ ॥
अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् । महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥१०॥
दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः । वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥११॥
काञ्चनैरपि भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः । मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥१२॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

रावण का आगमन

पुष्पित वृक्षों से युक्त उस वन को इस प्रकार देखते हुए तथा जानकी की खोज करते हुए हनुमान् को उषा काल का समय हो गया ॥ १ ॥ उस रात्रि की समाप्ति पर साङ्गोपाङ्ग वेद के पढ़ने वाले, बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले उन वेदपाठी राक्षसों के वेदघोष को हनुमान् ने सुना ॥ २ ॥ पश्चात् कान तथा मन को सुखकारी, उद्‌बोधक माङ्गलिक शब्दों को सुनकर विशाल भुजा वाला रावण जागा ॥ ३ ॥ शयन के समय जिसकी माला तथा वस्त्र अस्त व्यस्त हो गये हैं, ऐसा प्रतापी राक्षसराज रावण सीता के विषय में चिन्ता करने लगा ॥ ४ ॥ मद्यपान आदि से मदोन्मत्त वह कामी रावण सीता के प्रति अपने आसक्त हाव-भाव को छिपा नहीं सका ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण आभरणों से अलंकृत वह रावण फूल फल वाले अनेक वृक्षों से सुशोभित उत्तम शोभा वाली उस अशोकवाटिका की ओर चला ॥ ६ ॥ जो वाटिका नाना प्रकार के फूलों से सरोवरों से परिपूर्ण थी तथा चित्र विचित्र विविध पक्षियों से युक्त थी ॥ ७ ॥ अनेक प्रकार मनोहारी कृत्रिम पशुओं से युक्त मणि तथा काञ्चन युक्त तोरण वाली गलियों को देखता हुआ रावण चला ॥ ८ ॥ उस वाटिका में अनेक प्रकार के वन्य पशुओं तथा वृक्षों से गिरे हुए फल सुशोभित हो रहे थे, ऐसी घने वृक्षों वाली उस अशोक वाटिका में रावण ने प्रवेश किया ॥ ९ ॥ जाते हुए रावण के पीछे देव, गन्धर्व जाति की सैकड़ों स्त्रियाँ इस प्रकार चलीं जिस प्रकार इन्द्र के पीछे अप्सराएँ चलती हैं ॥ १० ॥ कुछ स्त्रियाँ अपने हाथ में स्वर्ण दीपक लिये हुए थीं, कोई चँवर लिये हुए थीं, कोई पंखे लिये हुये थीं ॥ ११ ॥ कोई सोने की सुराहियों में पानी लेकर आगे-आगे चलीं तथा कोई आसन को लपेटकर लिये हुये पीछे-पीछे चलीं ॥ १२ ॥ कोई चमकता

काचिद्रत्नमयीं स्थालीं पूर्णां पानस्य भामिनी । दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥१३॥
राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् । सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥१४॥
निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमाः स्त्रियः । अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥१५॥
व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः । समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥१६॥
घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः । स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः सुमाल्याकुलमूर्धजाः ॥१७॥
प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः । वहुमानाच्च कामाच्च प्रिया भार्यास्तमन्वयुः ॥१८॥
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महावलः । सीतासक्तमना मन्दो मदाञ्चितगतिर्बभौ ॥१९॥
ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् । शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मारुतात्मजः ॥२०॥
तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यवलपौरुषम् । द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः ॥२१॥
दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् । गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥२२॥
कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् । समक्षमिव कंदर्पमपविद्धशरासनम् ॥२३॥
मथितामृतफेनाभमरजो वस्त्रमुत्तमम् । सलीलमनुकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥२४॥
तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पघनावृतः । समीपमुपसंक्रान्तं निध्यातुमुपचक्रमे ॥२५॥
अवेक्षमाणस्तु ततो ददर्श कपिकुञ्जरः । रूपयौवनसंपन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥२६॥

हुआ मद्य से भरा हुआ स्वर्ण पात्र, कोई चतुर स्त्री अपने दाहने हाथ में ॥ १३ ॥ राजहंस तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र लेकर चली, कोई अपने हाथ में स्वर्ण दण्ड लेकर चली ॥ १४ ॥ निद्रा तथा मद से घूर्णित आँख वाली रावण की उत्तम स्त्रियाँ अपने वीरपति के पीछे इस प्रकार चलीं जैसे मेघ के सहारे विद्युत् चलती है ॥ १५ ॥ जिनके हार तथा कङ्कण अस्त व्यस्त हो गये थे, जिनका अंगराग छूट गया था, जिनके केश कलाप विखर गये थे तथा जिनके मुख मण्डल पर पसीना आ रहा था ॥ १६ ॥ जो मदपान से तथा निद्रित होने के कारण लड़खड़ा रही थीं, पसीने से फूल के समान शरीर म्लान हो रहा था, मालाएँ जिनके बिखरे हुए केशों में उलझ रही थीं ॥ १७ ॥ अशोक वाटिका में उस राक्षसराज के जाते हुए उसकी मदघूर्णित नेत्रों वाली स्त्रियाँ संमान तथा प्रेम के कारण उसके पीछे पीछे चलीं ॥ १८ ॥ कामासक्त, महाबली उन स्त्रियों का पति राक्षसराज रावण जिस का मन सीता के प्रति आसक्त हो रहा था, मन्द-मन्द गति से सुशोभित हो रहा था ॥ १९ ॥ उसी समय रावण की उत्तम स्त्रियों के काञ्ची (कटि आभूषण) नूपुर के झङ्कृत शब्दों को पवन सुत हनुमान् ने सुना ॥ २० ॥ अप्रतिम कर्म करने वाले तथा अप्रमेय बल पराक्रम वाले उस रावण को वाटिका के द्वार पर आये हुए हनुमान् ने देखा ॥ २१ ॥ सुगन्धित तेल से परिपूर्ण अपने हाथ में दीपक लिये हुए अनेक स्त्रियां जिसके आगे चल रही थीं ॥ २२ ॥ काम, अहङ्कार, मद से युक्त, कुटिल तथा लाल नेत्रों वाला वह रावण धनुष हीन साक्षात् कन्दर्प के समान प्रतीत हो रहा था ॥ २३ ॥ मथे हुए दूध के फेन के समान उत्तम श्वेत वस्त्र को जो अङ्गद (बाजूबन्द) में उलझ गया था, उसको सुन्दरता से छुड़ाते हुए रावण को हनुमान् ने देखा ॥ २४ ॥ पत्तों तथा शाखाओं से ढके हुए उस वृक्ष पर छिपे हुए हनुमान् समीप आते हुए उस रावण को पहचानने की चेष्टा करने लगे ॥ २५ ॥ रावण को देखते हुए वनवासी वीर हनुमान् ने रूप यौवन से परिपूर्ण रावण की स्त्रियों को देखा ॥ २६ ॥ उन रूप सौन्दर्य से युक्त स्त्रियों से घिरे हुए राक्षसराज रावण ने पशुपक्षियों से शब्दायमान उस प्रमदा वन (अशोक वाटिका)

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः । तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥२७॥
क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः । तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥२८॥
वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः । तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥२९॥
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः । सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे ॥३०॥
अवप्लुतो महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ।
स तथाप्युग्रतेजाः सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा । पत्रगुल्मान्तरे सक्तो हनुमान् संवृतोऽभवत् ॥३१॥
स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् । दिदृक्षुरसितापाङ्गामुपावर्तत रावणः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रावणागमनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

कृच्छ्रगतसीतोपमाः

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता । रूपयौवनसंपन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् । प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥

में प्रवेश किया ॥ २७ ॥ उस मद्यप, विचित्र अलंकारों से अलंकृत, उठे हुए कर्ण वाले, महाबली, विश्रवा के पुत्र राक्षसराज रावण को हनुमान् ने देखा ॥२८॥ ताराओं से परिवृत चन्द्रमा के समान परम सुन्दरियों से घिरे हुए तेजस्वी रावण को महातेजस्वी वनवासी हनुमान् ने देखा ॥ २९ ॥ जो सीतान्वेषण के समय उत्तम भवन में पहले सो रहा था, विशाल भुजा वाला यह वही रावण है, ऐसा विचार कर महाबली पवनसुत हनुमान् जिस शाखा पर बैठे थे उससे ऊपर चले गये ॥ ३० ॥ अत्यन्त तेजस्वी हनुमान् रावण के तेज के सामने निस्तेज हो गये। इसलिये हनुमान् पत्तों में छिप गये ॥ ३१ ॥ वह रावण शोभित अङ्गवाली, सुन्दर नेत्र वाली जानकी को देखने के लिये उधर लौट पड़ा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रावण का आगमन' विषयक अट्ठारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवां सर्ग

विपत्ति में पड़ी सीता की उपमाएँ

सदल बल रावण के प्रवेश के समय अनवद्या राजकुमारी जानकी रूप यौवन से सम्पन्न, उत्तम अलंकारों से अलंकृत ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण को अशोक वाटिका में आते देखकर वायु से कम्पित कदली के समान काँपने लगी ॥ २ ॥ विशाल नेत्रवाली उत्तम वर्णवाली सीता दोनों जंघाओं से उदर को तथा दोनों

आच्छाद्योदरमूरुभ्यां बाहुभ्यां च पयोधरौ। उपविष्टा विशालाक्षी रुदन्ती वरवर्णिनी ॥ ३ ॥
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः। ददर्श सीतां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ४ ॥
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्। छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥ ५ ॥
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डिताम्। मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥
समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः। संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम्। दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ८ ॥
वेष्टमानां तथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव। धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥ ९ ॥
वृत्तशीलकुले जातामाचारवति धार्मिके। पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥१०॥
सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्। प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥११॥
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव। दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव ॥१२॥
पौर्णमासीमिव निशां राहुग्रस्तेन्दुमण्डलाम्। पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥१३॥
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम्। वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम्। हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलां पद्मिनीमिव ॥१५॥
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव। परया मृजया हीनां कृष्णपक्षनिशामिव ॥१६॥

हाथों से वक्षःस्थल को छिपाकर रोती हुई वहाँ बैठ गई ॥ ३ ॥ राक्षसियों से रक्षित, दुःख से आर्त विदेह राजकुमारी सीता को सागर में डूबती हुई नौका के समान देखा ॥ ४ ॥ विना बिस्तरे के पृथ्वी पर बैठी हुई व्रतचारिणी सीता को रावण ने इस प्रकार देखा जैसे किसी वृक्ष की शाखा कट कर पृथ्वी पर गिर गई हो ॥ ५ ॥ मल रूपी पङ्क से जिसका शरीर अवलिप्त हो रहा था, जिसके सम्पूर्ण अङ्ग अनलंकृत होने पर भी अलंकृत हो रहे थे, वह सीता पङ्क से आच्छादित कमलिनी के समान शोभित भी हो रही थी तथा अशोभित भी दिखाई दे रही थी ॥ ६ ॥ ज्ञान विज्ञान के धनी राजसिंह रामचन्द्र के समीप सङ्कल्प रूपी घोड़ों से युक्त मन के रथ पर बैठकर मानो सीता जा रही थी (अर्थात् राम के ध्यान में मग्न थी) ॥ ७ ॥ क्षीणकाया, रोती हुई, शोकसंतप्त, ध्यानमग्न, अपनी विपत्ति के अन्त को न देखने वाली, रामचन्द्र के प्रति अनुराग रखने वाली सीता को रावण ने देखा ॥ ८ ॥ औषध आदि के द्वारा सब ओर से स्तम्भित नागिन के समान, धूमकेतु ग्रह से संतप्त रोहिणी के समान ॥ ९ ॥ शील सदाचार सम्पन्न कुल में उत्पन्न होनेवाली, अनेक उत्तम संस्कारों से संस्कृत होने पर भी जो दुष्कुल में उत्पन्न हुई सी प्रतीत हो रही थी, ऐसी सीता को रावण ने देखा ॥ १० ॥ नष्ट कीर्ति के समान, तिरस्कृत श्रद्धा के समान, क्षीण प्रज्ञा के समान, प्रतिहत आशा के समान ॥ ११ ॥ अन्धकार से आच्छन्न भविष्य के समान, अवमानित आज्ञा के समान, ग्रीष्मकाल में सूर्य की संतप्त किरणों से जलती हुई दिशा के समान, विधिहीन नष्ट हुई पूजा के समान जानकी को रावण ने देखा ॥ १२ ॥ उपराग (ग्रहण) से ग्रस्त पूर्णमासी के समान, हिमपात से ध्वस्त कमलिनी के समान विनष्ट-सैनिक सेना के समान ॥ १३ ॥ अन्धकार आच्छन्न प्रभा के समान, जलहीन नदी के समान, अपवित्र वेदि के समान, बुझी हुई अग्नि शिखा के समान जानकी को रावण ने देखा ॥ १४ ॥ जिसके कमल दल नष्ट कर दिये गये हैं, जिसके पक्षीगण डरा दिये गये हैं तथा हाथी के सूंड से आलोडित वापी के समान सीता को रावण ने देखा ॥ १५ ॥ पति के शोक से संतप्त, जल के निकल जाने पर सूखी नदी के समान, स्नान आदि के अभाव से कृष्णपक्ष की रात्रि के समान ॥ १६ ॥ रत्न जटित गृह में निवास करने योग्य, ग्रीष्म से संतप्त तथा

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् । तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥१७॥
गृहीतामालितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् । निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥१८॥
एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः । नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥१९॥
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च । परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥२०॥
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव । भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥२१॥
समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे कृच्छ्रगतसीतोपमा नाम एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

प्रणयप्रार्थना

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् । साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १ ॥
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् । अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

सद्यः तोड़ी हुई कमलिनी के समान शोभन अङ्गवाली सुकुमारी जानकी को हनुमान् ने देखा ॥ १७ ॥ अपने झुण्ड से अलग की हुई, खम्भे में बन्धी हुई, दुःख से परिपूर्ण, बार-बार सांस लेती हुई हथिनी के समान ॥ १८ ॥ अयत्न से बन्धी हुई लम्बी एक वेणी से शोभायमान, वर्षा काल के अन्त में हरी वन पंक्ति से युक्त भूमि के समान जानकी को रावण ने देखा ॥ १९ ॥ उपवास, शोक, ध्यान मग्न होने तथा भय से अल्प आहार करनेवाली, शरीर से क्षीण, कृश, दीन, तपस्विनी ॥ २० ॥ दुःख से आर्त्त, हाथ जोड़कर देवता के समान रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र के द्वारा मन ही मन रावण की पराजय की प्रार्थना करती हुई जानकी को रावण ने देखा ॥ २१ ॥ अनिन्दित, रोती हुई, अच्छी बरौनियों से युक्त कुछ श्वेत तथा लाल नेत्र वाली, राम के प्रति अत्यन्त अनुराग वाली जानकी को रावण अपना नाश करने के लिये प्रलोभन देने लगा ॥२२॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का "विपत्ति में पड़ी सीता की उपमाएँ" विषयक उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ सर्ग

प्रणय की प्रार्थना

भयङ्कर राक्षसियों से घिरी हुई दीन, आनन्दहीन तपस्विनी सीता से रावण अपने अभिप्राय युक्त वचन मधुर शब्दों में बोला ॥ १ ॥ हे गजशुण्ड के समान ऊरु वाली सीता ! अपने वक्षःस्थल तथा उदर को छिपाती हुई मानो मेरे भय से तुम अपने आपको ही छिपाना चाहती हो ॥ २ ॥ हे सर्वाङ्ग सुन्दरी

कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये । सर्वाङ्गगुणसंपन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ ३ ॥
नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः । व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥
स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः । गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥ ५ ॥
एवं चैतदकामां तु न त्वां स्प्रक्ष्यामि मैथिलि । कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥
देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये । प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ ७ ॥
एकवेणी धराशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् । अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥ ८ ॥
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च । विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च । गीतं नृत्तं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥१०॥
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् । मां प्राप्य हि कथं नु स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥११॥
इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते । यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः शीघ्रमपामिव ॥१२॥
त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वसृट् । न हि रूपोपमा त्वन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥१३॥
त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् । कः पुमानतिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥१४॥
यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने । तस्मिंस्तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥१५॥
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेनं विसर्जय । बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥१६॥

सम्पूर्ण गुण तथा शोभन अङ्ग से सम्पन्न विशालाक्षी सीता ! मैं हृदय से तुम्हारी कामना करता हूं कि मुझे तुम स्वीकार कर लो ॥ ३ ॥ हे सीता ! न यहां कोई मनुष्य है, न कोई स्वेच्छाचारी राक्षस है । मुझसे जो तुम्हें भय उत्पन्न हो गया है उसे तुम हृदय से निकाल दो ॥ ४ ॥ यद्यपि हे भीरु सीता ! बलपूर्वक परस्त्री का हरण करना तथा उन से बलात्कार करना यह राक्षसों का सदा धर्म माना गया है ॥ ५ ॥ किन्तु इस प्रकार मुझ से प्रेम न करनेवाली, कामनाहीन तुम्हारे शरीर का मैं स्पर्श नहीं करूंगा, चाहे कामदेव यथेष्ट मेरे शरीर में कामवासना को प्रदीप्त करे ॥ ६ ॥ हे देवि ! तुम यहां मुझ से किसी प्रकार का भय मत करो, हे प्रिये ! तुम मुझ पर विश्वास करो । तुम मुझे अपना समझकर मुझसे प्रेम करो और अब किसी प्रकार का शोक मत करो ॥ ७ ॥ एक वेणी का धारण करना, भूमि पर सोना, सदा चिन्तित रहना, मलिन वस्त्र धारण करना, अकारण उपवास करना—यह सब तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं ॥ ८ ॥ चित्र विचित्र मालाएं, सुगन्ध युक्त चन्दन तथा अगर, नाना प्रकार के उत्तम वस्त्र, दिव्य अलंकार ॥ ९ ॥ मूल्यवान् पेय, उत्तम शय्या तथा उत्तम आसन, उत्तम नृत्य, गान, वाद्य—ये सभी वस्तुएँ मुझे अपना कर प्राप्त करो ॥ १० ॥ हे सीता ! तुम स्त्री रत्न हो, इसलिये तुम इस प्रकार की वेशभूषा मत करो । अपने शरीर को भूषणों से अलङ्कृत करो । हे शुभाङ्गि ! मुझे स्वीकार कर लेने पर तुम्हारा किसी प्रकार अनादर नहीं होगा ॥ ११ ॥ यह तुम्हारा प्राप्त हुआ सुन्दर यौवन बीता जा रहा है जो बहती हुई नदी की धारा के समान जाने पर पुनः लौट नहीं सकता ॥ १२ ॥ हे शुभदर्शने ! तुम्हारी सुन्दरता के समान कोई रूपवती स्त्री नहीं दिखाई दे रही है इसलिए मैं ऐसा समझता हूं—सुन्दर स्वरूप कर्त्ता ब्रह्म तुम्हारा निर्माण कर रूप बनाने रूपी कार्य से निवृत्त हो गये हैं ॥१३॥ हे वैदेहि ! रूप यौवन से सम्पन्न तुमको प्राप्त करके कौन ऐसा मनुष्य है जो अमर्यादित न हो जाय, चाहे वह साक्षात् ब्रह्मा भी क्यों न हो ॥१४॥ हे चन्द्रानने सीते ! मैं तुम्हारे जिस-जिस अङ्ग को देखता हूं, मेरे नेत्र वहीं २ अवरुद्ध हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हे मैथिलि ! तुम मेरी भार्या बन जाओ । यह मोह कि मैं राम को पुनः प्राप्त करूंगी, छोड़ दो । मेरी इन अनेक सुन्दर स्त्रियों में तुम बड़ी महारानी बन जाओ ॥१६॥ संसार से जिन रत्नों

लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि वै । तानि मे भीरु सर्वाणि राज्यं चैतदहं च ते ॥१७॥
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् । जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥१८॥
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् । पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१९॥
असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः । अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥२०॥
इच्छया क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् । सप्रभाण्यवसज्यन्तां तवाङ्गे भूषणानि च ॥२१॥
साधु पश्यामि ते रूपं संयुक्तं प्रतिकर्मणा । प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ॥२२॥
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च । यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥२३॥
रमस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च । मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललन्तां बान्धवास्तव ॥२४॥
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशश्च मे । किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा ॥२५॥
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः । व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥२६॥
न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते । पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥२७॥
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः । हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ॥२८॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥२९॥
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम् । त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥३०॥

को शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मैं लाया हूं, हे भीरु ! वह सारा धन तथा यह राज्य मैं तुम्हें सौंपता हूं ॥ १७ ॥ हे सीता अनेक प्रकार के नगरों से युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर तुम्हारे लिये मैं तुम्हारे पिता जनक को दे दूंगा ॥ १८ ॥ इस लोक में किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता जो बल पराक्रम में मेरी समानता कर सकता हो । पारस्परिक संग्राम में तुम मेरे अतुल बल पराक्रम को देखो ॥ १९ ॥ मेरे सामने युद्ध में खड़े होने में असमर्थ, अनेक बार मेरे द्वारा भग्न ध्वजा पताका वाले देवता तथा असुर भाग चुके हैं ॥ २० ॥ तुम मेरा वरण करो, तुम उत्तम शृंगारों को करो । देदीप्यमान आभूषण तुम्हारे अंगों को सुभूषित करें ॥ २१ ॥ हे वरानने ! तुम्हारा शरीर उत्तम अलंकारों से अलंकृत होता रहा है, यह मैं देख रहा हूं । अपने इस शरीर को अलंकृत करके उदारतापूर्वक उत्तम भोगों को भोगो ॥ २२ ॥ यथेष्ट भोगों का तुम भोग करो, स्वेच्छापूर्वक आसव आदि का पान करो तथा अपने को आनन्दित करो और धन या भूमि का स्वच्छन्दता पूर्वक जो दान करना है करो ॥ २३ ॥ विश्वास पूर्वक तुम मुझ से प्रेम करो, साधिकार मुझ पर अनुशासन करो, कृपा पूर्वक मुझसे प्रेम करके अपने बन्धु-बान्धवों को प्रसन्न करो ॥ २४ ॥ हे कल्याणकारिणी यशस्विनि ! भुजबल से उपार्जित मेरी समृद्धि को तुम देखो । हे भाग्यवति ! वल्कलवसनधारी दीन राम को लेकर तुम क्या करोगी ॥ २५ ॥ राम की विजयाशा बहुत दूर हो गई है । जिसकी लक्ष्मी हाथ से निकल गई, वन में मारा मारा फिरने वाला, व्रती तथा भूमि पर सोनेवाला वह राम इस समय जीवित है या नहीं इसमें भी सन्देह है ॥२६॥ हे वैदेहि ! अब रामचन्द्र न तो तुम्हारा दर्शन ही कर सकेंगे, न तुम्हें प्राप्त ही कर सकेंगे । इस समय तुम बक पंक्ति से युक्त मेघमाला से घिरी हुई चन्द्रिका के समान हो ॥ २७ ॥ मेरे हाथ में आई हुई तुम को रामचन्द्र किसी भी अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकते, जिस प्रकार इन्द्र के हाथों में आई हुई कीर्ति को हिरण्यकशिपु नहीं प्राप्त कर सका ॥ २८ ॥ हे उत्तम हास्य करने वाली सुन्दर नेत्र तथा दन्त वाली विलासिनि ! तुम मेरे मन को उसी प्रकार हरण कर रही हो जैसे गरुड़ साँप का हरण कर लेता है ॥२९॥ मलिन कौशेय वस्त्र धारण करने वाली, अनलंकृत तथा कृश शरीर वाली तुम को देखकर मुझे अपनी स्त्रियों के प्रति प्रेम नहीं रहा ॥ ३० ॥ सब गुणों से युक्त मेरे अन्तःपुर में रहने वाली जितनी स्त्रियाँ हैं, हे जानकि !

अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः । यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥३१॥
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवराः स्त्रियः । तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥३२॥
यानि वैश्रवणे सुभ्रू रत्नानि च धनानि च । तानि लोकांश्च सुश्रोणि मां च भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥३३॥
न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः । न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥३४॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान् धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥३५॥
कुसुमिततरुजालसंततानि भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गि विहर मया सह भीरु काननानि ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रणयप्रार्थना नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

रावणतृणीकरणम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः । आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच शनैर्वचः ॥ १ ॥

तुम उन सभी पर शासन करो ॥ ३१ ॥ हे काले केश वाली सीते ! त्रिलोकी की श्रेष्ठ रमणीय स्त्रियाँ जो मेरे यहां निवास करती हैं, वे सब तुम्हारी उसी प्रकार सेवा करेंगी, जिस प्रकार अप्सराएं इन्द्राणी की सेवा करती हैं ॥ ३२ ॥ हे शोभने ! कुबेर के पास जितने रत्न और धन हैं तुम मेरे साथ उन सब का भोग करो ॥ ३३ ॥ हे देवि ! रामचन्द्र तप, तेज, यश, धन, वल पराक्रम में मेरे समान नहीं है ॥ ३४ ॥ खाओ, पीओ, विहार करो, उत्तम से उत्तम भोगों का उपभोग करो। मैं तुम को यथेष्ट भूमि, धन तथा भोगों को प्रदान कर रहा हूं। हे विलासिनि ! तुम मुझ से स्नेह पूर्वक प्रेम करो तथा तुम्हारे स्वजन भी प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ पुष्पों से युक्त, भ्रमर पंक्ति से अलंकृत, समुद्र तटवर्ती वृक्ष पंक्तियों वाले वनों में स्वर्ण के हार आदि उत्तम अलंकारों से अलंकृत तुम मेरे साथ विहार करो ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'प्रणय की प्रार्थना'
विषयक बीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवां सर्ग

रावण का तिरस्कार

उस भयङ्कर राक्षसराज रावण की इस बात को सुन कर सीता दीन क्षीण स्वर में दीनतापूर्वक मन्द मन्द रावण से बोली ॥ १ ॥ वह तपस्विनी पतिव्रता सीता अत्यन्त दुःख से आर्त्त कांपती हुई अपने पति

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी। चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता। निवर्तय मनो मत्तः स्वजने क्रियतां मनः ॥ ३ ॥
न मां प्रार्थयितुं युक्तं सुसिद्धिमिव पापकृत्। अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥
कुलं संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया। एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥ ५ ॥
राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्। नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥
साधुधर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर। यथा तव तथान्येषां दारा रक्ष्या निशाचर ॥ ७ ॥
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्। अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चलितेन्द्रियम् ॥ ८ ॥
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे। तथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ ९ ॥
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः। राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥१०॥
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्। समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥११॥
तथेयं त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला। अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति ॥१२॥
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः। अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥१३॥
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः। दिष्ट्यैतद्व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥१४॥

राम के ध्यान में मग्न हो रही थी ॥ २ ॥ अपने तथा रावण के मध्य तृण को मध्यस्थ बना कर शुचिस्मिता सीता रावण से यह बोली—हे रावण ! तुम मेरी ओर से अपने मन को हटा लो तथा अपनी प्रेमास्पदा स्त्रियों से प्रेम करो ॥ ३ ॥ पापियों के लिये जैसे सिद्धि प्रार्थना में अयोग्य होती है वैसे ही तुम मेरी प्रार्थना करने के योग्य नहीं हो। मैं पतिव्रता हूं। मुझ से इस निन्दित दुष्कर्म की आशा मत करो ॥ ४ ॥ मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हूं तथा उत्तम पतिकुल को प्राप्त हुई हूं। यशस्विनी सीता ने रावण से इतना कह कर ॥५॥ रावण की ओर से अपना मुख फेर लिया तथा पृष्ठ भाग में बैठे हुए रावण से इस प्रकार बोली—अन्य की स्त्री होने के नाते मैं तुम्हारी भार्या होने में अयोग्य हूं ॥ ६ ॥ हे रावण ! धर्म की महत्ता तथा उत्तम पुरुषों के व्यवहार का आचरण करो। हे राक्षसराज ! जैसे तुम अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हो, परायी स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥ अपने को उपमा रख कर तुम्हें परायी स्त्रियों की सदा रक्षा करनी चाहिये। तुम अपनी स्त्रियों से प्रेम करो। जो अजितेन्द्रिय चलचित्तता के कारण अपनी स्त्रियों में सन्तोष नहीं करते उन निकृष्ट बुद्धि वाले पतित पामरों को पग पग पर परायी स्त्रियों से अपमानित होना पड़ता है ॥ ८ ॥ क्या यहां सज्जनों का नितान्त अभाव है या उन के होने पर भी तुम उन का अनुवर्त्तन नहीं करते हो, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि सर्वथा विपरीत तथा सदाचार से वर्जित है ॥ ९ ॥ उत्तम विवेकी मनुष्यों के द्वारा कही हुई हितकारी बातों को भी असत् प्रवृत्ति वाले पथभ्रष्ट नहीं सुनते। आज तुम भी सम्पूर्ण राक्षस वंश का नाश करने के लिए उन्हीं पथभ्रष्टों के पथ का अनुसरण कर रहे हो ॥ १० ॥ अनीति पथ का अनुसरण करने वाले अजितेन्द्रिय राजा के कारण धन धान्य से समृद्ध नगर तथा राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥ उसी प्रकार अविवेकी राजा को प्राप्त कर तुम्हारे ही अपराधों के कारण धन-धान्य-रत्नों से समृद्ध यह लङ्का शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी ॥ १२ ॥ हे रावण ! दुष्कर्मी, अदूरदर्शी अपने ही पापों के कारण नष्ट होने वाले प्राणियों को देखकर सभी लोग प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ इसी प्रकार तुम से पीड़ित सभी लोग तुम्हें नीच कर्म करने वाला पापी कहेंगे। इस भयङ्कर पापी ने अपने पाप का फल पाया यह अच्छा हुआ, ऐसा कह कर वे हर्षित होंगे ॥ १४ ॥ तुम्हारे ऐश्वर्य तथा धन के

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा । अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ॥१५॥
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् । कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥१६॥
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव वसुधापतेः । व्रतस्नातस्य विप्रस्य विद्येव विदितात्मनः ॥१७॥
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् । वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ॥१८॥
मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता । वधं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ॥१९॥
विदितः स हि धर्मज्ञः शरणागतवत्सलः । तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥२०॥
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् । मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ॥२१॥
एवं हि ते भवेत्स्वस्ति संप्रदाय रघूत्तमे । अन्यथा त्वं हि कुर्वाणो वधं प्राप्स्यसि रावण ॥२२॥
वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् । त्वद्विधं तु न संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥२३॥
रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् । शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥२४॥
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः । इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षणाः ॥२५॥
रक्षांसि परिनिघ्नन्तः पुर्यामस्यां समन्ततः । असंपातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ॥२६॥
राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान् । उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥२७॥
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिंदमः । असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥२८॥
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले । अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ॥२९॥

द्वारा मैं लोभाकृष्ट नहीं हो सकती। मैं इस प्रकार रामचन्द्र की अनन्य परायणा धर्मपत्नी हूं जैसे सूर्य की प्रभा ॥ १५ ॥ उस लोकनाथ रामचन्द्र की अलंकृत भुजा का आश्रय लेकर अब पुनः दूसरे की भुजा का आश्रय कैसे ले सकती हूं ॥ १६ ॥ महीपति रामचन्द्र की मैं उसी प्रकार योग्य धर्मपत्नी हूं जैसे विद्याव्रत स्नातक ज्ञानी ब्राह्मण की विद्या होती है ॥ १७ ॥ हे राक्षसराज रावण ! जिस प्रकार वन में पति की कामना करने वाली हथनी अपने गजराज के पास पहुँचा दी जाती है, उसी प्रकार मुझ दुःखी को मेरे पति राम के पास पहुँचा दो ॥ १८ ॥ लङ्का पर आई हुई विपत्ति को दूर करने के लिये तथा अपने भयङ्कर संकट से बचने के लिये नरश्रेष्ठ रामचन्द्र से मित्रता करना तुम्हें उपयुक्त है ॥ १९ ॥ उन की धर्मपरायणता प्रसिद्ध है तथा वे शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवन चाहते हो तो उनके साथ तुम्हें मैत्री करनी ही पड़ेगी ॥ २० ॥ दीनानुकम्पी शरणागतवत्सल रामचन्द्र को तुम प्रसन्न करो। अत्यन्त नम्र हो कर तुम मुझे रामचन्द्र के पास पहुंचा दो ॥ २१ ॥ इस प्रकार मुझे रामचन्द्र के पास पहुंचा देने से तुम्हारा कल्याण होगा। इसके विपरीत आचरण करने से तुम महान् संकट के भागी बनोगे ॥ २२ ॥ इन्द्र का छोड़ा हुआ वज्र तुम्हें त्राण दे सकता है, यमराज के पाश से भी तुम बच सकते हो, किन्तु लोकनाथ रामचन्द्र की क्रोधाग्नि से तुम नहीं बच सकते हो ॥ २३ ॥ इन्द्र के वज्र के समान भयङ्कर, रामचन्द्र के धनुष से छूटे हुए महान् शब्द को सुनोगे ॥ २४ ॥ अग्नि के समान जाज्वल्यमान मुख वाले सर्पों के समान राम-लक्ष्मण के नामों से चिह्नित बाण यहां शीघ्र ही गिरेंगे ॥ २५ ॥ इस लङ्कापुरी में अविच्छिन्न बाण की धाराओं से सम्पूर्ण राक्षस मारे जाएंगे, इस में सन्देह नहीं ॥२६॥ जैसे गरुड़ के द्वारा सर्पों का महान् संहार होता है, उसी प्रकार हे रावण! रामचन्द्र के गरुड़ रूपी बाणों से राक्षसरूपी सर्पों का संहार होगा ॥ २७ ॥ शत्रुनाशक मेरे पति मुझे लङ्का से उसी प्रकार ले जायेंगे जैसे असुरों से विजित लक्ष्मी का विष्णु ने उद्धार किया था ॥ २८ ॥ जनस्थान में राक्षसों के मारे जाने पर उस की प्रतिक्रिया में असमर्थ तुम ने मेरा अपहरण रूपी यह निन्दित घोर कर्म किया है ॥ २९ ॥ हे अधम रावण ! उन दोनों नरकेसरी मेरे पति तथा देवर को आश्रम से दूर

आश्रमं तु तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः। गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥३०॥
न हि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया। शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥३१॥
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम्। वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य निग्रहः ॥३२॥
क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह। तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥३३॥
गिरिं कुबेरस्य गतोऽथ वालयं सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः।
असंशयं दाशरथेर्न मोक्ष्यसे महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रावणतृणीकरणं नाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

मासद्वयावधिकरणम्

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसाधिपः। प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥
यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा। यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥
संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः। द्रवतोऽमार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ ३ ॥

कर के उन दोनों की अनुपस्थिति में तुमने मेरा अपहरण किया ॥ ३० ॥ राम-लक्ष्मण की गन्ध पा कर तुम उन दोनों वीरों के सामने उसी प्रकार नहीं ठहर सकते हो जिस प्रकार सिंह के समक्ष कुत्ता नहीं ठहरता है ॥ ३१ ॥ राम-लक्ष्मण के साथ संघर्ष होने पर तुम्हारी विजय होनी असंभव है। जैसे एक भुजा वाला वृत्रासुर दो भुजा वाले इन्द्र से पराजित होता है वैसे तुम भी यहां पराजित होगे ॥ ३२ ॥ मेरे पति रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ अपने तीव्र बाणो से तुम्हारे प्राणों को उसी प्रकार नष्ट कर देंगे जैसे सूर्य थोड़े से जल को नष्ट कर देता है ॥ ३३ ॥ तुम पर्वत पर चले जाओ, कुबेर की अलका पुरी में चले जाओ अथवा राजा वरुण की सभा में चले जाओ किन्तु रामचन्द्र के बाणों से तुम अपने प्राणों को उसी प्रकार नहीं बचा सकते जैसे इन्द्र के वज्र से बड़े से बड़े वृक्ष अपने आप को सुरक्षित नहीं रख सकते ॥ ३४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रावण का तिरस्कार' विषयक इक्कीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवां सर्ग

दो मास की अवधि करना

तत्पश्चात् सीता के कठोर वचन को सुन कर राक्षस राज रावण सुन्दरी सीता से अप्रिय वचन बोला ॥ १ ॥ जैसे २ कोई पुरुष स्त्रियों से प्रिय वचन बोलता है, वैसे २ वह उनका प्रिय बनता जाता है। परन्तु तुम से जैसे २ मैं प्रिय वचन बोलता हूँ, वैसे २ तुम मेरा तिरस्कार करती जाती हो ॥ २ ॥ तुम्हारे प्रति उठा हुआ मेरा काम मेरे क्रोध को उसी प्रकार नियन्त्रित कर रहा है जैसे दक्ष सारथि कुमार्ग को प्राप्त कर दौड़ते हुए घोड़ों को नियन्त्रित करता है ॥ ३ ॥ कुटिल काम मनुष्यों में से जिस में बंध जाता है, उस

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते । जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥४॥
एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने । वधार्हामवमानार्हां मिथ्याप्रव्रजिते रताम् ॥ ५ ॥
परुषाणीह वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् । तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ६ ॥
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः । क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ७ ॥
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः । ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ८ ॥
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् । मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥ ९ ॥
तां तर्ज्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् । देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विपुलेक्षणाः ॥१०॥
ओष्ठप्रकारैरपरा वक्त्रैर्नेत्रैस्तथापराः । सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥११॥
ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् । उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौण्डीर्यगर्वितम् ॥१२॥
नूनं न ते जनः कश्चिदस्ति निःश्रेयसे स्थितः । निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥१३॥
मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः । त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥१४॥
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः । उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥१५॥
यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितो वने । तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः ॥१६॥
स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे । चक्षुषोर्विषयं तस्य न तावदुपगच्छसि ॥१७॥
इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिङ्गले । क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥१८॥

मनुष्य के प्रति दया और प्रेम उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ हे सुमुखि ! इसी कारण मैं, कपट से वनवास करने वाले राम में आसक्त, वध के योग्य तथा तिरस्कारणीय तुम्हारा वध नहीं कर रहा हूँ ॥ ५ ॥ हे मैथिल ! जिन २ कठोर वाक्यों का प्रयोग तुम मेरे लिए कर रही हो उनमें से प्रत्येक पर तुम्हारा निर्दयतापूर्ण वध ही उचित है ॥ ६ ॥ राक्षसराज रावण सीता से ऐसा कहकर, क्रोध के आवेग से युक्त होकर कहने लगा ॥ ७ ॥ हे सीता ! मैंने तुम्हारे लिए जो अवधि निश्चित की थी, उसमें से अवशिष्ट दो मास व्यतीत करो । उसके पश्चात् मेरी शय्या पर आरोहण करो ॥ ८ ॥ दो मास के पश्चात यदि तुम मुझे अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं करोगी, तो मेरे पाचक लोग मेरे प्रातःकालिक भोजन के लिए तुम्हारे टुकडे-टुकड़े कर डालेंगे ॥ ९ ॥ राक्षसराज के द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को देखकर विस्फारित नेत्रों वाली वे देव और गन्धर्वों की कन्याएँ दुःखी हो गयीं ॥ १० ॥ उस राक्षस के द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को किसी कन्या ने ओठों के, किसी ने मुख के और किसी ने नेत्रों के संकेतों से आश्वासन दिया ॥११॥ उनके द्वारा आश्वस्त सीता ने राक्षसराज रावण से हितकारी सदाचार तथा पतिशूरता से गर्वित वचनों को कहा ॥ १२ ॥ निश्चय ही तुम्हारा कोई भी व्यक्ति तुम्हारे कल्याण में स्थित नहीं है, जो तुम्हें इस निन्दित कार्य से नहीं रोकता है ॥ १३ ॥ इन्द्र की पत्नी शचि के समान धर्मात्मा रामचन्द्र की पत्नी मुझको तुम्हारे अतिरिक्त तीनों लोकों में कौन मन से भी चाह सकता है ॥ १४ ॥ हे नीच राक्षस ! असीम तेजस्वी राम की पत्नी से तुमने जो पापपूर्ण बात कही है, उससे कहाँ जाकर अपने को बचा सकोगे ॥ १५ ॥ हे अधम ! जैसे वन में मतवाला हाथी और खरहा युद्ध के लिये उद्यत हों, वैसे ही रामचन्द्र हाथी के समान और तुम खरहे के समान प्रतीत होते हो ॥ १६ ॥ तुम इक्ष्वाकु कुलनन्दन रामचन्द्र की निन्दा करते हुए नहीं लजाते हो । अस्तु, तब तक निन्दा कर लो जब तक राम के दृष्टिगोचर नहीं होते हो ॥ १७ ॥ अरे दुष्ट ! तुम्हारी ये भीषण कुरूप तथा काली-पीली आँखें मेरी ओर देखते हुए भूमि पर क्यों नहीं गिर पड़तीं ॥ १८ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र की पत्नी तथा दशरथ की पुत्र-वधू मुझसे इस प्रकार के वचन बोलते हुए तुम्हारी जिह्वा क्यों नहीं

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च । कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा व्यवशीर्यते ॥१९॥
असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् । न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२०॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः । विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥२१॥
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च । अपोह्य रामं कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥२२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥२३॥
नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः । सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान् दीप्तजिह्वाग्रलोचनः ॥२४॥
चलाग्रमकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः । रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥२५॥
श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः । अमृतोत्पादनद्धेन भुजगेनेव मन्दरः ॥२६॥
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः । शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥२७॥
तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः । रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥२८॥
स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् । श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयङ्करः ॥२९॥
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥३०॥
अनयेनाभिसंपन्नमर्थहीममनुव्रते । नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥३१॥
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संदिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥३२॥

गिर पड़ती ॥ १९ ॥ हे रावण ! रामचन्द्र का आदेश न होने से और तपश्चर्या की रक्षा करने के कारण मैं भस्म करने में समर्थ अपने तेज से तुम्हें भस्म नहीं कर रही हूँ ॥ २० ॥ उस बुद्धिमान् रामचन्द्र की पत्नी मैं अपहृत नहीं की जा सकती थी, अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि विधाता ने तुम्हारे वध के लिए ही ऐसा किया है ॥२१॥ शूर कुबेर के भाई तथा सेनाओं से युक्त होने पर भी तुमने रामचन्द्र को दूर हटाकर स्त्री की चोरी क्यों की ॥ २२ ॥ सीता के वचन को सुनकर राक्षसों के राजा रावण क्रूर नेत्रों को फैलाकर जनककुमारी सीता की ओर देखने लगा ॥ २३ ॥ काले बादल के समान लम्बी बाहुओं तथा ग्रीवा वाला बल और गति में सिन्धु के समान सम्पन्न, रक्तजिह्वा एवं नयनों वाला ॥ २४ ॥ क्रोध से कम्पित मुकुट से सुशोभित, रंग-विरंगी मालाओं तथा अनुलेपन से युक्त, लाल रंग की माला तथा अनुलेपन से युक्त, लाल रंग की माला तथा वस्त्रों को धारण किए हुए, उज्ज्वल अंगद (हाथ का आभूषण) से अलंकृत ॥ २५ ॥ काले रंग के विशाल कटि-सूत्र से सनद्ध वह अमृतोत्पत्ति के समय सर्प से सन्नद्ध मन्दराचल के समान प्रतीत हो रहा था ॥२६॥ वह राक्षसराज अपनी दोनों दीर्घ बाहुओं से दो विशाल चोटियों से युक्त मंदराचल के समान प्रतीत हो रहा था ॥ २७ ॥ देदीप्यमान भास्कर के समान वर्ण वाले कुण्डलों से अलंकृत वह रावण ऐसे पर्वत के समान प्रतीत हो रहा था, जो लाल पल्लवों तथा पुष्पों से युक्त दो अशोक के वृक्षों से विभूषित हो ॥ २८ ॥ वह कल्पवृक्ष के समान सुभूषित तथा मूर्तिमान् वसन्त के समान होने पर भी श्मशान के सुन्दर सुभूषित वृक्ष के समान भीषण प्रतीत होता था ॥ २९ ॥ क्रोध से लाल नेत्रों वाला सर्प के समान सांस लेता हुआ वह रावण विदेहकुमारी सीता की ओर देखता हुआ बोला ॥ ३० ॥ हे अनीति युक्त तथा उद्देश्यविहीन रामचन्द्र के अनुकूल आचरण करने वाली सीता ! आज मैं तुम्हें अपने तेज से इसी प्रकार नष्ट कर दूँगा जैसे सूर्य सन्ध्या के अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥ ३१ ॥ मिथिला कुमारी सीता से ऐसा कहकर शत्रुओं को रुलाने वाले राजा रावण ने भयंकर दिखाई देने वाली उन सब राक्षसियों को आदेश दिया ॥ ३२ ॥ उन राक्षसियों में कोई एक आँख वाली, कोई एक कान वाली, कोई लम्बे कान वाली, कोई गौ तथा हाथी के समान कानों

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा । गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥३३॥
हस्तिपाद्यश्वपाद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम् । एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥३४॥
अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् । अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वामजिह्विकाम् ॥३५॥
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् ॥
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी । तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य च ॥३६॥
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः । आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥३७॥
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः । काममन्युपरीतात्मा जानकीं पर्यतर्जयत् ॥३८॥
उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी । परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥३९॥
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया । विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ॥४०॥
नूनमस्या महाराज न दिव्यान् भोगसत्तमान् । विदधात्यमरश्रेष्ठस्तव बाहुबलार्जितान् ॥४१॥
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते । इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥४२॥
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली । प्रहसन् मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥४३॥
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् । ज्वलद्भास्करवर्णाभं प्रविवेश निवेशनम् ॥४४॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च सर्वतः । परिवार्य दशग्रीवं विविशुस्तद्गृहोत्तमम् ॥४५॥

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः स्वमेव वेश्म प्रविवेश भास्वरम् ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे मासद्वयावधिकरणं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

वाली, कोई कान रहित ॥ ३३ ॥ कोई हाथी, घोड़े तथा गौ के समान पैरों वाली, कोई अतिलोम वाले पैरों वाली, कोई एक आँख और एक पैर वाली, कोई चौड़े पैर वाली ॥३४॥ कोई लम्बे सिर और गर्दन वाली, कोई बड़े स्तन और उदर वाली कोई बड़े मुख और आँखों वाली तथा कोई लम्बी जिह्वा तथा बिना जिह्वा वाली थी। कोई नासिका रहित, कोई सिंह के समान मुख वाली और कोई गो तथा सूकर के समान मुखवाली थी ॥ ३५ ॥ हे राक्षसियो ! जनक कुमारी सीता जिस प्रकार शीघ्र मेरे वश में हो सके सब मिलकर वैसा प्रयत्न करो ॥३६॥ प्रतिकूल तथा अनुकूल उपायों से, साम एवं दान आदि से और दण्ड के प्रयोग से विदेहकुमारी सीता को वश में करो ॥ ३७ ॥ ऐसा आदेश देकर काम क्रोध से युक्त राक्षसराज रावण पुनः पुनः सीता को फटकारने लगा ॥ ३८ ॥ उसके पश्चात् धान्यमालिनी नामक राक्षसी ने शीघ्र समीप आकर रावण से आलिंगन करके यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ हे राक्षसराज रावण ! आप मेरे साथ विहार कर, इस कुरूप दीन मानुषी सीता से आपका क्या प्रयोजन ॥ ४० ॥ हे महाराज ! निश्चय ही ब्रह्मा ने आपके बाहुबल से अर्जित दिव्य भोगों को भोगना इसके लिए नहीं विहित किया ॥४१॥ कामना-रहित की कामना करने वाले का शरीर सन्तप्त होता है और कामना करने वाली स्त्री की कामना करने से उसे महती प्रीति होती है ॥ ४२ ॥ राक्षसी के ऐसा कहने पर वह बलवान् रावण वहाँ से हटा दिया गया, मेघ के सदृश वह राक्षस हंसता हुआ लौट गया ॥ ४३ ॥ वह रावण वहाँ से प्रस्थान करके देदीप्यमान अपने भवन में प्रविष्ट हुआ ॥ ४४ ॥ देव, गन्धर्व और नाग कन्याएँ रावण को चारों ओर से घेरकर उस उत्तम भवन में प्रविष्ट हुईं ॥ ४५ ॥-धर्मपरायण काँपती हुई स्थित मिथिलाकुमारी सीता को फटकार कर तथा उसे वहीं छोड़ कर काम के वेग से मोहित वह अपने दीप्तिमान् भवन में प्रविष्ट हुआ ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वाल्मिकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'दो मास की अवधि करना' विषयक बाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२२॥

त्रयोविंशः सर्गः

राक्षसीप्ररोचनम्

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संदिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥ १ ॥
निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते । राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥ २ ॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः । परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥ ३ ॥
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः । दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥ ४ ॥
ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥ ५ ॥
प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थो यः प्रजापतिः । मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥ ६ ॥
पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः । नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥ ७ ॥
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः । तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे । ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
विवर्त्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा । येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जिताः ॥१०॥
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि । ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥११॥
भर्त्सयन्ती तदा घोरमिदं वचनमब्रवीत् । वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥१२॥

तेईसवाँ सर्ग

राक्षसियों का फ़ुसलाना

शत्रुओं को रुलाने वाला राजा रावण सीता से ऐसा कह कर और सब राक्षसियों को आदेश दे कर वहाँ से बाहर चला गया ॥ १ ॥ राक्षसराज के वहाँ से निकल जाने के पश्चात् पुनः अन्तःपुर में चले जाने पर भयङ्कर रूप वाली राक्षसियाँ सीता के पास पहुँचीं ॥ २ ॥ उस के पश्चात् सीता के समीप जा कर क्रोधाविष्ट राक्षसियाँ विदेह की पुत्री सीता से अत्यन्त कठोर वाणी से यह बोलीं ॥ ३ ॥ हे सीता ! पुलस्त्य कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ, महापुरुष रावण की पत्नी बनने को तुम बहुत सम्मान नहीं समझती हो ! ॥ ४ ॥ उसके पश्चात् क्रोध से लाल आँखों वाली एकजटा नामक राक्षसी कृशोदरी सीता को सम्बोधित करके यह वचन बोली ॥ ५ ॥ छ प्रजापतियों में से जो चौथे प्रजापति थे और ब्रह्मा के मानस पुत्र थे, वे पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ पुलस्त्य का मानस पुत्र तेजस्वी महर्षि विश्रवा था जो प्रजापति के समान था ॥ ७ ॥ हे विशाल नेत्रों वाली सीता ! उस विश्रवा का पुत्र शत्रुओं का रुलाने वाला रावण है, तुम राक्षसराज रावण की पत्नी होने योग्य हो ॥८॥ हे सर्वाङ्ग सुन्दरी ! मेरे कहे हुए वचनों को तुम क्यों नहीं मानती हो ? उसके पश्चात् बिल्ली के समान आँखों वाली हरिजटा नामक राक्षसी क्रोध से आँखों को फैला कर यह वचन बोली। जिसने तेंतीस देवताओं और देवराज इन्द्र को जीत लिया है ॥९, १०॥ तुम उस राक्षसराज रावण की पत्नी होने योग्य हो। उसके पश्चात् क्रोध से पूर्ण प्रघसा नामक राक्षसी ॥ ११ ॥ डाँटती हुई यह भयङ्कर वचन बोली—अत्यन्त बलवान् वीर, संग्रामों में पीछे न हटने वाले ॥ १२ ॥ पराक्रमी रावण की पत्नी बनने की

बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे । प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ॥१३॥
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः । समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
अन्तःपुरं समुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः । अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥
असकृद्देवता युद्धे नागगन्धर्वदानवाः । निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥१६॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः । किमद्य राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥१७॥
ततस्तु दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः ॥१८॥
न वाति चासितापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठति । पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ॥१९॥
शैलाश्च सुभ्रूः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति । तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ॥२०॥
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि । साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ॥२१॥
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे राक्षसीप्ररोचनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इच्छा तुम क्यों नहीं करती हो। महाबलवान् राजा बहुत सम्मानित प्रिय पत्नी को त्याग कर ॥ १३ ॥ जो सबसे महान् ऐश्वर्यशालिनी है उसे भी छोड़ कर रावण तुम्हारे समीप जायेगा सहस्रों स्त्रियों से सम्पन्न तथा नाना प्रकार के रत्नों से शोभित। १४ ॥ अन्तःपुर को छोड़ कर रावण तुम्हारे समीप ही जायेगा। एक और विकटा नामक राक्षसी यह वचन बोली ॥ १५ ॥ नाग, गन्धर्व, दानव और देवताओं को जिसने अनेक बार युद्ध स्थल में पराजित किया है, वह तुम्हारे पास आया ॥ १६ ॥ हे नीच! तुम उस सब प्रकार से सम्पन्न, महान्, राक्षसराज रावण की पत्नी बनने की इच्छा क्यों नहीं करती हो? ॥ १७ ॥ उसके पश्चात् दुर्मुखी नामक राक्षसी यह वचन बोली—जिससे भयभीत होकर न तो सूर्य तपता है और जिसके भय के कारण वायु ॥ १८ ॥ नहीं चलती। हे कृष्ण नेत्रों वाली! तुम उसके साथ क्यों नहीं रहती? जिसके भय से वृक्ष फूलों की वर्षा करने लगते हैं ॥ १९ ॥ हे सुन्दर भौंहों वाली! वह जब चाहता है तभी पर्वत और बादल जल छोड़ देते हैं। हे सीता! उस राक्षसराज सम्राट् ॥ २० ॥ रावण की पत्नी बनने के लिए तुम निश्चय क्यों नहीं करती हो? हे देवी सीता! यथार्थ रूप से तुम्हारे लिए कल्याणकारी बात को कहा। हे चारुहासिनी! इस वचन को ग्रहण करो अन्यथा तुम्हारा वध कर दिया जायेगा ॥ २१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'राक्षसियों का फुसलाना' विषयक
तेईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

राक्षसीनिर्भर्त्सनम्

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः । परुषं परुषा नार्य ऊचुस्तां वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥
किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोहरे । महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥
मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे । प्रत्याहर मनो रामान्न त्वं जातु भविष्यसि ॥ ३ ॥
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् । भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ४ ॥
मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने । राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवं त्वमनिन्दिते ॥ ५ ॥
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरथ संगताः । नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतिभाति वः ॥ ७ ॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ८ ॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः । तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥
यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति । अरुन्धती वसिष्ठं च रोहणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा । सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा । नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥१२॥

चौबीसवां सर्ग

राक्षसियों की भर्त्सना

उसके पश्चात् वे सब दुष्ट राक्षसी-नारियां सीता से यह कठोर वाक्य बोलीं ॥ १ ॥ हे सीता ! तुम सब प्राणियों के लिए मनोहारी अत्यन्त मूल्यवान् शय्याओं से युक्त अन्तःपुर में रहने की स्वीकृति क्यों नहीं देती हो ? ॥ २ ॥ मानुषी होने के कारण तुम मानुष (राम) की भार्या बनना ही अधिक सम्मान जनक समझती हो । राग से अपने मन को हटाओ अन्यथा तुम जीवित न रह सकोगी ॥ ३ ॥ तीनों लोकों के धन का उपभोग करने वाले राक्षसराज रावण को अपना पति स्वीकार करके आनन्द पूर्वक विहार करो ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! तुम मनुष्य की वंशज होने के कारण मनुष्यजात रामचन्द्र की कामना करती हो । हे प्रशंसित सीता ! तुम राज्य से पृथक् हुए असफल मनोरथ तथा व्याकुल रामचन्द्र को चाहती हो ॥ ५ ॥ कमलनयनी सीता राक्षसियों की बात सुनकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से यह वचन बोली ॥ ६ ॥ इकट्ठी होकर तुम सब जो यह लोक विरुद्ध बात मुझसे कह रही हो, तुम्हारी यह पापयुक्त बात मेरे मन में नहीं बैठती ॥ ७ ॥ मनुष्य से उत्पन्न स्त्री राक्षस की पत्नी नहीं हो सकती । चाहे तुम सब मुझे खा जाओ, किन्तु मैं तुम्हारी बात का नहीं मानूंगी ॥ ८ ॥ चाहे दीन हो या राज्य से च्युत हो, मेरे जो पति हैं, वे ही मेरे गुरु हैं । उनके प्रति मैं सदा वैसी ही अनुरागयुक्त हूँ जैसी सूर्य के प्रति सुवर्चला ॥ ९ ॥ जैसे शची महोदया इन्द्र के समीप उपस्थित होती हैं, अरुन्धती वसिष्ठ के तथा रोहणी चन्द्रमा के प्रति अनुरक्त है ॥ १० ॥ जैसे लोपामुद्रा अगस्त्य के, सुकन्या च्यवन के, सावित्री सत्यवान् के, श्रीमती कपिल के ॥ ११ ॥ मदयन्ती सौदास के, केशिनी सगर के और जैसे भीम की पुत्री दमयन्ती नल के प्रति अनुरक्त थी ॥ १२ ॥ वैसे ही

तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता । सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।।१३।।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ।।
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे । सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ।।१४।।
तामभिक्रम्य संक्रुद्धा वेपमानां समन्ततः । भृशं संलिलिहुर्दीप्तान् प्रलम्बान् दशनच्छदान् ।।१५।।
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् । नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ।।१६।।
संभर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरानना । सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ।।१७।।
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता । अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ।।१८।।
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरधारिणीम् । भर्त्सयांचक्रिरे सीतां राक्षस्यस्तां समन्ततः ।।१९।।
ततस्तां विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना । अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ।।२०।।
सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहो निदर्शितः । सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ।।२१।।
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः । ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवत्याः कुरु मैथिलि ।।२२।।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् । विक्रान्तं रूपवन्तं च सुरेशमिव वासवम् ।।२३।।
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियदर्शनम् । मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ।।२४।।
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता । अद्य प्रभृति सर्वेषां लोकानामीश्वरी भव ।।२५।।
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शचीवेन्द्रस्य शोभने । किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ।।२६।।

मैं इक्ष्वाकुकुल में श्रेष्ठ अपने पति रामचन्द्र के प्रति अनुरक्त हूं। सीता के वचन को सुनकर क्रोध से पूर्ण राक्षसियाँ रावण से प्रेरणा पाकर कठोर वाक्यों द्वारा भर्त्सना करने लगीं ।। १३ ।। शीशम के वृक्ष पर मौन बैठे हुए हनुमान् ने सीता की भर्त्सना करती हुई उन राक्षसियों की बात को सुना ।। १४ ।। कांपती हुई सीता को चारों ओर से घेर कर वे क्रुद्ध राक्षसियां अपने लम्बे चमकदार ओठों को पुनः पुनः चाटने लगीं ।। १५ ।। अत्यन्त क्रुद्ध वे राक्षसियां कुल्हाड़ों को लेकर बोलीं–यह राक्षसराज रावण को पति के रूप में पाने योग्य नहीं है ।। १६ ।। भयंकर राक्षसियों के द्वारा भर्त्सित होती हुई वह सुमुखी सीता आंसुओं को पोंछती हुई उस शीशम के वृक्ष के पास पहुँची ।। १७ ।। पश्चात् राक्षसियों से घिरी हुई शोक से व्याकुल विशाल नेत्रों वाली सीता उस शीशम के वृक्ष के पास जाकर बैठ गई ।। १८ ।। उस दुर्बल, दीनमुख वाली, मलिन वस्त्रों को धारण करने वाली सीता को राक्षसियां चारों ओर से फटकार रही थीं ।।१९।। उसके बाद भयंकर आकार वाली, पिचके पेटवाली, क्रूर, अत्यन्त क्रुद्ध विनता नामक राक्षसी बोली ।। २० ।। हे भद्र सीता ! अब तक तुमने पति का प्रेम पर्याप्त प्रदर्शित किया है, परन्तु सर्वत्र अति करने से दुःख उत्पन्न होता है ।। २१ ।। हे मिथिलेश कुमारी ! तुम्हारा कल्याण हो, तुमने मानव विधि के अनुकूल कार्य किया है, अतः मैं तुमसे प्रसन्न हूं, परन्तु मेरे कल्याणकारी वचन को भी तो सुनो ।। २२ ।। सारे राक्षसों के स्वामी, देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी और रूपवान् रावण को पति के रूप में स्वीकार करो ।। २३ ।। मनुज दरिद्र रामचन्द्र को छोड़ कर चतुर, त्यागशील तथा सबको प्रिय दिखाई देने वाले रावण का आश्रय लो ।। २४ ।। हे विदेह-कुमारी ! तुम आज से दिव्य अङ्गराग से युक्त तथा दिव्य आभूषणों से अलंकृत सारी प्रजा की स्वामिनी बनो ।। २५ ।। जैसे अग्नि की स्वाहा तथा इन्द्र की शची पत्नी है, हे सुन्दरी ! वैसे ही तुम रावण की पत्नी बनो। हे सीता ! अल्पायु तथा दरिद्र राम से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? ।। २६ ।। यदि

एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि । अस्मिन् मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ॥२७॥
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा । अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य गर्जती ॥२८॥
बहून्यप्रियरूपाणि वचनानि सुदुर्मते । अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ॥२९॥
न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरःसरम् ॥
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् । रावणान्तःपुरं घोरं प्रविष्टा चासि मैथिलि ॥३०॥
रावणस्य गृहे रुद्धामस्माभिस्तु सुरक्षिताम् । न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात्पुरंदरः ॥३१॥
कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि । अलमश्रुप्रपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ॥३२॥
भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजैतां नित्यदैन्यताम् । सीते राक्षसराजेन सह क्रीड यथासुखम् ॥३३॥
जानासि हि यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् । यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि ॥३४॥
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च । सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ॥३५॥
स्त्रीसहस्राणि ते सप्त वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि । रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥३६॥
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि । यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि ॥३७॥
ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रोधमूर्छिता । भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥३८॥
इमां हरिणलोलाक्षीं त्रासोत्कम्पिपयोधराम् । रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौहृदो मे महानभूत् ॥३९॥
यकृत्प्लीहमथोत्पीडं हृदयं च सबन्धनम् । आन्त्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ॥४०॥

तुम मेरे कहे हुए इस वचन को नहीं करोगी तो इसी क्षण हम सब तुमको खा जायेंगी ॥ २७ ॥ लम्बे स्तनों वाली अन्य एक विकटा नामक राक्षसी क्रुद्ध होकर सीता की ओर मुट्ठी उठाकर गर्जती हुई बोली ॥ २८ ॥ हे दुर्मती सीता ! दया और मृदुता के कारण तुम्हारे बहुत से कठोर वचनों को सह लिया गया है। किन्तु तुम हितकारी और सामयिक वचनों को नहीं मान रही हो ॥ २९ ॥ हे मैथिली ! तुम समुद्र के पार लाई गई हो और अन्य किसी के द्वारा दुर्गमनीय भीषण रावण के अन्तःपुर में रखी गई हो ॥ ३० ॥ रावण के भवन में अवरुद्ध तथा हमारे द्वारा सुरक्षित तुमको साक्षात् इन्द्र भी नहीं बचा सकते ॥ ३१ ॥ हे मिथिला कुमारी ! हित की बात कहने वाली मेरी बात को करो, आँसू बहाना बन्द करो और अनर्थक शोक को छोड़ दो ॥ ३२ ॥ हे सीता ! प्रीति और आनन्द का सेवन करो, इस दीनता को त्याग दो, राक्षसराज रावण के साथ आनन्द पूर्वक विहार करो ॥ ३३ ॥ जैसा कि तुम जानती हो, स्त्रियों की युवावस्था अल्पकालिक है। जब तक तुम्हारी यह अवस्था व्यतीत न हो तब तक आनन्द मनाओ ॥ ३४ ॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली सीता। राक्षसराज रावण के साथ रमणीय उद्यानों, पर्वतों और उपवनों में विहार करो ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे अधीन सात हजार स्त्रियां रहेंगी, सारे राक्षसों के स्वामी रावण को पति रूप में स्वीकार करो । ३६ ॥ हे मैथिली ! यदि तुम मेरे कहे हुए वचन को नहीं करोगी तो मैं तुम्हारे हृदय को फाड़कर खा जाऊँगी ॥ ३७ ॥ इसके पश्चात् क्रोध से उन्मत्त चण्डोदरी नामक राक्षसी अपने विशाल शूल को घुमाती हुई यह वचन बोली ॥ ३८ ॥ हरिण के समान चञ्चल नेत्रों वाली भय से कांपते हुए वक्षस्थल वाली रावण के द्वारा अपहृत इसको देखकर मुझे महान दोहद उत्पन्न हो गया है ॥ ३९ ॥ यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), नाड़ी जाल सहित हृदय, सिर तथा आंतों को भी खाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा है ॥४०॥ इसके पश्चात् प्रघसा नाम की राक्षसी बोली—इस दुष्टा के कण्ठ को दबा दो, तुम

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयाम किमास्यते ॥४१॥
निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह । नात्र कश्चन संदेहः खादतेति स वक्ष्यति ॥४२॥
ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । विशस्येमां ततः सर्वाः समान् कुरुत पिण्डकान् ॥
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते । पेयमानीयतां क्षिप्रं लेह्यमुच्चावचं बहु ॥४४॥
ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । अजामुख्या यदुक्तं हि तदेव मम रोचते ॥४५॥
सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी । मानुषं मांसमास्वाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ॥४६॥
एवं संभर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा । राक्षसीभिः सुघोराभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे राक्षसीनिर्भर्त्सनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः

सीतानिर्वेदः

तथा तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु । राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥ १ ॥
एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी । उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

सब क्यों बैठी हो ? ॥ ४१ ॥ उसके पश्चात् राजा के सामने निवेदन करें कि यह मनुष्य से उत्पन्न सीता तो मर गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कहेगा, उसको खा जाओ ॥ ४२ ॥ तदनन्तर अजामुखी नामक राक्षसी बोली—इसको मारकर सारी राक्षसियाँ समान खण्ड कर लें ॥ ४३ ॥ उसके बाद सब बांट लें, मुझे विवाद अच्छा नहीं लगता, शीघ्र ही पान करने योग्य वस्तुएँ तथा बहुत प्रकार की चटनियां ले आओ ॥ ४४ ॥ उसके बाद शूर्पणखा नामक राक्षसी बोली, अजामुखी ने जो कहा है वही मुझे रुचता है ॥ ४५ ॥ सारे शोकों को दूर करनेवाली सुरा को शीघ्र लाओ। मनुष्य के मांस को खाकर हम सब भद्रकाली देवी के पास नृत्य करें ॥ ४६ ॥ भयंकर राक्षसियों से इस प्रकार भर्त्सना की जाती हुई देव कन्या के समान वह सीता धैर्य को त्याग कर रोने लगी ॥ ४७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'राक्षसियों की भर्त्सना' विषयक
चौबीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२४॥

पच्चीसवां सर्ग

सीता का विलाप

अत्यन्त कठोर और मर्मभेदी वचनों को बोलती हुई उन दुष्ट राक्षसियों की बातों को सुन कर जानकी रोने लगी ॥ १ ॥ राक्षसियों के ऐसा कहने पर अत्यन्त भयभीत मनस्विनी सीता अश्रुओं के कारण गद्गद वाणी से बोली ॥ २ ॥ मनुष्य से उत्पन्न स्त्री राक्षस की पत्नी नहीं हो सकती, तुम सब इच्छानुसार मुझे

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ३ ॥
सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा । न शर्म लेभे दुःखार्ता रावणेन च तर्जिता ॥ ४ ॥
वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः । वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ ५ ॥
सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् । चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ ६ ॥
सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः । चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥ ७ ॥
सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा । राक्षसीनां भयत्रस्ता विषण्णवदनाभवत् ॥ ८ ॥
तस्याः सा दीर्घविपुला वेपन्त्या सीतया तदा । ददृशे कम्पिनी वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥ ९ ॥
सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता शोकोपहतचेतना । आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप ह ॥१०॥
हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च । हा श्वश्रु मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥११॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः । अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥१२॥
यत्राहमेवं क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता । जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥१३॥
एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् । समुद्रमध्ये नौः पूर्णा , वायुवेगैरिवाहता ॥१४॥
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता । सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥१५॥
तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् । धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥१६॥
सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना । तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवितम् ॥१७॥
कीदृशं तु मया पापं पुरा जन्मान्तरे कृतम् । येनेदं प्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणम् ॥१८॥

खा जाओ परन्तु मैं तुम्हारे वचन को नहीं करूँगी ॥ ३ ॥ राक्षसियों के मध्य में गई हुई देवकन्या के समान, दुःख से पूर्ण तथा रावण के द्वारा तर्जित उस सीता ने सुख नहीं प्राप्त किया ॥ ४ ॥ वन में समूह से पृथक् हुई भेड़ियों से भयभीत हरिणी के समान अपने ही अंगों में सिमटती हुई सी सीता अत्यधिक काँप रही थी ॥ ५ ॥ अशोक वृक्ष की एक विशाल पुष्पित शाखा का सहारा लेकर शोक से उद्विग्न मन वाली वह सीता पति के विषय में सोचने लगी ॥ ६ ॥ आँखों से प्रवाहित होने वाले अश्रुओं के द्वारा अपने विशाल वक्षस्थल को नहलाती हुई, चिन्ता में डूबी हुई वह सीता शोक के अन्त को न पा सकी ॥ ७ ॥ वह काँपती हुई केले के समान गिर पड़ी, राक्षसियों के भय से उसका मुख उदास हो गया ॥ ८ ॥ काँपती हुई उस सीता की वह लम्बी और विशाल कम्पन करती हुई वेणी (चोटी) सरकती हुई नागिन के समान दीख पड़ती थी ॥ ९ ॥ वह सीता दीर्घ श्वास लेती हुई दुःख से पूर्ण शोक से आहत चित्त वाली आँसू बहाने लगी तथा विलाप करने लगी ॥ १० ॥ हा राम, हा लक्ष्मण, हा सास कौसल्या, हा सुमित्रा ॥ ११ ॥ पण्डितों के द्वारा कही हुई यह लोकोक्ति सत्य ही है कि स्त्री अथवा पुरुष की मृत्यु अकाल में कठिन है ॥ १२ ॥ क्योंकि इस प्रकार क्रूर राक्षसियों से पीड़ित होकर दुःखित रामचन्द्र से रहित मैं मुहूर्त भर भी जी रही हूँ ॥ १३ ॥ मैं अल्प सुकर्मों वाली दीन अनाथ के समान उसी प्रकार नष्ट हो जाऊँगी जिस प्रकार समुद्र में वायु के वेगों से ताड़ित, द्रव्यों से परिपूर्ण नौका नष्ट हो जाती है ॥ १४ ॥ राक्षसियों के चंगुल में फँसी हुई पति को न देखती हुई मैं उसी प्रकार से शोक से पीड़ित हो रही हूँ जैसे जल से प्रताड़ित तट ॥ १५ ॥ जो लोग कमलनयन, सिंह के समान पराक्रमी, कृतज्ञ, मधुरभाषी मेरे स्वामी का दर्शन करते हैं वे धन्य हैं ॥ १६ ॥ अपने पराक्रमी स्वरूप को जानने वाले रामचन्द्र से विहीन मेरा जीवन उसी प्रकार सर्वथा दुर्लभ है जिस प्रकार तीखे विष को खाकर जीवन दुर्लभ हो जाता है ॥ १७ ॥ मैंने पूर्व जन्म में कैसा पाप किया था जिसके कारण मुझे यह दारुण दुःख प्राप्त हुआ है ॥ १८ ॥ महान् शोक से घिरी

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता । राक्षसीभिश्च रक्ष्यन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥१९॥
धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् । न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीतानिर्वेदो नाम पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

प्राणत्यागसम्प्रधारणम्

प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवन्ती जनकात्मजा । अधोमुखमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती । उपावृत्ता किशोरीव विवेष्टन्ती महीतले ॥ २ ॥
राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा । रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ॥ ३ ॥
राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना सुदारुणम् । चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥
न हि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः । वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ॥ ५ ॥
अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् । हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते ॥ ६ ॥
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विनाकृता । मुहूर्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविता ॥ ७ ॥

हुई मैं जीवन को त्यागना चाहती हूं क्योंकि राक्षसियों से रक्षित मैं राम को प्राप्त न कर सकूँगी ॥ १९ ॥ मनुष्य जन्म को धिक्कार है, पराधीनता को भी धिक्कार है कि अपनी इच्छा से जीवन भी नहीं त्यागा जा सकता है ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'सीता का विलाप' विषयक
पचीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

प्राण त्याग का निश्चय

आँसुओं से पूर्ण मुख वाली इस प्रकार बोलती हुई सीता ने नीचे की ओर मुख करके विलाप करना आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥ उन्मत्त, प्रमत्त तथा भ्रान्तचित्त के समान शोक करने लगी और तरुण घोड़ी के समान भूमि पर इधर उधर लोटने लगी ॥ २ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षस के द्वारा छले हुए रामचन्द्र की पत्नी मुझ को रावण बल पूर्वक उठा लाया ॥ ३ ॥ राक्षसियों के चंगुल में फँसी हुई, दारुण भर्त्सना को सहती हुई, दुःख से पूर्ण, चिन्तित मैं जीने के लिए उत्साह नहीं रखती हूँ ॥ ४ ॥ महारथी रामचन्द्र के विना राक्षसियों के मध्य में रहती हुई मुझे न तो भूषणों से प्रयोजन है न धन से, और न ही जीने से ॥ ५ ॥ निश्चय ही मेरा यह हृदय वज्र चूर्ण से निर्मित है अथवा यह अजर अमर है जिससे यह इतने दुःख से भी फट नहीं जाता ॥ ६ ॥ मुझ असती अनार्या को धिक्कार है, जो मैं पापिन रामचन्द्र से रहित होकर मुहूर्त भर भी जीवन को धारण करती हूँ ॥ ७ ॥ दुष्ट रावण को मैं बायें पैर से स्पर्श भी नहीं कर

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् । रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ ८ ॥
प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मना कुलम् । यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥
छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता । रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥१०॥
ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः । सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥११॥
राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश । येनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥१२॥
निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा । समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥१३॥
विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुंगवः । रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते ॥१४॥
कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा । न तु राघवबाणानां गतिरोधीह विद्यते ॥१५॥
किं नु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः । रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां नाभ्यवपद्यते ॥१६॥
इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः । जानन्नपि हि तेजस्वी धर्षणं मर्षयिष्यति ॥१७॥
हृतेति योऽधिगत्वा मां राघवाय निवेदयेत् । गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥१८॥
कृतं कर्म महत्तेन मां तथाभ्यवपद्यता । तिष्ठता रावणद्वन्द्वे वृद्धेनापि जटायुषा ॥१९॥
यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां स राघवः । अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥२०॥
विधमेच्च पुरीं लङ्कां शोषयेच्च महोदधिम् । रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥२१॥
ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे-गृहे । यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः ॥२२॥

सकती फिर इस निन्दित राक्षस की कामना कैसे कर सकती हूँ ॥ ८ ॥ जो अपने दुष्ट स्वभाव के कारण मुझ से प्रार्थना करने की इच्छा करता है वह राक्षस न तो मेरे निषेध का अर्थ ही जानता है न वह अपने स्वरूप को जानता है और न ही अपने कुल को जानता है ॥ ९ ॥ खण्ड खण्ड कर देने पर, फाड़ डालने पर, अग्नि में भून देने पर अथवा दग्ध कर देने पर भी मैं रावण के समीप नहीं उपस्थित हो सकती । अतः तुम्हारे लम्बे प्रलाप से क्या प्रयोजन ? ॥ १० ॥ प्रसिद्ध बुद्धिमान् , कृतज्ञ, दयालु तथा सदाचारी रघुवर रामचन्द्र मेरे भाग्य के क्षीण हो जाने के कारण निर्दय हो गये हैं ऐसी शंका मुझे होती है ॥ ११ ॥ जिसने अकेले ही चौदह हजार राक्षसों को जनस्थान में परास्त किया था वह मेरे पास क्यों नहीं आता ? ॥ १२ ॥ अल्प शक्ति वाले राक्षस रावण ने मुझे रोक रखा है, मेरे पति युद्ध में रावण को मारने में समर्थ हैं ॥ १३ ॥ जिन रामचन्द्र ने दण्डकारण्य में विराध नामक महान् राक्षस को मार डाला, वे अब पास क्यों नहीं आते ? ॥ १४ ॥ यह ठीक है कि समुद्र के बीच में यह लङ्का दुर्गमनीय है, किन्तु रामचन्द्र के बाणों की गति को रोकने वाला यहाँ कोई नहीं है ॥ १५ ॥ क्या कारण है कि महान् पराक्रमी रामचन्द्र राक्षसों के द्वारा अपहृत अपनी प्रिय पत्नी के पास नहीं आते ॥ १६ ॥ मुझे शंका है कि लक्ष्मण के अग्रज रामचन्द्र यहाँ पर स्थित मुझको नहीं जानते हैं क्योंकि जानते हुए भी वे तेजस्वी क्या तिरस्कार को सह सकेंगे ॥१७॥ जो जानकर रामचन्द्र से बताता कि मैं अपहृत कर ली गई हूँ, वह गृध्रकूट का राजा जटायु भी रावण के द्वारा युद्ध में मार डाला गया ॥ १८ ॥ इस वृद्ध जटायु ने मेरी रक्षा करते हुए रावण के साथ युद्ध में स्थित होकर महान् कार्य किया ॥ १९ ॥ यदि रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र मुझे यहाँ वर्तमान जान लें तो वे क्रुद्ध होकर आज ही इस पृथिवी को अपने बाणों से राक्षस रहित कर दें ॥ २० ॥ लंकापुरी को जला डालें, महान् समुद्र को सुखा डालें, नीच रावण के यश और नाम को नष्ट कर डालें ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् पतियों के मर जाने पर राक्षसियाँ वैसे ही रोवें जैसे मैं रोती हूं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ राक्षसों की लंका को

अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद्रामः सलक्ष्मणः । न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥२३॥
चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलसंकुला । अचिरेण तु लङ्केयं श्मशानसदृशी भवेत् ॥२४॥
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येव मनोरथम् । दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्ययः ॥२५॥
यादृशानीह दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि वै । अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥२६॥
नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधमे । शोषं यास्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥२७॥
पुण्योत्सवसमुत्था च नष्टभर्त्री सराक्षसी । भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना ॥२८॥
नूनं राक्षसकन्यानां रुदन्तीनां गृहे गृहे । श्रोष्यामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥२९॥
सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुंगवा । भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥३०॥
यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः । जानीयाद्वर्तमानां हि रावणस्य निवेशने ॥३१॥
अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे । समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥३२॥
स च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुष्टेन वर्तते । अकार्यं ये न जानन्ति नैरृताः पापकारिणः ॥३३॥
अधर्मात्तु महोत्पातो भविष्यति हि सांप्रतम् । नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ॥३४॥
ध्रुवं मां प्रातराशार्थे राक्षसः कल्पयिष्यति । साहं कथं चरिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ॥३५॥
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता । क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥३६॥
नाजानाज्जीवतीं रामः स मां लक्ष्मणपूर्वजः । जानन्तौ तौ न कुर्यातां नोर्व्यां हि मम मार्गणम् ॥
नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः । देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥३८॥

खोज कर लक्ष्मण सहित रामचन्द्र नष्ट कर देंगे, क्योंकि उनके द्वारा दृष्ट शत्रु मुहूर्त भर भी नहीं जी सकता है ॥ २३ ॥ शीघ्र ही यह लंका चिताओं के धूम से पूर्ण मार्गों वाली तथा गिद्धों के समूह से युक्त होकर श्मशान के समान हो जायेगी ॥२४ ॥ शीघ्र ही मैं अपने मनोरथ को प्राप्त करूँगी, तुम सब का यह दुष्टाचरण शास्त्र विरुद्ध प्रतीत होता है ॥ २५ ॥ लङ्का में जिस प्रकार के अशुभ दिखाई पड़ रहे हैं उनसे यह शीघ्र ही शोभा रहित हो जायेगी ॥ २६ ॥ नीच पापी राक्षस रावण के मारे जाने पर निश्चय ही दुर्गमनीय लङ्का उसी प्रकार नाश को प्राप्त हो जायेगी जैसे विधवा नारी ॥ २७ ॥ विशेष उत्सवों से युक्त लङ्का नगरी राजा रावण एवं राक्षसों के मरने पर मृतपति स्त्री के समान हो जायेगी ॥ २८ ॥ निश्चय ही घर घर में राक्षसों की रोती हुई दुःखी कन्याओं के रोदन के शब्द को मैं यहाँ शीघ्र ही सुनूँगी ॥ २९ ॥ यदि लाल नेत्रों वाले पराक्रमी रामचन्द्र यह जान जायें कि मैं रावण के भवन में वर्तमान हूँ तो रामचन्द्र के बाणों से लङ्का दग्ध हो जायेगी, अन्धकार पूर्ण, कान्ति रहित तथा राक्षसों से विहीन हो जायेगी ॥ ३०-३१ ॥ इस क्रूर नीच रावण ने मेरे लिये जिस काल अवधि का निर्देश किया था उसका समय भी आ पहुँचा है ॥ ३२ ॥ दुष्ट रावण के द्वारा विहित मृत्यु का समय अब आ गया है क्योंकि ये पापी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं जानते ॥३३॥ अब अधर्म के कारण महान् उत्पात होगा क्योंकि मांसाहारी ये राक्षस धर्म को नहीं जानते ॥ ३४ ॥ निश्चय ही राक्षस मुझे प्रातराश के लिए काट डालेगा । प्रियदर्शन रामचन्द्र के बिना मैं कैसे रह सकूँगी ॥३५॥ रक्तनेत्र रामचन्द्र को न देखती हुई दुःखिता मैं पति के बिना शीघ्र ही वैवस्वत देव को देखूँगी ॥३६॥ लक्ष्मण सहित रामचन्द्र नहीं जानते कि मैं जीवित हूँ, जानने पर वे दोनों पृथ्वी पर मेरा अन्वेषण न करें, यह हो नहीं सकता ॥ ३७ ॥ निश्चय ही मेरे शोक से लक्ष्मण के बड़े भाई वीर रामचन्द्र भूतल पर अपनी देहको त्याग कर देव लोक को चले गये ॥ ३८ ॥ वे देव, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषिगण धन्य हैं जो मेरे

धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥३९॥
अथवा न हि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः । मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ॥४०॥
दृश्यमाने भवेत्प्रीतिः सौहृदं नास्त्यपश्यतः । नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥४१॥
किं नु मे न गुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो मम । याहं सीदामि रामेण हीना मुख्येन भामिनी ॥४२॥
श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मनः । रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥४३॥
अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशिनौ । भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ संवृत्तौ वनगोचरौ ॥४४॥
अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । छद्मना सादितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४५॥
साहमेवं गते काले मर्तुमिच्छामि सर्वथा । न च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुःखेऽपि वर्तति ॥४६॥
धन्याः खलु महात्मानो मुनयस्त्यक्तकिल्बिषाः । जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥४७॥
प्रियान्न संभवेद्दुःखमप्रियादधिकं भयम् । ताभ्यां हि ये वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥४८॥
साहं त्यक्ता प्रियार्हेण रामेण विदितात्मना । प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्राणत्यागसंप्रधारणं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

स्वामी कमलनयन रामचन्द्र के दर्शन करते हैं ॥ ३९ ॥ अथवा धर्म की कामना करने वाले बुद्धिमान् राजर्षि महात्मा रामचन्द्र को मुझ पत्नी से कोई प्रयोजन नहीं ॥ ४० ॥ दर्शन होने पर प्रेम होता है, न दिखाई देने पर मैत्री नहीं रहती है। परन्तु रामचन्द्र से ऐसी आशा नहीं क्योंकि कृतघ्न लोग ही पूर्व प्रीति को नष्ट कर देते हैं, रामचन्द्र इसे नष्ट नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥ क्या मेरे अन्दर कोई गुण नहीं है अथवा मेरे भाग्य का क्षय हो गया है जो मैं अपने पति रामचन्द्र से रहित होकर दुःखी हूँ ॥ ४२ ॥ श्रेष्ठ चरित्र वाले वीर शत्रुनाशक महात्मा रामचन्द्र से रहित मेरे जीवन की अपेक्षा मृत्यु ही श्रेयस्कर है ॥ ४३ ॥ अथवा शस्त्रों को त्याग कर वन में कन्द मूल फल खाने वाले नरश्रेष्ठ वे दोनों भाई वनचारी हो गये ॥ ४४ ॥ अथवा दुष्टात्मा राक्षसराज रावण ने वीर भाई रामचन्द्र और लक्ष्मण को छल से मार डाला ॥ ४५ ॥ ऐसा समय आ जाने पर अब मैं सर्वथा मरना चाहती हूँ परन्तु इस दुःख में भी मेरी मृत्यु विहित नहीं है ॥ ४६ ॥ पापरहित, जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यशाली महात्मा लोग धन्य हैं जिनके न कोई प्रिय हैं न कोई अप्रिय हैं ॥ ४७ ॥ प्रिय के बिछुड़ने से दुःख नहीं होता अप्रिय के मिलने से भय नहीं होता, अतः इन दोनों से जो पृथक् हैं उन महात्माओं को नमस्कार ॥ ४८ ॥ अपनी शक्ति को जानने वाले प्रिय रामचन्द्र से वियुक्त तथा पापी रावण के वश में गई हुई मैं प्राणों का त्याग कर दूँगी ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'प्राण-त्याग का निश्चय' विषयक छब्बीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

त्रिजटास्वप्नः

इत्युक्ताः सीतया घोरा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः । काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य तरस्विनः ॥ १॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो घोरदर्शनाः । पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् ॥ २ ॥
अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये । राक्षस्यो भक्षयिष्यामो मांसमेतद्यथासुखम् ॥ ३ ॥
सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा संतर्जितां तदा । राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥
आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ । जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥ ५ ॥
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः । राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय च ॥ ६ ॥
एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः । सर्वा एवाब्रुवन् भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः ॥ ७ ॥
कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि । तासां तु वचनं श्रुत्वा राक्षसीनां मुखाच्च्युतम् ॥८॥
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् । गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥
युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः । शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः ॥१०॥
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता । सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतं पर्वतमास्थिता ॥११॥
रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा यथा । राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ॥१२॥

सत्ताईसवां सर्ग

त्रिजटा का स्वप्न

सीता के ऐसा कहने पर क्रोध से पूर्ण कुछ भयंकर राक्षसियाँ वीर रावण से यह वृत्तान्त कहने के लिए चल दीं ॥ १ ॥ इसके पश्चात् भयंकर आकार वाली राक्षसियाँ सीता के पास जाकर पुनः अपने लिए ही अनिष्ट समान अभिप्राय वाले वचन बोलीं ॥ २ ॥ हे अनार्ये, अनिष्ट निश्चय करने वाली सीता ! आज राक्षसियां तुम्हारे मांस को आनन्द पूर्वक खायेंगी ॥ ३ ॥ उन दुष्ट राक्षसियों द्वारा तिरस्कृत होती हुई सीता को देखकर त्रिजटा नामक एक सोकर उठो हुई वृद्ध राक्षसी यह वचन बोली ॥ ४ ॥ हे दुष्ट राक्षसियो ! तुम अपने को खा जाओ, तुम जनक की प्रिय पुत्री तथा दशरथ की पुत्रवधू को नहीं खा सकोगी ॥ ५ ॥ आज मैंने एक भयंकर तथा रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है जिससे प्रतीत होता है कि राक्षसों का नाश होगा और इसके पति की विजय होगी ॥ ६ ॥ त्रिजटा के द्वारा क्रोध से मूढ़ सब राक्षसियाँ भयभीत होकर उस त्रिजटा से यह वचन बोलीं ॥ ७ ॥ तुमने रात्रि में कैसा स्वप्न देखा, कहो । उन राक्षसियों के मुख से निकले हुए इस वचन को सुनकर ॥ ८ ॥ त्रिजटा ने स्वप्न में देखे हुए वृत्तान्त को कहना आरम्भ किया—हाथी के दाँत से निर्मित अन्तरिक्षचारी दिव्य सहस्र हंसों से युक्त एक पालकी में बैठकर श्वेत माला तथा वस्त्रों को धारण करके स्वयं रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ आ गये हैं ॥ ९, १० ॥ आज स्वप्न में मैंने सीता को सफेद वस्त्रों से आच्छादित तथा सागर से घिरे हुए सफेद पर्वत पर स्थित देखा ॥११॥ रामचन्द्र के समीप सीता वैसी ही प्रतीत हो रही थी जैसे सूर्य के समीप सूर्य प्रभा । मैंने देखा कि रामचन्द्र चार दाँत वाले विशाल ॥ १२ ॥ पर्वत के समान दीर्घकाय हाथी पर लक्ष्मण के साथ विराज रहे हैं । उसके पश्चात् वे

आरूढः शैलसंकाशं चकास सहलक्ष्मणः । ततस्तौ नरशार्दूलौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥१३॥
शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ । ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ॥१४॥
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता । भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ॥१५॥
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टौ पाणिना परिमार्जती । ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः ॥१६॥
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ॥
इहोपयातः काकुत्स्थः सीतया सह भार्यया । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विमाने पुष्पके स्थितः ॥१७॥
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः । आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् ॥१८॥
उत्तरां दिशमालोक्य जगाम पुरुषोत्तमः । रावणश्च मया दृष्टः क्षितौ तैलसमुक्षितः ॥१९॥
रक्तवासाः पिबन् मत्तः करवीरकृतस्रजः । विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितो भुवि ॥२०॥
कृष्यमाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डः कृष्णाम्बरः पुनः । रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ॥२१॥
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन् भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः । गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः ॥२२॥
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः । पतितोऽवाक्शिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः ॥२३॥
सहसोत्थाय संभ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः । उन्मत्त इव दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन् मुहुः ॥२४॥
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् । मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ॥२५॥
कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी । काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ॥२६॥
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः । रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ॥२७॥

दोनों नरसिंह अपने तेज से देदीप्यमान ॥१३॥ सफेद माला और वस्त्रों को धारण किये हुये जानकी के समीप उपस्थित हुए, तदनन्तर उस पर्वत के ऊपर आकाश में स्थित हाथी के ॥ १४ ॥ जो स्वामी के द्वारा संचालित था उस हाथी के कन्धे पर सीता बैठ गई। उसके बाद पति की गोद से निकल कर कमलनयनी सीता को ॥ १५ ॥ मैंने सूर्य और चन्द्र को हाथ से पोंछते हुए देखा। उसके बाद उन दोनों कुमारों के द्वारा अधिष्ठित वह उत्तम हाथी बड़ी २ आँखों वाली सीता के सहित लङ्का के ऊपर स्थित हो गया ॥ १६ ॥ पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान में बैठे हुए रामचन्द्र यहाँ आये ॥ १७ ॥ शुक्ल माला और वस्त्र धारण किए हुए लक्ष्मण सहित रामचन्द्र सूर्य के समान दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़कर आये ॥ १८ ॥ पुरुष श्रेष्ठ रामचन्द्र उत्तर दिशा की ओर चले गये, और रावण को मैंने पृथिवी पर तेल से नहाया हुआ देखा ॥ १९ ॥ लाल वस्त्र पहने हुए और पीकर उन्मत्त, कनेर के पुष्पों की माला पहने हुए रावण आज पुष्पक विमान से भूमि पर गिर पड़ा ॥ २० ॥ उसके पश्चात् मैंने देखा कि मुंडे सिर काले कपड़े पहने हुए रावण को एक स्त्री खींच रही है। उसके रथ में गधे जुड़े हुए थे और वह लाल माला तथा अनुलेपन से युक्त था ॥ २१ ॥ तेल को पीता हुआ, हंसता हुआ, नाचता हुआ, भ्रान्त चित्त तथा व्याकुल रावण शीघ्र ही गधे से दक्षिण दिशा की ओर चला गया ॥ २२ ॥ पुनः मैंने देखा कि राक्षसराज रावण भयभीत होकर गधे की पीठ से औंधे मुँह भूमि पर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ घबड़ाया हुआ मदोन्मत्त, भयभीत तथा नग्न रावण सहसा उठकर बार-बार दुर्वाक्यों को बोलने लगा ॥ २४ ॥ असहनीय दुर्गन्ध वाले नरक के समान गहन अन्धकार से युक्त मलपङ्क में प्रवेश करके वह रावण शीघ्र ही उसमें डूब गया ॥ २५ ॥ लाल वस्त्रों वाली, काली, पङ्क से युक्त शरीर वाली एक स्त्री रावण को गले में बांधकर दक्षिण दिशा की ओर खींच रही थी ॥ २६ ॥ इसी प्रकार मैंने देखा कि कुम्भकर्ण राक्षस तथा रावण के सब पुत्र मुण्डित तथा तेल से लिप्त हैं ॥ २७ ॥

वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् । उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥२८॥
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥२९॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नृत्तगीतैरलंकृतः । आरुह्य शैलसंकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥३०॥
चतुर्दन्तं गजं दिव्यमास्ते तत्र विभीषणः । चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ॥३१॥
समाजश्च मया दृष्टो गीतवादित्रनिःस्वनः । पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ॥३२॥
लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा । सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ॥३३॥
लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता । दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना ॥३४॥
पीत्वा तैलं प्रनृत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः । लङ्कायां भस्मरूक्षायां प्रविष्टा राक्षसस्त्रियः ॥३५॥
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुंगवाः । रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयह्रदे ॥३६॥
अपगच्छत नश्यध्वं सीतामाप स राघवः । घातयेत्परमामर्षी सर्वैः सार्धं हि राक्षसैः ॥३७॥
प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् । भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ॥३८॥
तदलं क्रूरवाक्यैर्वः सान्त्वमेवाभिधीयताम् । अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥३९॥
यस्यामेवंविधः स्वप्नो दुःखितायां प्रदृश्यते । सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४०॥
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया । राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥४१॥
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा । अलमेषा परित्रातुं राक्षसीर्महतो भयात् ॥४२॥

रावण सूअर पर चढ़कर, मेघनाद सूँस पर चढ़कर तथा कुम्भकर्ण ऊँट पर चढ़कर दक्षिण दिशा को चला गया ॥ २८ ॥ मैंने वहां एकमात्र विभीषण को ही देखा जो सफेद छत्र धारण किये हुए था, सफेद रंग की माला और वस्त्र पहने हुए था तथा सफेद सुगन्धित पदार्थ से अनुलिप्त था ॥ २९ ॥ शंख तथा दुन्दुभि के शब्दों से और नृत्य गान से सुभूषित, पर्वत के समान विशाल काय, मेघ के समान गर्जने वाले चार दाँतों वाले दिव्य हाथी पर विभीषण बैठे हुए थे और वे चार मन्त्रियों के साथ आकाश में स्थित थे ॥३०–३१॥ लाल वस्त्रों वाले तथा लाल मालाओं वाले तेल आदि पीते हुए राक्षसों के गाने बजाने के शब्दों से युक्त एक बड़े समूह को मैंने देखा ॥ ३२ ॥ घोड़े, रथ और हाथियों सहित इस रमणीय लङ्कापुरी को मैंने प्रधान द्वार तथा तोरण से वियुक्त होकर सागर में गिरते हुए देखा ॥ ३३ ॥ रावण के द्वारा रक्षित इस लङ्का को मैंने स्वप्न में रामचन्द्र के दूत वीर हनुमान् के द्वारा जलाये जाते हुए देखा ॥ ३४ ॥ तेल को पीकर नृत्य करती हुई, हँसती हुई, घोर शब्द करती हुई राक्षसस्त्रियाँ भस्मीभूत लङ्का में प्रविष्ट हुई ॥ ३५ ॥ ये सब कुम्भकर्ण आदि महान् राक्षस लालवस्त्रों को धारण करके गोबर के तालाब में प्रविष्ट हुए ॥ ३६ ॥ हे राक्षसियो ! यहाँ से दूर हट जाओ, अदृश्य हो जाओ। रामचन्द्र सीता को प्राप्त करेंगे, अत्यन्त क्रुद्ध वे सारे राक्षसों के साथ तुमको मार डालेंगे ॥ ३७ ॥ प्रिय, आदृत तथा वन में भी साथ रहने वाली अपनी पत्नी की भर्त्सना या तर्जना को रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र सहन नहीं कर सकेंगे ॥ ३८ ॥ तो हम कठोर वचनों का प्रयोग बन्द कर दें, सान्त्वना के शब्दों का प्रयोग करें और विदेह कुमारी सीता से याचना करें, यही मुझे रुचिकर प्रतीत होता है ॥ ३९ ॥ जिस दुःखित सीता के विषय में इस प्रकार का स्वप्न दिखाई दिया है वह विभिन्न दुःखों से छूट कर अपने श्रेष्ठ पति को प्राप्त करेगी ॥ ४० ॥ हे राक्षसियो ! भर्त्सित होने पर भी सीता से प्रार्थना करो, अन्य कटुवचन कहने की इच्छा से क्या प्रयोजन, क्योंकि रामचन्द्र से राक्षसों को घोर संकट उत्पन्न हो गया है ॥ ४१ ॥ हमारी नम्रता से प्रसन्न होकर ही जनकपुत्री मिथिला कुमारी यह जानकी राक्षसियों को घोर संकट से बचाने में समर्थ है ॥ ४२ ॥ इस

अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये। विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥४३॥
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्। अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥४४॥
अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम्। राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥४५॥
निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम्। दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥४६॥
ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः। अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥४७॥
करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः। वेपमानः सूचयति राघवं पुरतः स्थितम् ॥४८॥

पक्षी च शाखानिलयः प्रहृष्टः पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी।
सुस्वागतां वाचमुदीरयाणः पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥ ४९ ॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता। अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिजटास्वप्नो नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः

उद्बन्धनव्यवसायः

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य तद्रावणस्याप्रियमप्रियार्ता।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥ १ ॥

विशाल नेत्रों वाली सीता के अङ्गों में स्वल्प भी कोई विकृत रूपवाला अनिष्ट सूचक चिह्न नहीं दिखाई पड़ता है ॥ ४३ ॥ दुःख के अयोग्य स्वप्न में आकाशस्थ विमान में बैठी हुई इस देवी के सम्मुख उपस्थित यह दुःख चन्द्रमा पर पड़ने वाली छाया के समान क्षणिक है ऐसा मैं समझती हूँ ॥ ४४ ॥ मैं सीता के प्रयोजन की सिद्धि को उपस्थित होते हुए देख रही हूँ। राक्षसराज के विनाश और रघुवर की विजय को देख रही हूँ ॥ ४५ ॥ इसके अत्यन्त प्रिय को सुनने के लिए हेतुभूत कमल-पत्र के समान विशाल नेत्र फड़कते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस चतुर सीता का बायाँ हाथ कुछ रोमाञ्चित हो गया है और अकस्मात् ही कांपने लगा है ॥ ४७ ॥ हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर तथा कम्पन करती हुई बायीं जंघा समक्ष उपस्थित रामचन्द्र को सूचित करती है ॥ ४८ ॥ अपने शाखास्थ घोंसले में बैठा हुआ प्रसन्न पक्षी पुनः पुनः उत्तम कोमल वचनों को बोल रहा है। कल्याण प्राप्ति के वचनों को प्रसन्नता पूर्वक बोलता हुआ यह पक्षी सुख प्राप्ति के लिए सीता को प्रेरित सा कर रहा है ॥ ४९ ॥ तब वह लज्जाशील सुन्दरी सीता पति की विजय से प्रसन्न होकर बोली, यदि यह तथ्य हो तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'त्रिजटा का स्वप्न' विषयक सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां सर्ग

आत्मघात का निर्णय

रामचन्द्र के वियोग से संतप्त सीता राक्षसेन्द्र रावण के मर्मच्छिद् अप्रिय बातों को स्मरण करके इस प्रकार कम्पायमान, तथा भयभीत हो गई, जिस प्रकार सिंह से आक्रान्त हाथी की बच्ची भयत्रस्त हो जाती है ॥ १ ॥ स्वभाव से भीरु सीता, राक्षसियों के मध्य में घिरी हुई रावण के द्वारा, बार-बार धमकाए

सा राक्षसीमध्यगता च भीरुर्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता ॥ २ ॥

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना जीवामि किंचित्क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥

सुखाद्विहीनं बहुदुःखपूर्णमिदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।
विदीर्यते यन्न सहस्रधाद्य वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥

नैवास्ति दोषो मम नूनमत्र वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
भावं न चास्याहमनुप्रदातुमलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥ ५ ॥

नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ।
तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ॥ ६ ॥

दुःखं बतेदं मम दुःखिताया मासौ चिरायाधिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य तथा निशान्ते राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे हा राममातः सह मे जनन्या ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या महार्णवे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात्तौ सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥ ९ ॥

जाने पर, जनहीन वन में त्यक्त कन्या के समान विलाप करने लगी ॥ २ ॥ महात्मा लोग जो यह बात कहते हैं कि अकाल में मृत्यु नहीं होती है, वह सर्वथा सत्य है कि जो मैं मन्दभाग्य इस प्रकार की मर्मच्छिद् बातों को सुनकर क्षण भी जी रही हूँ ॥ ३ ॥ सुखों से हीन तथा अनेकों दुःखों से परिपूर्ण, मेरा यह हृदय निश्चय ही अत्यन्त कठोर है, क्योंकि वज्राघात से पर्वतशिखर की तरह मेरा यह हृदय हजारों टुकड़े क्यों नहीं हो जाता ॥ ४ ॥ इस अप्रियदर्शी रावण के द्वारा वधयोग्या मैं, आत्मघात करने पर भी दोष-मुक्त हूँ । मैं अपने अन्तःकरण का प्रेम इस रावण को उसी प्रकार नहीं दे सकती, जिस प्रकार अनधिकारी व्यक्ति को वेदज्ञान नहीं दिया जाता ॥५॥ लोकनाथ उस रामचन्द्र के न आने पर यह अनार्य राक्षसराज रावण निश्चय ही अपने तीखे बाणों से अतिशीघ्र ही मेरे अङ्गों को उसी प्रकार काट देगा जिस प्रकार शल्यकर्ता चिकित्सक विकृत गर्भ को टुकड़े २ काट देता है ॥ ६ ॥ यह अत्यन्त दुःख की बात है कि मुझ दुःखिनी के लिये जो दो मास जीवन के लिये दिया गया था, वह समाप्त हो चला है । यह मेरे लिये उसी प्रकार दुःख दे रहा है, जिस प्रकार राजा के द्वारा प्रातःकाल वध्य प्राणी को रात्रि की समाप्ति पर दुःख होता है ॥ ७ ॥ हा रामचन्द्र ! हा लक्ष्मण ! हा देवी सुमित्रा ! हा रामचन्द्र की माता कौशल्या ! हा मेरी जन्मदात्री जननी ! मन्दभाग्या मैं आज उसी प्रकार मर रही हूँ, जिस प्रकार महासागर में महावायु वेग के झोंके से नौका डूब जाती है ॥ ८ ॥ मृगरूपधारी उस जन्तु के द्वारा अत्यन्त वेगवान् वे दोनों राजकुमार निश्चय ही इस प्रकार मेरे कारण मार दिये गए हैं जिस प्रकार दो सिंह वज्रपात से मार दिये जाते हैं ॥ ९ ॥ निश्चय ही वह

नूनं स कालो मृगरूपधारी मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रं विससर्ज मूढा रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च ॥१०॥
हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥११॥
अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥१२॥
मोघो हि धर्मश्चरितो मयायं तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा हीना त्वया संगमने निराशा ॥१३॥
पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिस्त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥१४॥
अहं तु राम त्वयि जातकामा चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपोव्रतं च त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्या ॥१५॥
सा जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं विषेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विषस्य दाता न हि मेऽस्ति कश्चिच्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य ॥१६॥
शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य सीताथ वेण्युद्ग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रमहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥१७॥

मृगरूपधारी जन्तु मेरे लिए काल के समान था, अथवा मुझ मन्दभाग्या के लिये वह काल अवश्यमेव दुखःदायी था, जब मृग को देखकर मैं अत्यन्त लोलुप हो गई और मैंने राम, लक्ष्मण आर्य वीरों को उस मृग के पीछे दौड़ाया ॥ १० ॥ हा सत्यव्रती दीर्घ भुजा वाले रामचन्द्र ! हा जीवमात्र के हितकारी, पूर्ण चन्द्रमा के समान आनन्द वाले मेरे प्रिय रामचन्द्र ! मैं राक्षसों के द्वारा वध की जाने वाली हूँ, आप इसे नहीं जानते । ११ ॥ यह मेरी अनन्यभाव से की हुई उपासना, क्षमा, भूमिशयन, धर्म के लिये नियमादि का पालन, तथा इस प्रकार का कठोर पातिव्रत धर्म यह सब कुछ आज उसी प्रकार विफल दिखाई दे रहा है, जिस प्रकार कृतघ्न मनुष्यों के लिये उसके संपूर्ण पुण्यकर्म विफल हो जाते हैं ॥ १२ ॥ आपके वियोग से तथा न मिलने की आशा से अत्यन्त कृश तथा कान्तिरहित जो मैं आपको नहीं देख रही हूँ, इसलिये मेरा यह धर्माचरण सब व्यर्थ ही हुआ, तथा एक पत्नीव्रती रामचन्द्र की मैं धर्मपत्नी हूँ, यह अभिमान भी मेरा व्यर्थ हो हुआ ॥ १३ ॥ पिता की आज्ञा से नियमादि का पालन करके अपने वनवासी जीवन के व्रत को समाप्त करक, वन से लौटकर आप विशालाक्षी स्त्रियों के साथ निर्भय रूप से कृतकृत्य होकर रमण कर रहे होंगे ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्र ! आपकी अनुरागिणी मैं आप में ही प्रेम रखती हूँ । मन्दभाग्या मैं जो व्यर्थ में ही व्रतादि का पालन करती हुई जीवन का त्याग कर रही हूँ, ऐसी मुझे धिक्कार है ॥ १५ ॥ विषपान के द्वारा, या तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा मैं अपने प्राणों को शीघ्र ही त्याग दूँगी । किन्तु इस राक्षसराज रावण के भवन में तीक्ष्ण शस्त्र तथा विष का देने वाला कोई नहीं दिखाई देता ॥ १६ ॥ शोक से सन्तप्त सीता ने इस प्रकार विचार करके अपनी ही इस वेणी (गुम्फित बालों) से गले को बाँध कर प्राण त्याग दूँगी, ऐसा निश्चय किया ॥ १७ ॥ कोमलाङ्गी वह सीता उस शिंशपा वृक्ष के नीचे पहुँची तथा उस वृक्ष की शाखा को पकड़कर

उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री शाखां गृहीत्वाथ नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं प्रविचिन्तयन्त्या रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः ॥१८॥
शोकानिमित्तानि तथा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे उद्बन्धनव्यवसायो नाम अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः

शुभनिमित्तानि

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां व्यपेतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे नरं श्रिया जुष्टमिवोपजीविनः ॥ १ ॥
तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥ २ ॥
भुजश्च चार्वञ्चितपीनवृत्तः परार्घ्यकालागरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण चिरेण वामः समवेपताशु ॥ ३ ॥
गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनस्तयोर्द्वयोः संहतयोः सुजातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या रामं पुरस्तात् स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥

वह शोभनाङ्गी सीता—रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा अपने कुल का जिस समय विचार कर रही थी, उसी समय उसके शोक को दूर करने वाले तथा धैर्य बँधाने वाले, लोक प्रसिद्ध अनेकों प्रकार के उत्तम शकुन होने लगे, जिनकी उस समय संभावना थी ॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'आत्मघात का निर्णय' विषयक अट्ठाईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

उनतीसवां सर्ग

शुभ शकुन

जिसका हर्ष समाप्त हो गया है, जो अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रही है, संतप्त विचार वाली, अनिन्दिता सीता के इस प्रकार वृक्ष शाखा के समीप पहुँचने पर वे शुभ शकुन उसे उसी प्रकार दिखाई देने लगे, जैसे लक्ष्मीपतियों के पास सेवकों का समूह उपस्थित होता है ॥ १ ॥ टेढ़ी बरौनियों वाली सीता का काला तथा श्वेत शुभ सूचक वामनेत्र इस प्रकार फड़कने लगा, जैसे मछलियों के आघात से रक्तवर्ण वाले कमल हिलने लग जाते हैं ॥ २ ॥ श्रेष्ठ पति से सम्मानित, अगर और चन्दन को धारण करने योग्य जानकी का पुष्ट तथा गोल वामबाहु चिरकाल तक फड़कता रहा ॥ ३ ॥ गजशुण्ड के समान सीता के दोनों पुष्ट जङ्घों में वाम उरु फड़कने लगा, जो सीता के समक्ष रामचन्द्र के शीघ्र उपस्थित होने की सूचना दे रहा था ॥ ४ ॥

शुभं पुनर्हेमसमानवर्णमीषद्रजोध्वस्तमिवामलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदत्याः किंचित्परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥ ५ ॥
एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः संबोधिता प्रागपि साधु सिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रनष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ॥ ६ ॥
तस्याः पुनर्बिम्बफलाधरोष्ठं स्वक्षिभ्रुकेशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥ ७ ॥
सा वीतशोका व्यपनीततन्द्री शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा ।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे शुभनिमित्तानि नाम एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः

हनुमत्कृत्याकृत्यविचिन्तनम्

हनुमानपि विश्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः । सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जनम् ॥ १ ॥
अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने । ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

सुवर्ण के समान पीतवर्ण वाली, धूल से धूसरित, किञ्चित् मलिन दाडिम बीज के समान दन्तपंक्ति वाली, उत्तमाङ्गी, विशालाक्षी जानकी का वस्त्र अपने स्थान से कुछ खिसक गया ॥ ५ ॥ इसके पूर्व भी जो उसके मनोरथों के सिद्धि सूचक हो चुके थे, उन निमित्तों से जानकी उस समय उसी प्रकार प्रसन्न हुई, जैसे वायु तथा धूप से सूखा हुआ नष्टप्राय बीज वर्षा के द्वारा प्रफुल्लित हो जाता है ॥ ६ ॥ कुटिल भौंहों तथा बरौनी वाली जानकी का बिम्बफल के समान ओठ वाला तथा श्वेत दाँतों वाला मुखमण्डल इस प्रकार शोभित हुआ, जिस प्रकार राहुग्रस्त चन्द्रमा मुक्त होने पर शोभित होता है ॥ ७ ॥ इन शुभ शकुनों के द्वारा जिसका शोक समाप्त हो गया है, आलस्य दूर हो गया है, तथा हर्षातिरेक से जिसका मन प्रफुल्लित हो गया है ऐसी सन्तापरहित सीता का मुखमण्डल इस प्रकार शोभित हुआ जैसे शुक्ल पक्ष के चन्द्रोदय से रात्रि शोभित होती है ॥ ८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'शुभशकुन' विषयक उनतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

तीसवां सर्ग

हनुमान् का कर्तव्याकर्तव्य का चिन्तन

पराक्रमी हनुमान् ने राक्षसियों के द्वारा तर्जन भर्त्सन तथा त्रिजटा के द्वारा स्वप्न दर्शन की बातों को समुचित रूप से संपूर्ण सुना ॥ १ ॥ नन्दन वन में देवता के समान अशोकवाटिका में देवी जानकी को उस प्रकार देखकर वनवासी हनुमान् नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे ॥२॥ वन्दनीया जिस सीता की खोज करने

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च । दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥
चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता । गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयमवेक्षिता । राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥ ५ ॥
युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः । समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥ ६ ॥
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । अदृष्टदुःखां दुःखार्तां दुःखस्यान्तमगच्छतीम् ॥ ७ ॥
यदि ह्यहमिमां देवीं शोकोपहतचेतनाम् । अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥ ८ ॥
गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी । परित्राणमविन्दन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ९ ॥
मया च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः । समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥१०॥
निशाचरीणां प्रत्यक्षमनर्हं चापि भाषणम् । कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥११॥
अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया । सर्वथा नास्ति संदेहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥१२॥
रामश्च यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः । किमहं तं प्रतिब्रूयामसंभाष्य सुमध्यमाम् ॥१३॥
सीतासंदेशरहितं मामितस्त्वरया गतम् । निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रुद्धस्तीव्रेण चक्षुषा ॥१४॥
यदि चोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् । व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥१५॥
अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामिह स्थितः । शनैराश्वासयिष्यामि संतापबहुलामिमाम् ॥१६॥

के लिये सब दिशाओं में हजारों, लाखों वनवासी ढूँढ रहे हैं उस जानकी को मैंने पा लिया ॥ ३ ॥ गुप्तचरी में नियुक्त शत्रुशक्ति का पता लगाते हुए, तथा गुप्त रूप से सञ्चरण करते हुए मैंने प्रथम जानकी का पता लगाया ॥ ४ ॥ राक्षसों की विशेषता, लङ्का नगरी का निरीक्षण, राक्षसराज रावण का प्रभाव, यह सब कुछ मैंने जान लिया ॥ ५ ॥ अप्रमेय प्रतिमा वाले, प्राणिमात्र पर दया करने वाले, रामचन्द्र की पतिव्रता धर्मपत्नी को जो पति दर्शन की अभिलाषिणी है मैं आश्वासन दूँगा ॥ ६ ॥ जिसने कभी दुःख नहीं देखा है, जो प्रयत्न करने पर भी दुःख से उन्मुक्त नहीं हो रही है, ऐसी पूर्ण चन्द्रमुखी सीता को मैं अवश्यमेव आश्वासन दूँगा ॥ ७ ॥ शोकसंतप्त सती सीता को बिना आश्वासन दिये हुए ही यदि मैं इस लङ्का से लौट जाऊँगा, तो मेरा लौटना दोषपरिपूर्ण होगा ॥ ८ ॥ मेरे यहाँ से लौट जाने पर यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने परित्राण का कोई मार्ग न देखकर अपने जीवन का अन्त अवश्यमेव कर लेगी ॥ ९ ॥ विशाल भुजा वाले, सीता के दर्शन की आकाङ्क्षा रखने वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले रामचन्द्र को जिस प्रकार समाश्वासन देना उपयुक्त है, उसी प्रकार जानकी को भी आश्वासन देना परमावश्यक है ॥ १० ॥ इन निशाचरियों के समक्ष यदि मैं जानकी से भाषण करता हूं तो उपयुक्त न होगा। मैं इस समय क्या करूँ ? वस्तुतः मैं बड़े सङ्कट में पड़ गया हूँ ॥ ११ ॥ यदि इसी रात्रि के समय सीता को आश्वासन नहीं देता हूँ तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीता अवश्यमेव अपना प्राण त्याग देगी ॥ १२ ॥ यदि रामचन्द्र मुझसे पूछेंगे कि जानकी ने मेरे लिये क्या कहा है तो बिना सीता से वार्तालाप किये हुए रामचन्द्र को मैं क्या उत्तर दूँगा ॥ १३ ॥ शीघ्रता के कारण सीता का संदेश लिये बिना यदि मैं यहाँ से लौट जाता हूँ तो क्रुद्ध रामचन्द्र तीव्र नेत्रों से मुझे भस्म कर देंगे ॥१४॥ और यदि रामचन्द्र की कार्यसिद्धि के लिये स्वामी सुग्रीव को सेनासहित यहाँ लाने का उद्योग करूँ तो ससैन्य उनका यहाँ आना व्यर्थ होगा। (क्योंकि तब तक सीता का प्राणान्त हो चुका होगा) ॥ १५ ॥ अवसर देखकर, अत्यन्त सन्तापयुक्त, राक्षसियों के मध्य में बैठी हुई सीता को मैं आज शनैः शनैः समझाऊँगा ॥ १६ ॥ मैं लघु शरीर

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः । वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥१७॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् । रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥१८॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् । मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥१९॥
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा । रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति ॥२०॥
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी । जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ॥२१॥
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः । नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ॥२२॥
ततो मां संपरिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः । वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं यथाबलम् ॥२३॥
गृह्य शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् । दृष्ट्वा विपरिधावन्तं भवेयुर्भयशङ्किताः ॥२४॥
मम रूपं च संप्रेक्ष्य वने विचरतो महत् । राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृताननाः ॥२५॥
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि । राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ॥२६॥
ते शूलशक्तिनिस्त्रिंशविविधायुधपाणयः । आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन् वेगेनोद्विग्नकारणात् ॥२७॥
संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमन् रक्षसां बलम् । शक्नुयां न तु संप्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥२८॥
मां वा गृह्णीयुराप्लुत्य बहवः शीघ्रकारिणः । स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् ॥२९॥
हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् । विपन्नं स्यात्ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ॥३०॥
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन् राक्षसैः परिवारिते । सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ॥३१॥

वाला. विशेषकर वनचारी हूँ, इसलिये सामान्य नागरिक मनुष्य के समान, परिमार्जित वाणी (भाषा) का प्रयोग करूँगा ॥ १७ ॥ यदि द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो मुझे रावण समझ कर सीता भय से संत्रस्त हो जायगी ॥ १८ ॥ मुझे अवश्यमेव मनुष्य के समान सार्थक वाक्यों के द्वारा सीता को समझाना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं ॥ १९ ॥ मेरे इस वनवासी रूप को देखकर, तथा नागरिक संस्कृत भाषण को सुनकर पहले राक्षसों से डरी हुई यह सीता पुनः भयभीत हो जायगी ॥ २० ॥ मुझको कामरूपी रावण जानती हुई, भयातुर यह विशालाक्षी सीता कोलाहल करना आरम्भ कर देगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार सीता के कोलाहल करने पर विकराल राक्षसियाँ यम के समान अनेकों प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर वहाँ उपस्थित हो जायेंगी ॥ २२ ॥ महाबली तथा विकराल मुख वाली वे राक्षसियाँ चारों तरफ से घेर कर मुझको पकड़ने तथा मेरा वध करने का प्रयत्न करेंगी ॥ २३ ॥ मुझे वृक्षों की शाखा प्रशाखाओं पर इधर उधर कूदते फांदते देखकर वे सब शङ्कित हो जायेंगी ॥ २४ ॥ अशोकवन में मुझे घूमते हुए तथा मेरे भयङ्कर रूप को देखकर सब राक्षसियाँ भयभीत हो जायेंगी तथा चिल्लाना आरम्भ कर देंगी ॥ २५ ॥ पश्चात् वे राक्षसियाँ रावण के गृहरक्षकों को तथा नगररक्षा में नियुक्त राक्षसों को बुलाना आरम्भ कर देंगी ॥ २६ ॥ राक्षसियों के कोलाहल से उद्वेग उत्पन्न होने पर इस सङ्घर्ष में शूल शक्ति (बर्छी) खड्ग नाना प्रकार के शस्त्रों को लेकर राक्षस उपस्थित हो जाएँगे ॥ २७ ॥ चौतरफा उनसे घिर जाने पर उन राक्षसों का वध तो मैं अवश्यमेव कर दूँगा, किन्तु सागर पार करना मेरे लिये कठिन हो जायेगा ॥ २८ ॥ अथवा शीघ्रकारी वे बहुत से राक्षस मुझको घेरकर पकड़ लेंगे, किन्तु मेरा पकड़ा जाना सीता के मनोरथ की हानि करने वाला होगा ॥ २९ ॥ हिंसा में अभिरुचि रखने वाले ये राक्षस, हो सकता है, जानकी का वध कर डालें। यदि ऐसा हुआ तो रामचन्द्र तथा राजा सुग्रीव का कार्य ही नष्ट हो जायेगा ॥ ३० ॥ राक्षसों से घिरे हुए, चौतरफा समुद्र के मध्य में, औरों से अपरिज्ञात, अति गुप्त स्थान में जानकी रहती है ॥ ३१ ॥ राक्षसों के द्वारा सङ्घर्ष में मेरे पकड़े

विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे। नान्यं पश्यामि रामस्य साहाय्यं कार्यसाधने ॥३२॥
विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः। शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ॥३३॥
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम्। न तु शक्ष्यामि संप्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥३४॥
असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते। कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात्प्राज्ञः ससंशयम् ॥३५॥
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे। एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ॥३६॥
भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः। विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥३७॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते। घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३८॥
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत्। लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥३९॥
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत वा। इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान् मतिम् ॥४०॥
राममक्लिष्टकर्माणं स्वबन्धुमनुकीर्तयन्। नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतमानसाम् ॥४१॥
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः। शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥४२॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम्। श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे ४३ ॥

इति स बहुविधं महानुभावो जगतीपतेः प्रमदामवेक्षमाणः।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्कृत्याकृत्यविचिन्तनं नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

जाने या मारे जाने पर रामचन्द्र के कार्य साधन में सहायता का ही नाश हो जायगा ॥ ३२ ॥ अति विमर्श करने पर भी मैं इस परिणाम पर नहीं पहुँच पा रहा हूँ, जो मेरे मारे जाने पर सौ योजन विशाल समुद्र को पार कर जाय ॥ ३३ ॥ निश्चय ही मैं हजारों राक्षसों को मारने में समर्थ हूँ। परन्तु सङ्घर्ष के पश्चात् मैं समुद्र के पार नहीं जा सकता ॥ ३४ ॥ युद्ध का परिणाम जय, पराजय अनिश्चित होता है। संदेहयुक्त कार्य मुझको रुचता नहीं। कौन बुद्धिमान् सन्देहरहित कार्य को छोड़कर सन्देह वाले कार्य में प्रवृत्त होगा ॥ ३५ ॥ जानकी के साथ भाषण करने में यही महान् दोष दिखाई दे रहा है और भाषण न करने में सीता का प्राणपरित्याग निश्चित है ॥ ३६ ॥ देश काल के विरुद्ध प्रायः सिद्ध कार्य भी दूत की असावधानी से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ अपनी बुद्धि पर गर्व करने वाले मिथ्याभिमानी दूत स्वामी के द्वारा निश्चित कार्य को भी नष्ट कर देते हैं ॥ ३८ ॥ यह मेरा निश्चित ध्येय नष्ट न हो, और मुझसे असावधानी न हो, तथा समुद्र का लांघना मेरा व्यर्थ न हो, यह विचारणीय विषय है ॥३९॥ यह जानकी मेरी बात को सुनकर किसी प्रकार न घबराए, बुद्धिमान् हनुमान् ने इस प्रकार अपना निश्चय किया ॥ ४० ॥ राम के प्रति आसक्त मन वाली इस जानकी के समक्ष प्रशस्त काम करने वाले रामचन्द्र के गुणों का वर्णन करते हुए मैं जानकी को उद्विग्न न कर सकूँगा ॥ ४१ ॥ महान् आत्मा इक्ष्वाकुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्र के धर्मयुक्त शुभकार्यों के प्रति वचनों का प्रयोग करते हुए संपूर्ण मधुर भाषण उसको सुनाऊँगा जिससे जानकी मुझ पर विश्वास करेगी, ऐसा हनुमान् ने निश्चय किया ॥ ४२-४३ ॥ वृक्ष की शाखाओं में इस प्रकार छिपे हुए, अतुल प्रभाव वाले हनुमान्, पृथ्वी सम्राट् रामचन्द्र की धर्मपत्नी को देखते हुए तथ्यपूर्ण मधुर वचन बोले ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का कर्तव्याकर्तव्य का चिन्तन' विषयक तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः

रामवृत्तसंश्रवः

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः । संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् । पुण्यशीलो महाकीर्तिर्ऋजुरासीन्महायशाः ॥ २ ॥
राजर्षीणां गुणश्रेष्ठस्तपसा चर्षिभिः समः । चक्रवर्तिकुले जातः पुरंदरसमो बले ॥ ३ ॥
अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः । मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥ ४ ॥
पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः । पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥ ५ ॥
तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः । रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः ॥ ७ ॥
तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः । सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम् ॥ ८ ॥
तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता । राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥ ९ ॥
जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ । ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥१०॥
वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया । स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥११॥
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् । ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरंजयः ॥१२॥
प्रायच्छत्कपिराज्यं तत्सुग्रीवाय महाबलः । सुग्रीवेणापि संदिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥१३॥

इकत्तीसवां सर्ग

रामचन्द्र के वृत्तान्त को सुनाना

महामति हनुमान् इस प्रकार बहुत विचार करके, जानकी को सुनाने के लिए इस प्रकार मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ हाथी, घोड़े, रथ वाले, पुण्य चरित्र वाले, महान् कीर्ति वाले, महायशस्वी, इक्ष्वाकुवंश में राजा दशरथ थे ॥ २ ॥ राजर्षि वंश में अपने गुणों से सर्वश्रेष्ठ, तपश्चर्या में ऋषियों के समान, बल में साक्षात्, इन्द्र के समान, चक्रवर्ती कुल में उत्पन्न होने वाले ॥ ३ ॥ अहिंसा में प्रेम रखने वाले, महान् आशय वाले, अधर्म से घृणा करने वाले, सत्यपराक्रमी तथा इक्ष्वाकुवंश की समृद्धि करने वाले थे ॥ ४ ॥ राजकीय लक्षणों से युक्त, राजाओं में श्रेष्ठ, अत्यन्त कमनीय, सबको सुख देने वाले, स्वयं सुखी, समुद्रपर्यन्त पृथिवी पर जिसकी प्रसिद्धि थी ॥ ५ ॥ उस राजा दशरथ के ज्येष्ठ प्रियपुत्र, चन्द्रमा के समान मुखमण्डल वाले, सर्वधनुर्धारियों में श्रेष्ठ, विशेषज्ञ तथा अपने पिता के प्रियभाजन ॥ ६ ॥ शत्रुतापी रामचन्द्र अपने सदाचार तथा स्वजनों की रक्षा करने वाले हैं। प्राणिमात्र तथा अपने धर्म की रक्षा करने वाले हैं ॥ ७ ॥ सत्यव्रत-धारी वृद्ध उस अपने पिता की आज्ञा को मानकर अपनी भार्या जानकी तथा भ्राता लक्ष्मण के साथ वीर रामचन्द्र वन में चले आए ॥ ८ ॥ रामचन्द्र ने मृगया के लिये महावन में पर्यटन करते हुए, कामरूपी अनेकों वीर राक्षसों को मारा ॥ ९ ॥ जनस्थान का नाश तथा खर, दूषण की मृत्यु के समाचार को सुनकर प्रतिशोध की भावना से द्वेषी रावण ने जानकी का हरण किया ॥ १० ॥ मायारूपी मृग के द्वारा उसने वन में राम का वञ्चन किया। अनिन्दिता उस देवी सीता की खोज करते हुए ॥ ११ ॥ वन में सुग्रीव नामक वनवासी मित्र को प्राप्त किया। पश्चात् नगर विजयी रामचन्द्र ने बाली को मार कर ॥ १२ ॥ महात्मा सुग्रीव को वनवासी राज्य समर्पित कर दिया। सुग्रीव के द्वारा प्रेरित कामरूपी वनवासी ॥ १३ ॥ हजारों की संख्या

दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्ति सहस्रशः । अहं संपातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥१४॥
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः सागरं वेगवान् प्लुतः । यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मीं च निश्चिताम् ॥१५॥
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया । विररामैवमुक्त्वासौ वाचं वानरपुंगवः ॥१६॥
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता । ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ॥१७॥
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत ॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥ १८ ॥
सा तिर्यगूर्ध्वं च तथाप्यधस्तान्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रामवृत्तसंश्रवो नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः

सीतास्वप्नादिवितर्कः

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा । वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्सङ्घातपिङ्गलम् ॥ १ ॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् । फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥ २ ॥

में उस देवी जानकी का सब दिशाओं में अन्वेषण करने लगे। मैंने वैखानस संपाति के वचन से सौ योजन वाले लम्बे ॥ १४ ॥ सागर को विशालाक्षी उस जानकी के लिये, अत्यन्त वेग से पार किया। जिस प्रकार का रूप, जिस प्रकार का वर्ण तथा कान्ति ॥ १५ ॥ रामचन्द्र के द्वारा मैंने जिस देवी की सुनी थी उसको प्राप्त कर लिया। वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् इतनी बात कह कर मौन हो गए ॥ १६ ॥ जानकी हनुमान् का इन बातों को सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गई। पश्चात् घुंघराले उत्तम केशों वाली सीता केशाच्छादित मुखमण्डल को ऊपर करके शिंशपा वृक्ष की ओर देखने लगा ॥ १७ ॥ सारी दिशाओं और विदिशाओं का देखती हुई, वनवासी हनुमान् की इन बातों को सुनकर, तन्मयतापूर्ण राम का स्मरण करती हुई स्वयं जानकी अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हो गई ॥ १८ ॥ वह जानकी ऊपर-नीचे, अगल-बगल देखती हुई अचिन्त्य बुद्धि उस सुग्रीव के सचिव वायुपुत्र हनुमान् को उदयाचल पर्वत पर नवोदित सूर्य के समान देखने लगी ॥ १९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रामचन्द्र के वृत्तान्त को सुनाना' विषयक इकत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ सर्ग

जानकी का स्वप्नादि के विषय में तर्क वितर्क

पतिवियोग से चञ्चल चित्त वाली सीता शाखाओं में छिपे हुए श्वेतवस्त्रधारी, विद्युत् के समान पीतवर्ण वाले हनुमान् को देख कर (प्रथम कुछ विचलित हो गई) ॥ १ ॥ पश्चात् विकसित अशोकपुष्प के समान कान्ति वाले तप्त काञ्चन के समान पीत नेत्र वाले प्रियवादी तथा नम्र हनुमान् को वहाँ जानकी ने ध्यान से देखा ॥ २ ॥ नम्रता की मुद्रा में बैठे हुए वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् को देखकर वह मिथिलेशकुमारी

साधु दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम् । मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ॥ ३ ॥
अहो भीममिदं रूपं वानरस्य दुरासदम् । दुर्निरीक्ष्यमिति ज्ञात्वा पुनरेव मुमोह सा ॥ ४ ॥
विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता । राम रामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी ॥ ५ ॥
रुरोद बहुधा सीता मन्दं मन्दस्वरा सती । सा तं दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम् ॥ ६ ॥
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥

सा वीक्षमाणा पृथुभुग्नवक्त्रं शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ॥ ७ ॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विसंज्ञा गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य भूयो विचिन्तयामास विशालनेत्रा ॥ ८ ॥

स्वप्ने मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः ॥ ९ ॥

स्वप्नोऽपि नायं न हि मेऽस्ति निद्रा शोकेन दुःखेन च पीडितायाः ।
सुखं हि मे नास्ति यतोऽस्मि हीना तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ॥१०॥

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव ।
तस्यानुरूपां च कथां तमर्थमेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥११॥

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन संपीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि यथा शृणोमि ॥१२॥

जानकी विस्मित मुद्रा में चिन्ता करने लगी ॥ ३ ॥ दुर्दमनीय वनवासी प्राणी का यह भयङ्कर रूप है। राक्षसों के लिये भी यह रूप दुर्निरीक्ष्य है। इस प्रकार सोच कर सीता पुनः किङ्कर्तव्यविमूढ हो गई ॥ ४ ॥ बार-बार हा रामचन्द्र ! हा लक्ष्मण ! कहती हुई दुःखार्ता भयत्रस्ता सीता करुण विलाप करने लगी ॥ ५ ॥ नम्रतापूर्वक सहसा सामने आए हुए वनवासी वीर हनुमान् को देखकर मन्द मन्द स्वर में सीता रोने लगी तथा मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ, ऐसी चिन्ता करने लगी ॥ ६ ॥ विकराल मुख वाले बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वनवासी राजा सुग्रीव के दूत महान् वायुसुत हनुमान् को जानकी ने देखा ॥ ७ ॥ इस प्रकार हनुमान् को देखते ही दुःखिनी सीता मृतक के समान संज्ञाहीन हो गई। चिरकाल के पश्चात् चेतना आने पर विशालनेत्रा सीता चिन्ता करने लगी ॥ ८ ॥ आज मैंने निन्दनीय स्वप्न को देखा है, वनवासी को स्वप्न में देखना शास्त्रकारों ने निन्दित बतलाया है। लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र का कल्याण हो। मेरे पिता राजा जनक का कल्याण हो ॥ ९ ॥ यह मैं स्वप्न नहीं देख रही हूँ, क्योंकि मुझको निद्रा कहाँ ? शोक तथा दुःख से पीड़ित मुझको निद्रा कहाँ आती है। पूर्णचन्द्रमण्डल के समान मुख वाले रामचन्द्र से वियुक्त मुझे सुख कहाँ, जिससे निद्रा आए ॥ १० ॥ निरन्तर बुद्धि से राम का ही चिन्तन करती हुई तथा वाणी से निरन्तर राम का ही जप करती हुई मैं उसीके अनुकूल रामसम्बन्धी वचनों को सुन रही हूँ तथा राममय दृश्य देख रही हूँ ॥ ११ ॥ अपने आप को सर्व प्रकार से रामचन्द्र की समझती हुई, तथा अनेकों मनोगत कामनाओं से पीड़ित आज मैं निरन्तर उनकी चिन्ता करती हुई उन्हीं रामचन्द्र के सम्बन्ध की चर्चा को सुन रही हूँ तथा उन्हीं के दृश्यों को देख रही हूँ ॥ १२ ॥ सब मनोरथ का ही सब प्रपञ्च है, ऐसा विचार

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि तथापि बुद्ध्या च वितर्कयामि ।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥१३॥
नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे स्वयंभुवे चैव हुताशनाय च ।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ॥१४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीतास्वप्नादिवितर्को नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

हनूमज्जानकीसंवादोपक्रमः

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः । विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः । शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥
का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि । द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् । पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥
सुराणामसुराणां वा नागगन्धर्वरक्षसाम् । यक्षाणां किंनराणां वा का त्वं भवसि शोभने ॥ ५ ॥
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने । वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥ ६ ॥

करती हूँ। पुनः बुद्धि के द्वारा इस प्रकार तर्कणा करती हूँ। क्योंकि मनोरथ का न तो कोई रूप होता है, न शब्द होता है, किन्तु इसका तो प्रत्यक्ष रूप तथा शब्द दिखाई तथा सुनाई पड़ रहा है ॥ १३ ॥ बृहस्पति तथा इन्द्र नाम वाले उस ब्रह्म को मेरा नमस्कार है। स्वयंभू तथा अग्नि नाम वाले उस जगदीश्वर को मेरा नमस्कार है। मेरे समक्ष इस वनवासी ने जो कुछ कहा है, वह सर्वथा सत्य हो। इसके विपरीत कुछ भी न हो ॥ १४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'जानकी का स्वप्नादि के विषय में तर्क वितर्क' विषयक बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान् तथा जानकी का वार्तालापारम्भ

विद्रुम (मूंगा) के समान लाल मुख वाले, अतिविनीत सीता के दुःख से अत्यन्त संतप्त हनुमान् उस वृक्ष से नीचे उतर कर तथा नम्रता पूर्वक सीता के समीप जाकर ॥ १ ॥ अञ्जलि पूर्वक सिर झुकाकर महातेजस्वी वायुपुत्र हनुमान् मधुर वाणी के द्वारा उस सीता से बोले ॥ २ ॥ हे मलिन पीतकौशेयवस्त्र-धारिणि ! कमलनयनि ! प्रशंसा के योग्य तुम वृक्ष की शाखा का अवलम्बन करके खड़ी रहने वाली कौन हो ? ॥३॥ फूटे हुए घड़े से स्रवित जल के समान तुम्हारे कमल रूपी नेत्रों से शोक जनित ये आँसू क्यों गिर रहे हैं ॥४॥ देव, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किंनर जाति वाले मनुष्यों में, हे शोभने ! तुम कौन हो या किसकी हो ॥५॥ ११ प्रकार के रुद्रकोटि वाले मनुष्यों में तथा ४९ प्रकार के मरुत् (प्राण) कोटि वाले मनुष्यों में तथा ८ प्रकार के वसु कोटि वाले मनुष्यों में तुम कौन हो ? हे सुन्दरि! तुम मुझे देवता प्रतीत होती हो ॥ ६॥

किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् । रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठा सर्वगुणान्विता ॥ ७ ॥
कोपाद्वा यदि वा मोहाद्भर्तारमसितेक्षणे । वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं नासि कल्याण्यरुन्धती ॥ ८ ॥
को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे । अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ॥ ९ ॥
रोदनादतिनिःश्वासाद्भूमिसंस्पर्शनादपि । न त्वां देवीमहं मन्ये राज्ञः संज्ञावधारणात् ॥१०॥
व्यञ्जनानि च ते यानि लक्षणानि च लक्षये। महिषी भूमिपालस्य राजकन्यासि मे मता ॥११॥
रावणेन जनस्थानाद्बलादपहृता यदि । सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥१२॥
यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम् । तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ॥१३॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता । उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं द्रुमाश्रितम् ॥१४॥
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः । स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रमाथिनः ॥१५॥
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः । सीता च नाम नाम्नाहं भार्या रामस्य धीमतः ॥१६॥
[समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने । भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥१७॥

चन्द्र से हीन स्वर्ग (नभ) से गिरी हुई, नक्षत्रों में श्रेष्ठ रोहिणी के समान, अपने श्रेष्ठ गुणों से युक्त, सुखमय जीवन से वञ्चित तुम हो क्या ? ॥ ७ ॥ हे अनिन्दितलोचने ! क्रोध या मोह के द्वारा अपने पति वसिष्ठ को क्रुद्ध करके यहाँ आई हुई तुम अरुन्धती तो नहीं हो ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम्हारा पुत्र, पिता, भ्राता या भर्ता कौन है, जो तुमसे वियुक्त हो गया है, किसके लिये तुम सोच रही हो ॥ ९ ॥ राजकीय लक्षणों से युक्त तुम्हारे रोने तथा बार बार श्वास लेने और भूमितल में निवास करने से मैं तुम्हें देवाङ्गना नहीं समझता ॥ १० ॥ तुम्हारे शरीर के लक्षण तथा चिह्न जो व्यञ्जित हो रहे हैं, उन से किसी राजा की रानी या राजकुमारी प्रतीत हो रही हो ॥ ११ ॥ जनस्थान से रावण के द्वारा बलपूर्वक हरी हुई, यदि तुम सीता हो तो तुम्हारा कल्याण हो, और जो मैं पूछ रहा हूँ उसका उत्तर दो ॥ १२ ॥ इस समय जैसी तुम्हारी दीनता है, जैसा अप्रतिम सौन्दर्य है, और वर्तमानकाल में तपस्वियों का जैसा तुम्हारा वेश है, उससे तुम अवश्य ही रामचन्द्र की धर्मपत्नी प्रतीत हो रही हो ॥ १३ ॥ रामचन्द्र के कीर्तन से हर्षित वह विदेहराजकुमारी जानकी उनके वचनों को सुनकर वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान् से बोली ॥ १४ ॥ महीमण्डल के राजाओं में श्रेष्ठ आत्मज्ञानी तथा शत्रु सेना को नष्ट करने वाले चक्रवर्ती सम्राट् राजा दशरथ की मैं पुत्रवधू हूँ ॥१५॥ मिथिलाधिपति महात्मा जनक की मैं पुत्री हूं, मेरा नाम सीता है। मर्यादापुरुषोत्तम बुद्धिमान् रामचन्द्र की मैं धर्मपत्नी हूं ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुवंशी राजभवन में मैंने १२ वर्ष रहकर मनुष्य सुलभ सम्पूर्ण भोगों को भोगते हुए अपने मनोरथ को पूर्ण किया ॥ १७ ॥ तेरहवें वर्ष के आरम्भ में* सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के साथ विचार करके

*—इस श्लोक में यह बात कि 'मैंने विवाह के पश्चात् अपनी ससुराल में रहकर नाना प्रकार के समृद्ध राजकीय भोगों को भोगा। तेरहवें वर्ष में मेरे पति रामचन्द्र के राजतिलक के समय कैकेयी ने वरदान माँग कर मेरे पति को वनवास दिया' प्रक्षिप्त है क्योंकि अरण्यकाण्ड के ४७ वें सर्ग के १० और ११ श्लोक में जानकी ने अपनी तथा अपने पति की आयु का वर्णन किया है—'मम भर्ता महातेजाः वयसा पञ्चविंशकः। अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते'। अर्थात् मेरे पति रामचन्द्र के तिलक के समय राम की आयु २५ वर्ष तथा मेरी आयु १८ वर्ष की थी। यदि इस श्लोक में १२ वर्ष तक भोग भोगकर तेरहवें वर्ष वनवास किया, यह मान लिया जाए 'तो जानकी की आयु विवाह के समय ६ वर्ष की थी' यह मानना होगा, जो सर्वथा असम्भव प्रतीत हो रहा है।

अयोध्या काण्ड, ११८ सर्ग, ३४ वें श्लोक में 'पतिसंयोगसुलभं०' आदि 'अर्थात् पति को प्राप्त होने योग्य मेरी अवस्था को देखकर मेरे पिता को चिन्ता हुई' ऐसा कहा गया है। पाठकगण स्वयं सोचें कि ६ वर्ष की अवस्था में

ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनम्] । अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ॥१८॥
तस्मिन् संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने । कैकेयी नाम भर्तारमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् । एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥२०॥
यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम । तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ॥२१॥
स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन् । मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ॥२२॥
ततस्तु स्थविरो राजा सत्ये धर्मे व्यवस्थितः । ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन् राज्यमयाचत ॥२३॥
स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात्परं प्रियम् । मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥२४॥
दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात्किंचिदप्रियम् । अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥२५॥
स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः । विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् ॥२६॥
साहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी । न हि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ॥२७॥
प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । पूर्वजस्यानुयात्रार्थे द्रुमचीरैरलंकृतः ॥२८॥
ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः । प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् ॥२९॥
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः । रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥३०॥

महाराज ने मेरे पति रामचन्द्र के राजतिलक का निश्चय किया ॥ १८ ॥ जिस समय रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समारोह हो रहा था उसी समय कनिष्ठ महारानी कैकेयी अपने पति राजा दशरथ से बोली ॥१९॥ यदि रामचन्द्र का राजतिलक हो गया तो न तो मैं जल ग्रहण करूँगी, न प्रतिदिन का भोजन करूँगी। बस यही मेरे जीवन का अन्त समझो ॥ २० ॥ हे राजश्रेष्ठ ! आपने प्रीतिपूर्वक जो मुझसे वचन कहा है, वह किसी प्रकार असत्य या अन्यथा न होने पाए। इसलिये रामचन्द्र वन को अवश्य जाएँ ॥ २१ ॥ सत्यवादी राजा दशरथ, दिये हुए कैकेयी के वरदान का स्मरण करते हुए, कैकेयी के इस अप्रिय वचन को सुनकर मोह (मूर्छा) को प्राप्त हो गए ॥ २२ ॥ पश्चात् सत्यधर्म में आरूढ, वृद्ध राजा दशरथ ने रोते हुए यशस्वी, ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र से राज्य की याचना की। (अर्थात् राज्याभिषेक के द्वारा प्राप्त होने वाले राज्य के त्याग की प्रतिज्ञा कराई) ॥ २३ ॥ श्रीमान् रामचन्द्र ने राज्याभिषेक से भी अतिप्रिय पिता के वचन को (अर्थात् वनवासगमन को) हृदय से वाणी के द्वारा प्रथम स्वीकार किया ॥ २४ ॥ सत्यपराक्रमी रामचन्द्र जो कुछ दे देते हैं, उसे प्राणसङ्कट आने पर भी पुनः स्वीकार नहीं करते। वे कभी भी कुछ अप्रिय भाषण नहीं करते ॥ २५ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र ने मूल्यवान् उत्तरीय वस्त्र को उतार दिया। मन से राज्य का त्याग करके मुझे अपनी माता (मेरी सास कौसल्या) को समर्पित कर दिया ॥ २६ ॥ मैं शीघ्र ही उनके साथ वन चलने के लिये उनके समक्ष उपस्थित हो गई। क्योंकि उनके बिना मुझे स्वर्ग में भी रहना अभीष्ट नहीं ॥ २७ ॥ मित्रों को सदा आनन्दित करने वाले महायशस्वी सुमित्रापुत्र लक्ष्मण पहले से ही ज्येष्ठ भ्राता का अनुगमन करने के लिये कुश तथा वल्कल वसन से अलंकृत हो रहे थे ॥ २८ ॥ इसलिये दृढ़व्रती हम तीनों ने ही स्वामी के आदेश का पालन करते हुए गम्भीर दर्शन वाले तथा अज्ञात वन में प्रवेश किया ॥२९॥ दण्डक वन में निवास करते हुए अमित ओज वाले पराक्रमी रामचन्द्र की भार्या मुझको दुरात्मा राक्षसराज रावण ने हर लिया ॥ ३० ॥ कृपा करके दो मास उसने मुझे जीने का अवसर दिया है। दो मास के

'पति को प्राप्त होने योग्य मेरी अवस्था को देखकर' यह वाक्य क्या अर्थ रखता है। ६ वर्ष की अवस्था में कन्या पति प्राप्त होने योग्य नहीं होती। इस पूर्वापर विचार को देखकर यही निश्चय करना पड़ता है कि यह अंश प्रक्षिप्त है।

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः । ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमज्जानकीसंवादोपक्रमो नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

रावणशङ्कानिवारणम्

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरियूथपः । दुःखाद्दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥
अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्तवागतः । वैदेहि कुशलो रामस्त्वां च कौशलमब्रवीत् ॥२॥
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः । स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥३॥
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः । कृतवाञ्शोकसंतप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥४॥
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः । प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥५॥
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥६॥
तया समागते तस्मिन् प्रीतिरुत्पादिताद्भुता । परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥७॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरियूथपः । सीतायाः शोकदीनायाः समीपमुपचक्रमे ॥८॥

पश्चात् मैं अपने प्राण का त्याग कर दूँगी । अर्थात् मेरे प्राणों का अन्त हो जायेगा ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् तथा जानकी का वार्तालापारम्भ' विषयक तैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

रावणरूपी शङ्का का निवारण

अत्यन्त दुःखों से संतप्त सीता के इन वचनों को सुनकर वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् नम्रतापूर्वक सान्त्वना देते हुए बोले ॥ १ ॥ हे देवी जानकि ! मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की आज्ञा से उनका सन्देश लेकर मैं तुम्हारे समीप दूत बनकर आया हूँ । हे देवि ! रामचन्द्र कुशलपूर्वक हैं और तुम्हारे कुशल की जिज्ञासा की है ॥ २ ॥ जो ब्राह्मास्त्र तथा वेदों के ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, उन्हीं दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने तुम्हारी कुशल पूछी है ॥ ३ ॥ तुम्हारे पति के प्राणप्रिय अनुचर, देदीप्यमान, महातेजस्वी, सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने शोकसंतप्त होकर, तुम्हें सिर झुकाकर प्रणामाञ्जलि समर्पित की है ॥ ४ ॥ नरकेसरी राम लक्ष्मण की कुशल वार्ता सुनकर जानकी रोम रोम से गद्गद हो गई तथा हनुमान् से बोली ॥ ५ ॥ यदि व्यक्ति आधि व्याधि से बचकर सौ वर्ष तक 'जीता रहे, तो जीवन के अन्त में कभी न कभी उसे आनन्द प्राप्त होता है । यह कल्याणमयी लौकिकी गाथा वास्तव में सत्य है ॥ ६ ॥ जानकी, हनुमान् के परस्पर मिलने से दोनों में एक दूसरे के प्रति अद्भुत स्नेह उत्पन्न हो गया । पश्चात् वे विश्वासपूर्वक आपस में वार्तालाप करने लगे ॥ ७ ॥ शोकसंतप्त सीता की उन बातों को सुनकर वायुपुत्र हनुमान् उनके अतिसमीप चले गए ॥ ८ ॥ ज्यों ज्यों हनुमान् जानकी के समीप जाते थे, त्यों त्यों यह रावण है, ऐसी सीता

यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति । तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥९॥
अहो धिग्दुष्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे । रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥१०॥
तामशोकस्य शाखां सा विमुक्त्वा शोककर्शिता । तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥११॥
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् । सा चैनं भयवित्रस्ता भूयो नैवाभ्युदैक्षत ॥१२॥
तं दृष्ट्वा वन्दमानं तु सीता शशिनिभानना । अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ॥१३॥
मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् । उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१४॥
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपधृत् । जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एवासि रावणः ॥१५॥
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर । संतापयसि मां भूयः संतप्तां तन्न शोभनम् ॥१६॥
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम् । मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात् ॥१७॥
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते । पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे ॥१८॥
गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर । चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ॥१९॥
अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेवं चिराहृता । प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ॥२०॥
स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् । पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ॥२१॥
नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् । न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ॥२२॥

की शङ्का बढ़ती गई ॥ ९ ॥ यदि यह रावण दूसरा रूप धारण करके आया है, तो इसने जो कुछ बातें कही हैं, वस्तुतः वे सब घृणा के योग्य हैं ॥ १० ॥ शोभनाङ्गी शोकसंतप्त दुर्बल सीता उस अशोक वृक्ष की डाली को छोड़कर वहीं भूमि पर बैठ गई ॥ ११ ॥ विशाल भुजा वाले हनुमान् ने पश्चात् जानकी को झुककर प्रणाम किया। किन्तु भयभीत जानकी ने उनकी ओर दृष्टिपात नहीं किया ॥ १२ ॥ हनुमान् को इस प्रकार प्रणाम करते हुए जानकर चन्द्रानना जानकी अ[illegible]पूर्वक लम्बी सांस लेकर वनवासी वीर से मधुर स्वर में बोली ॥ १३ ॥ यदि माया का अवलम्बन करने वाले तुम स्वयं वही मायावी रावण हो और मुझ दुःखिनी को पुनः दुःख दे रहे हो, तो यह अशोभनीय बात है ॥ १४ ॥ अपने रूप को छोड़कर जनस्थान में परिव्राजक के रूप में जिसको देखा था, वस्तुतः तुम वही रावण हो ॥ १५ ॥ मनमाना रूप धारण करने वाले हे निशाचर ! उपवास से दुर्बल मुझ दीन को जो तुम बार-बार दुःख देते हो, यह उपयुक्त नहीं ॥ १६ ॥ अथवा तुम्हारे प्रति यह जो मैं शङ्का कर रही हूँ, वह अन्यथा भी हो सकती है। क्योंकि तुम्हारे दर्शन के समय से मेरे मन में अत्यन्त वात्सल्य स्नेह उत्पन्न हो गया है ॥ १७ ॥ यदि वस्तुतः तुम रामचन्द्र के दूत के रूप में आए हो, तो तुम्हारा सर्वतः कल्याण हो। हे वनवासिश्रेष्ठ ! मैं तुमसे रामचन्द्र की कथा पूछती हूँ। क्योंकि रामचन्द्र की कथा मुझे प्रिय है ॥ १८ ॥ हे वनवासी वीर ! मेरे प्रियतम रामचन्द्र के गुणों की चर्चा करो। हे सौम्य ! जैसे नदी की धारा अपने तट का हरण करती है, वैसे ही तुम मेरे चित्त को आकृष्ट कर रहे हो ॥ १९ ॥ अहो ! स्वप्न कितना सुखकारी होता है जो चिरकाल से हरण की हुई मैं रामचन्द्र के भेजे हुए वनवासी वीर को दूतरूप में देख रही हूँ ॥ २० ॥ यदि मैं स्वप्न में भी लक्ष्मण के सहित वीर रामचन्द्र को देख लेती तो मुझे इतना अवसाद न होता। किन्तु दुर्भाग्य से स्वप्न भी मुझसे मात्सर्य (डाह) करता है ॥ २१ ॥ मैं इन घटनाओं को स्वप्न भी नहीं मानती क्योंकि स्वप्न में मैंने एक वनवासी व्यक्ति को देखा है और स्वप्नगत वनवासी को देखना अमङ्गल का हेतु माना गया है, किन्तु इस दृश्य में मुझे अपना अभ्युदय दिखाई दे रहा है ॥ २२ ॥ अन्यथा क्या यह मेरे चित्त की भ्रान्ति तो नहीं

किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् । उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका ॥२३॥
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः । संबुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् ॥२४॥
इत्येवं बहुधा सीता संप्रधार्य बलाबलम् । रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ॥२५॥
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा । न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥२६॥
सीतायाश्चिन्तितं बुद्ध्वा हनुमान् मारुतात्मजः । श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां संप्रहर्षयत् ॥२७॥
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा । राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥२८॥
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः । सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ॥२९॥
रूपवान् सुभगः श्रीमान् कंदर्प इव मूर्तिमान् । स्थानक्रोधः प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥३०॥
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः । अपकृष्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ॥३१॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि यत्फलम् । नचिराद्रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ॥३२॥
रोषप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः । तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥३३॥
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् । लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥३४॥
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् । रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ॥३५॥
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् । नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥३६॥

है अथवा उन्मादज कोई विकार तो नहीं है या अन्यथा रूप में दिखाई देने वाली मृगतृष्णिका तो नहीं है ॥ २३ ॥ अथवा इसे उन्माद नहीं कह सकते, क्योंकि मोह (मूर्छा) में ही उन्माद के लक्षण प्रतीत होते हैं । किन्तु मैं स्वस्थरूप में अपने आप को तथा वनवासी वीर को देख तथा समझ रही हूँ ॥ २४ ॥ इस प्रकार सीता ने शक्याशक्य का नाना प्रकार विचार करके नानावेषधारी राक्षसों के नाते उस वनवासी वीर को, यह रावण ही है, ऐसा समझा ॥ २५ ॥ तनुमध्यमा जनकपुत्री सीता हनुमान् के प्रति इस प्रकार बुद्धि निश्चित करके आगे उनसे कुछ न बोली ॥ २६ ॥ जानकी का इस प्रकार निश्चय जानकर वायुपुत्र हनुमान् श्रवणानुकूल वचनों के द्वारा सीता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे ॥ २७ ॥ देदीप्यमान सूर्य के समान तेजस्वी शीतल चन्द्र के समान सर्वजनप्रिय, देवधनद (कुवेर) के समान लोकप्रिय राजा ॥ २८ ॥ महायशस्वी, विष्णु के समान पराक्रमी, बृहस्पति के समान सत्यवादी तथा मधुरभाषी ॥ २९ ॥ रूपवान् तथा ऐश्वर्यवान्, कन्दर्प के समान कान्तिमान्, उचित स्थान में क्रोध का प्रयोग करने वाले, शत्रु पर प्रबल प्रहार करने वाले, जगत् में सर्वश्रेष्ठ, महारथी ॥ ३० ॥ जिस महात्मा की भुजच्छाया का आश्रय सभी लोग लेते हैं, (ऐसे जो रामचन्द्र हैं) उनको माया मृग रूप में आश्रम से दूर कर ॥ ३१ ॥ शून्य आश्रम में जिस राक्षसाधम के द्वारा तुम हरी गई हो उसका फल तुम देखोगी (कुत्सितकर्मकारी रावण मारा जायगा), बहुत शीघ्र ही सङ्ग्राम में पराक्रमी रामचन्द्र रावण का वध करेंगे ॥ ३२ ॥ क्रोध के द्वारा प्रहार किये हुए, देदीप्यमान अग्नि के समान राम के बाणों से वह रावण अवश्य मारा जायगा । उसी रामचन्द्र के भेजे हुए दूत के रूप में मैं तुम्हारे समीप आया हूँ ॥ ३३ ॥ तुम्हारे वियोग से दुःखी होकर मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र, महातेजस्वी सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मण ने तुम्हारे समीप कुशल समाचार भेजा है ॥ ३४ ॥ हे देवि ! रामचन्द्र के परममित्र वनवासी प्रजा के सम्राट् महाबाहु सुग्रीव ने तुम्हें प्रणाम करके तुम्हारे लिए कुशल सन्देश भेजा है ॥ ३५ ॥ प्रसिद्ध वनवासी राज्य के सम्राट् सुग्रीव ने तुम्हें सस्नेह कुशल सन्देश भेजा है । मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र, वनवासी सम्राट् सुग्रीव तथा महातेजस्वी लक्ष्मण तुम्हारा अहर्निश स्मरण करते हैं ॥३६॥

दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता । नचिराद्द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥३७॥
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् । अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः ॥३८॥
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् । कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ॥३९॥
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् । नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ॥४०॥
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रावणशङ्कानिवारणं नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

विश्वासोत्पादनम्

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् । उवाच वचनं सौम्यमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥
क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् । वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥ २ ॥
यानि रामस्य लिङ्गानि लक्ष्मणस्य च वानर । तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत्॥३॥
कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं रामस्य कीदृशम् । कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥

हे देवी वैदेहि ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि राक्षसियों के वश में होती हुई भी तुम अब तक जीवित हो । बहुत शीघ्र ही महारथी रामचन्द्र और महावीर लक्ष्मण को तुम देखोगी ॥३७॥ अनेकों वनवासी सैनिकों के मध्य में अमित ओज वाले पराक्रमी राजा सुग्रीव को भी तुम देखोगी । मैं सम्राट् सुग्रीव का सचिव हनुमान् नाम का वनवासी हूँ ॥ ३८ ॥ विशाल समुद्र को लांघकर; एक प्रकार से दुरात्मा रावण के मस्तक पर चरण-प्रहार करके मैंने इस लङ्का नगरी में प्रवेश किया है ॥ ३९॥ अपने पराक्रम का आश्रय लेकर, तुम्हें देखने के लिये मैं यहाँ आया हूँ । हे देवि ! जिस रावण को तुम समझ रही हो, वह मैं नहीं हूँ । इस प्रकार की आशङ्का जो तुम्हारे मन में आई हो, उसको त्याग दो और मेरी कही हुई बातों पर विश्वास करो ॥४०॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रावणरूपी शङ्का का निवारण' विषयक चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३४॥

पैंतीसवां सर्ग

जानकी को विश्वास दिलाना

वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् के द्वारा रामचन्द्र की इस प्रकार कथा सुनकर मिथिलेशकुमारी जानकी नम्रता पूर्वक मधुर शब्दों में इस प्रकार बोली ॥ १ ॥ रामचन्द्र से तुम्हारा संसर्ग कहाँ हुआ ? लक्ष्मण को तुम किस प्रकार जानते हो ? नागरिक राम और वनवासी आप का सम्पर्क कैसे हुआ ? ॥ २ ॥ रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के शरीरगत विशेष चिह्नों को मुझसे फिर कहो, जिससे शङ्काजनित मेरा दुःख दूर हो ॥ ३ ॥ राम, लक्ष्मण के अङ्गों की रचना कैसी है, उनका रूप सौन्दर्य किस प्रकार का है, उनकी जाँघें तथा भुजाएँ किस प्रकार की हैं ? ये बातें मुझे बताओ ॥ ४ ॥ पश्चात् विदेहकुमारी जानकी के ऐसा पूछने पर पवनसुत

एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनुमान् पवनात्मजः । ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥
जानती वत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि । भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै । लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥७॥
रामः कमलपत्राक्षः सर्वसत्त्वमनोहरः । रूपदाक्षिण्यसंपन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ ८ ॥
तेजसादित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः । बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥ ९ ॥
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता । रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः ॥१०॥
रामो भामिनि लोकेऽस्मिंश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता । मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥११॥
अर्चिष्मानर्चितो नित्यं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः । साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥१२॥
राजविद्याविनीतश्च ब्राह्मणानामुपासिता । श्रुतवाञ्शीलसंपन्नो विनीतश्च परंतपः ॥१३॥
यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः । धनुर्वेदे च वेदेषु वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥१४॥
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः । गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो देवि जनैः श्रुतः ॥१५॥
दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । समः समविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥१६॥
त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः । त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ॥१७॥

हनुमान रामचन्द्र का तत्त्वतः वर्णन करने लगे ॥ ५ ॥ हे विदेहकुमारि ! अपने पति रामचन्द्र तथा देवर लक्ष्मण की अङ्गरचना को जानती हुई भी तुम मुझसे पूछ रही हो । हे कमलनयनि ! यह मेरे लिये प्रसन्नता तथा सौभाग्य की बात है ॥ ६ ॥ हे विशालनेत्रे । रामचन्द्र के तथा लक्ष्मण के शरीरगत जिन चिह्नों को मैंने देखा है, उनको मैं कह रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो ॥ ७ ॥ हे जानकि ! कमल के समान नेत्र, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले तथा औदार्यगुण से संपन्न रामचन्द्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ८ ॥ तेज में देदीप्यमान सूर्य के समान, क्षमा सहिष्णुता में पृथिवी के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान, यश में इन्द्र के समान रामचन्द्र हैं ॥ ९ ॥ शत्रुतापी रामचन्द्र अपने स्वजन तथा जीवमात्र के रक्षक हैं, अपने आचार व्यवहार तथा धर्म के भी वे परम रक्षक हैं ॥ १० ॥ हे जानकि ! रामचन्द्र चारों वर्णों के तथा जीवमात्र के रक्षक है । मानवीय मर्यादा के निर्माता तथा उसके पालनकर्ता हैं ॥ ११ ॥ देदीप्यमान तथा मानवमात्र से सम्मानित; ब्रह्मचर्यव्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले हैं । महापुरुषों के उपकार को जानने वाले हैं, तथा शुभकर्मों के प्रचारक हैं ॥ १२ ॥ राजनीति में निष्णात, ब्राह्मणों के उपासक हैं । ज्ञानवान्, चरित्र-संपन्न, अत्यन्त विनीत तथा शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले हैं ॥ १३ ॥ वे यजुर्वेद विशारद हैं, वेदज्ञों से सदा सम्मानित हैं । धनुर्वेद, वेद, वेदाङ्गों में पारङ्गत हैं ॥ १४ ॥ उनके कन्धे समुन्नत हैं, भुजाएँ विशाल हैं, शङ्ख की तरह चढ़ाव उतार गर्दन वाले तथा कमनीय मुखमण्डल वाले हैं । गले की हड्डियाँ गुप्त हैं, नेत्र रक्त वर्ण वाले हैं, लोक समाज में 'राम' इस नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ कण्ठस्वर दुन्दुभि वाद्य के समान है । शोभनीय वर्ण वाले तथा प्रतापी हैं । शरीर का संपूर्ण गठन उपयुक्त है । अलग अलग सारे अङ्ग अपने स्थान पर उपयुक्त हैं । वर्ण की दृष्टि से युवावस्था में प्रवेश करने वाले हैं ॥ १६ ॥ जङ्घा, भुजा, मुष्टि ये तीनों उनके स्थिर हैं । भौंहें, केश तथा अंगुलियाँ उनकी लम्बी हैं । श्मश्रु (मूँछें), वृषण (अण्डकोष) तथा जानु (घुटने के ऊपर का भाग) सम हैं । नाभि, कुक्षि तथा कक्ष ये तीनों गुप्त हैं । नेत्र का प्रान्त, नखपङ्क्ति तथा पैर के तलवे लाल वर्ण के हैं । चर्म की रेखाएँ, केश तथा कूर्च (दाढ़ी के बाल) ये तीनों स्निग्ध हैं । वचन, गमन तथा हास्य ये तीनों गम्भीर हैं ॥ १७ ॥ उदर और

त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् । चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुःसमः ॥१८॥
चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः । महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ॥१९॥
दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् । षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥२०॥
सत्यधर्मपरः श्रीमान् संग्रहानुग्रहे रतः । देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥२१॥
भ्राता च तस्य द्वैमात्रः सौमित्रिरपराजितः । अनुरागेण रूपेण गुणैश्चैव तथाविधः ॥२२॥
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनसमुत्सुकौ । विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिरभिसंगतौ ॥२३॥
त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुन्धराम् । ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् ॥२४॥
ऋश्यमूकस्य पृष्ठे तु बहुपादपसंकुले । भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ॥२५॥
वयं तु हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसंगरम् । परिचर्यास्महे राज्यात्पूर्वजेनावरोपितम् ॥२६॥
ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ । ऋश्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ ॥२७॥
स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः । अवप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ॥२८॥

कण्ठ में त्रिवली (तीन सिलवटें) हैं। पैर के तलवे, पैर की रेखाएँ, स्तनमध्यभाग गहरे हैं । गला, पृष्ठ भाग, शेप (पुरुष चिह्न) तथा दोनों जङ्घा ये सब मध्यम वृत्ति के हैं। मस्तक पर तीन भंवरियाँ, अङ्गुष्ठ में चार रेखाएँ हैं। दो हाथ, दो पैर ये चारों लम्बे हैं। दोनों हथेलियाँ, कपोल, चिबुक (ठुड्डी) समान हैं॥१८॥ उनके शरीर के चौदह जोड़े (दोनों भौंहें, दोनों नासिकापुट, दोनों नेत्र, दोनों श्रवण, दोनों अधर, दोनों स्तन दोनों कोहनी) समान हैं। आगे के चार दाँत नुकीले हैं। चार गति-सिंह, व्याघ्र, गज, वृषभ (बैल) के समान हैं। ओठ, ठुड्डी, नाक सुन्दर हैं। पाँच—वचन, मुख, नख, लोम तथा त्वचाएँ कोमल हैं। दोनों बाहु, श्वास की दोनों नली, दोनों जङ्घे तथा दोनों जानु ये आठ लम्बे हैं॥ १९॥ उनके दस अङ्ग अर्थात् मुख, नेत्र, मुखविवर, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, पैर, हाथ ये कमल के समान रक्तवर्ण तथा कमल चिह्न से चिह्नित हैं। उनके दस अङ्ग (वक्षस्थल, मस्तक, गला, भुजा, कन्धे, नाभि, चरण, पृष्ठ और कान) विशाल हैं। यश, तेज, तथा पुण्यकर्म ये तीनों सर्वत्र फैले हैं। मातृकुल, पितृकुल ये दोनों पवित्र हैं। पार्श्व (बगल) कुक्षि, वक्षःस्थल, नासिका, स्कन्ध और ललाट ये छ समुन्नत हैं। अङ्गुलियों का अग्रभाग, केश, लोम, नख, त्वचा, कूर्च (दाढ़ी के बाल), बुद्धि, दृष्टि तथा स्नायु ये नौ सूक्ष्म हैं। धर्म, अर्थ, काम इन तीनों का समुचित सेवन रामचन्द्र करते हैं॥ २०॥ रामचन्द्र सदा सत्यधर्मपरायण, कमनीय कान्ति वाले, आदान प्रदान में निपुण, देश काल के विभाग को जानने वाले (अर्थात् देश काल के अनुसार कर्तव्य निश्चय करने वाले) तथा सर्वजन प्रियवादी हैं॥ २१॥ रामचन्द्र के वैमात्र भ्राता महातेजस्वी लक्ष्मण रामचन्द्र के समान ही अनुराग, रूप एवं गुण में परिपूर्ण हैं॥ २२॥ वे दोनों नरकेसरी राम लक्ष्मण तुम्हारे दर्शन के लिये उत्सुक, दक्षिणारण्य का संपूर्ण भूभाग खोजते हुए हम लोगों से मिले॥ २३॥ तुम्हीं को ढूंढते हुए वे वन के भूभाग का भ्रमण कर रहे थे। उसी समय अपने बड़े भाई के द्वारा राज्यच्युत किये गए वनवासियों के राजा सुग्रीव को देखा॥ २४॥ बहुत प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण ऋष्यमूक पर्वत की तलहटी में अपने बड़े भाई के आतङ्क से भीत प्रियदर्शन सुग्रीव को (दूर से ही देखा)॥ २५॥ अपने बड़े भाई के द्वारा राज्याधिकार से च्युत किये गए सत्यव्रती वनवासी राजा सुग्रीव की हम लोग परिचर्या कर रहे थे॥ २६॥ तत्पश्चात् वल्कलवसनधारी, हाथ में श्रेष्ठ धनुष धारण करने वाले वे दोनों नरकेसरी राम, लक्ष्मण ऋश्यमूक पर्वत के सुन्दर स्थल में आए॥ २७॥ वनवासियों में श्रेष्ठ राजा सुग्रीव धनुर्धारी राम, लक्ष्मण को देखकर भय से उद्विग्न होकर पर्वत के शिखर पर चढ़ गए॥ २८॥ पश्चात् उस शिखर पर वनवासी सम्राट् सुग्रीव सुव्यवस्थित हो गए और उन राम लक्ष्मण के

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यवस्थितः । तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ॥२९॥
तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू । रूपलक्षणसंपन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥३०॥
तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ । पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ॥३१॥
निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने । तयोरन्योन्यसंलापाद्भृशं प्रीतिरजायत ॥३२॥
तत्र तौ प्रीतिसंपन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ । परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ॥३३॥
तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः । स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तमुरुतेजसा ॥३४॥
ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः । लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३५॥
स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः । तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ॥३६॥
ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया । यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ॥३७॥
तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः । संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ॥३८॥
तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च । स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विगतचेतसि ॥३९॥
तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तव । तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ॥४०॥
प्रादीपयन् दाशरथेस्तानि शोकहुताशनम् । शयितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ॥४१॥
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ॥
तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः । राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥४२॥

समीप शीघ्र मुझे ही भेजा ॥ २९ ॥ राजा सुग्रीव के आदेश से मैं रूप सौन्दर्य से संपन्न उन नरकेसरी राम लक्ष्मण के समीप हाथ जोड़कर उपस्थित हो गया ॥ ३० ॥ मेरे द्वारा सम्पूर्ण बातें जानकर वे दोनों भाई राम, लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हो गए। पश्चात् पुरुष श्रेष्ठ दोनों बन्धुओं को कन्धे पर बैठाकर सम्राट् सुग्रीव के समीप ले गया ॥ ३१ ॥ वहाँ पर जाकर महात्मा सुग्रीव से उन दोनों बन्धुओं का यथार्थ परिचय कराया। रामचन्द्र तथा सुग्रीव के परस्पर संभाषण से दोनों में अगाध मैत्री उत्पन्न हो गई ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् धवल कीर्ति से परिपूर्ण अयोध्या के सम्राट् रामचन्द्र तथा वनवासि-सम्राट् सुग्रीव ने अपने अपने पूर्ववृत्तान्त को सुन सुनाकर एक दूसरे को आश्वासन दिया ॥ ३३ ॥ स्त्री के निमित्त उग्र विचार वाले अपने बड़े भाई वाली के द्वारा निष्कासित सुग्रीव को रामचन्द्र ने धीरज बँधाया ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् तुम्हारे वियोग जनित रामचन्द्र के सारे कष्टों का वर्णन लक्ष्मण ने वनवासि-सम्राट् सुग्रीव से निवेदन किया ॥ ३५ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव लक्ष्मण की इन बातों को सुन कर अत्यन्त उदासीन तथा राहुग्रस्त सूर्य के समान प्रभाहीन हो गए ॥ ३६ ॥ पश्चात् तुम्हारे शरीर पर शोभा देने वाले वे आभूषण जो राक्षस के द्वारा हरण करते समय पृथ्वी तल पर गिरे थे ॥ ३७ ॥ उन सारे आभूषणों को वनवासि सेनापतियों ने लाकर प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्र को दिखाया, किन्तु तुम्हारे स्थानादि का पता उनको भी नहीं लग सका ॥ ३८ ॥ वे संपूर्ण आभूषण, जिनका चयन मैंने ही किया था, जो कुछ शब्द करने वाले तथा इधर-उधर बिखरे थे, मूर्छित राम को लाकर दिये गए ॥ ३९ ॥ उन दर्शनीय आभूषणों को अनेकों प्रकार हृदय से लगाकर देवतुल्य पराक्रमी उस रामचन्द्र ने अनेक प्रकार से विलाप किया ॥ ४० ॥ उन आभूषणों को देखकर रामचन्द्र की शोकाग्नि और प्रदीप्त हो गई और चिरकाल तक महामना रामचन्द्र दुःख से मूर्छित होकर पृथिवी पर पड़े रहे। उस समय मैंने नाना प्रकार से उन्हें समझा बुझाकर पुनः उठाया ॥ ४१ ॥ उन मूल्यवान् आभूषणों को बार-बार देखकर तथा लक्ष्मण को दिखा कर पुनः सुग्रीव को समर्पित कर दिया ॥ ४२ ॥ हे आर्ये जानकि ! आपके वियोग से

स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते । महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥४३॥
त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् । तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः ॥४४॥
तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते । महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥४५॥
काननानि सुरम्याणि नदीः प्रस्रवणानि च । चरन्न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥४६॥
स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः । समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥४७॥
सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा । समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ॥४८॥
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः । किष्किन्धां समुपागम्य वाली युधि निपातितः ॥४९॥
ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे । सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ॥५०॥
रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत । हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमिहागतम् ॥५१॥
स्वराज्यं प्राप्य सुग्रीवः समानीय हरीश्वरान् । त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥५२॥
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसा । अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥५३॥
ततस्तु मार्गमाणास्ते सुग्रीववचनातुराः । चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥५४॥
अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसूनुर्महाबलः । प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥५५॥
तेषां नो विप्रनष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे । भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ॥५६॥

रामचन्द्र अत्यन्त संतप्त हो रहे हैं। प्रज्वलित अग्नि से जलते हुए पर्वत के समान जल रहे हैं ॥ ४३ ॥ तुम्हारे कारण उनकी निद्रा भङ्ग हो गई है तथा शोक-चिन्ता बढ़ गई है, जिस प्रकार त्रिविध अग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य, प्राजापत्य) अग्नि शाला को संतप्त कर देती है ॥ ४४ ॥ तुम्हारे वियोगजनित शोक से रामचन्द्र अत्यन्त चञ्चलचित्त तथा कम्पायमान हो गए हैं, जिस प्रकार भूमिकम्प द्वारा कोई महान् पर्वत कम्पायमान हो जाता है ॥ ४५ ॥ हे राजकुमारि ! तुमसे वियुक्त हो जाने पर रमणीय वन, नदी, तथा झरनों के समीप भ्रमण करने पर भी वे प्रसन्न नहीं होते ॥ ४६ ॥ हे जानकि ! मित्र, बन्धु-बान्धवों सहित रावण को मारकर नरकेसरी रामचन्द्र शीघ्र ही तुमको प्राप्त होंगे ॥ ४७ ॥ रामचन्द्र तथा सुग्रीव इन दोनों वीरों ने मिलकर बालीवध तथा तुम्हारे अन्वेषण की प्रतिज्ञा की है ॥ ४८ ॥ पश्चात् दोनों वीर राजकुमारों के साथ वनवासी राजा सुग्रीव ने युद्ध में बाली को मारा ॥ ४९ ॥ सङ्ग्राम में शीघ्रतापूर्वक बाली को मारकर सम्पूर्ण वनवासी जातियों का सम्राट् सुग्रीव को बनाया ॥ ५० ॥ हे देवि ! राम सुग्रीव की इस प्रकार परस्पर मैत्री हुई। मुझ हनुमान् को तुम उनका दूत समझो और दूतरूप में हो मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ ॥ ५१ ॥ अपने गए हुए राज्य को पाकर राजा सुग्रीव ने अपने बलवान् वनवासी सैनिकों को बुला कर तुम्हारे अन्वेषण के लिये दसों दिशाओं में भेजा है ॥ ५२ ॥ महान् ओज वाले वनवासी राजा सुग्रीव का आदेश पाने पर विशाल पर्वतकाय हम लोगों ने पृथ्वी के चारों ओर प्रस्थान किया ॥ ५३ ॥ सम्राट् राजा सुग्रीव की आज्ञा से तुम्हारा अन्वेषण करते हुए मैं तथा अन्य वनवासी लोग सम्पूर्ण पृथिवी पर घूम रहे हैं ॥ ५४ ॥ अत्यन्त बलवान् तथा कान्तिमान् अङ्गद नामक बालिपुत्र, जो वनवासियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे सेना के तृतीय भाग को लेकर इस अन्वेषण में स्वयं उपस्थित हुए हैं ॥ ५५ ॥ हम लोग विन्ध्यपर्वतमाला में अन्वेषण करते हुए मार्ग भूल गए। इसलिये शोकसंतप्त हम लोगों को जो अवधि दी गई थी, उससे अधिक कई दिन बीत गए ॥ ५६ ॥ कार्य में सफलता न मिलने पर, दी हुई अवधि के समाप्त हो जाने पर

ते वयं कार्यनैराश्यात् कालस्यातिक्रमेण च । भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥५७॥
विचित्य वनदुर्गाणि गिरिप्रस्रवणानि च । अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥५८॥
ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे । दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान् वानरपुंगवान् ॥५९॥
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः । तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ॥६०॥
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः । तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां मुमूर्षताम् ॥६१॥
कार्यहेतोरिवायातः शकुनिर्वीर्यवान् महान् । गृध्रराजस्य सोदर्यः संपातिर्नाम गृध्रराट् ॥६२॥
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् । यवीयान् केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः ॥६३॥
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः । अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ॥६४॥
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथातथम् । जटायुषो वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ॥६५॥
त्वमाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संपातेः प्रीतिवर्धनम् ॥६६॥
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः संप्रस्थिता वयम् । विन्ध्यादुत्थाय संप्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तरम् ॥६७॥
त्वद्दर्शनकृतोत्साहा हृष्टास्तुष्टाः प्लवङ्गमाः । अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपस्थिताः ॥ ६८॥
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीतास्त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः । अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं प्रेक्ष्य सीदतः ॥६९॥
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः । लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ॥७०॥

सफलता निराशा के कारण तथा वनवासी राजा सुग्रीव के भय के कारण हम लोग प्राण त्याग करने के लिए तत्पर हो गए ॥ ५७ ॥ दुर्गम पर्वत, नदी, झरनों में खोजने पर भी जब देवी का पता नहीं चला, तब हम लोगों ने प्राण-त्याग करने का निश्चय कर लिया ॥ ५८ ॥ उस पर्वत की चोटी पर हम लोग उपवास पूर्वक धरना देने लगे। हम सभी वनवासी वीरों को उपवासपूर्वक धरना देते हुए देखकर ॥ ५९ ॥ शोक समुद्र में डूबते हुए अर्थात् अत्यन्त शोक संतप्त होकर अङ्गद विलाप करने लगे। तुम्हारा पता न लगना, इस प्रकार बाली का वध होना ॥ ६० ॥ हम लोगों का उपवासपूर्वक मरण का निश्चय करना, जटायु का मारा जाना (स्मरण कर अङ्गद विलाप करने लगे)। स्वामी सुग्रीव के आदेश से, अवधि बीत जाने पर निराशा से प्राण त्याग करने के लिये उद्यत ॥६१॥ हम लोगों के समीप मानो इसी कार्य से जटायु का सहोदर बन्धु सम्पाति नाम का भूतपूर्व गृध्रकूट (गिद्धौर) का राजा उपस्थित हुआ ॥ ६२ ॥ अपने भाई के वध का समाचार सुनकर सम्पाति क्रोधपूर्वक यह वचन बोला—मेरे छोटे भ्राता का वध किसने कर दिया, और वह मारकर कहाँ गिराया गया है ॥ ६३ ॥ हे वनवासी वीरों! मेरी इच्छा है कि तुम इस वृत्तान्त को मुझसे कहो। पश्चात् जनस्थान में तुम्हारी रक्षा करते हुए जो जटायु का वध हुआ, अङ्गद ने उस वृत्तान्त को सुनाया ॥ ६४ ॥ तुम्हारे निमित्त भयङ्कर राक्षस के द्वारा जो जटायु का वध हुआ था, उस संपूर्ण वृत्तान्त को यथावत् सुनकर अरुणपुत्र सम्पाति को बहुत दुख हुआ ॥ ६५ ॥ हे शुभाङ्गि! रावणालय लङ्का में तुम रहती हो, यह समाचार सम्पाति ने ही हम लोगों को बताया। प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले सम्पाति के इस वचन को सुनकर ॥ ६६ ॥ प्रमुख अङ्गद आदि हम सभी लोग विन्ध्य पर्वत से चलकर दक्षिण सागर के तट पर पहुँचे ॥ ६७ ॥ तुम्हारे दर्शन की लालसा से उत्साहित हृष्ट, पुष्ट अङ्गदादि प्रमुख सभी वनवासी समुद्रतट पर आये ॥ ६८ ॥ तुम्हारे दर्शन की इच्छा से समुद्र तट पर आये हुये भयभीत वे सभी पुनः चिन्तामग्न हो गये। पश्चात् मैंने सागर को देखकर भयभीत हुए वनवासी सैनिकों के ॥ ६९ ॥ भयङ्कर भय को दूर करके सौ योजन समुद्र को पार किया, तथा रात्रि के समय राक्षस परिपूर्ण लङ्का नगरी में मैंने प्रवेश किया ॥७०॥

रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकपरिप्लुता । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ॥७१॥
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् । तं मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ॥७२॥
सुग्रीवसचिवं देवि बुध्यस्व पवनात्मजम् । कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥७३॥
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणश्च सुलक्षणः । तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ॥७४॥
अहमेकस्तु संप्राप्तः सुग्रीववचनादिह । मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ॥७५॥
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा । दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ॥७६॥
अपनेष्यामि संतापं तवाधिगमशंसनात् । दिष्ट्या हि मम न व्यर्थं देवि सागरलङ्घनम् ॥७७॥
प्राप्स्याम्यहमिदं दिष्ट्या त्वद्दर्शनकृतं यशः । राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ॥७८॥
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् । माल्यवान्नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ॥७९॥
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः । स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ॥८०॥
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरत् । तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ॥८१॥
हनुमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा । विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः ॥८२॥
अचिराद्राघवो देवि त्वामितो नयितानघे । एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ॥८३॥
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमवगच्छति । अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण च जानकी ॥८४॥

इस लङ्का नगरी में रावण को तथा तुमको शोक संतप्त मैंने देखा। हे अनिन्दिते! जो कुछ घटना घटी थी वह संपूर्ण वृत्तान्त यथावत् मैंने तुम्हें सुनाया ॥ ७१ ॥ मैं दशरथ-राजकुमार रामचन्द्र का दूत हूँ। हे देवि! तुम मुझसे भाषण करो। रामचन्द्र के लिये उद्योग करने वाला मैं तुम्हारे लिये ही यहाँ आया हूँ ॥ ७२ ॥ मैं राजा सुग्रीव का सचिव, तथा वायुदेव का पुत्र हूँ। हे देवि! मुझे ऐसा समझो। सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आपके पति रामचन्द्र कुशल पूर्वक हैं ॥७३॥ उस बलवान् पराक्रमी तुम्हारे पति के हित में सदा संलग्न तथा अपने बड़े की आज्ञा पालने में सदा तत्पर, लक्ष्मण भी कुशल पूर्वक हैं ॥ ७४ ॥ राजा सुग्रीव की आज्ञा से मैं अकेला ही यहाँ आया हूं। अकेला सहायता के विना घूमता हुआ मैं ॥ ७५ ॥ तुम्हारा पता लगाने के लिये इस दक्षिण दिशा में प्रविष्ट हुआ हूँ। यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारे अदर्शन से वनवासी सैनिकों को जो संताप हो रहा था, मैं ॥ ७६ ॥ तुम्हारी प्राप्ति के समाचारों से उनके उस संताप को दूर कर दूंगा। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि मेरा सागर का लांघना व्यर्थ नहीं गया ॥ ७७ ॥ हे देवि! तुम्हारे दर्शन की कीर्ति मुझे प्राप्त होगी, तथा अति शीघ्र ही महापराक्रमी रामचन्द्र तुम्हारे समीप आवेंगे ॥ ७८ ॥ पुत्र बन्धु-बान्धवों सहित राक्षसराज रावण को मारेंगे। हे वैदेहि! पर्वतों में अतिश्रेष्ठ माल्यवान् नाम का एक पर्वत है ॥ ७९ ॥ मेरे पूज्य पिता वनावसी केसरी पर्वत को गोकर्ण नामक चोटी पर गये। वनवासी मेरे पूज्य पिता देवर्षियों की आज्ञा से सागर के पवित्र तीर्थ (तट) पर गये ॥८०॥ और वहाँ उनको शम्बसादन नामक असुर का वध करना पड़ा। उसी वनवासी केसरी की धर्मपत्नी से मैं वायु के द्वारा उत्पन्न हुआ ॥८१॥ अपने पराक्रम तथा बल के कारण ही इस लोक में हनुमान् नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ। हे वैदेहि! तुमको विश्वास उत्पन्न कराने के लिये ही रामचन्द्र के गुणों का तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ८२ ॥ हे देवि! शीघ्र ही रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र तुमको यहाँ से ले जायेंगे, यह निश्चित है। हनुमान् के द्वारा कथित चिह्नों से तथा अन्य हेतुओं से, शोक संतप्त सीता को पूर्ण विश्वास हो गया ॥ ८३ ॥ यह रामचन्द्र का दूत ही है, ऐसा सीता को निश्चित हो गया। इन समाधानों से जानकी अत्यन्त प्रसन्न हो गई, तथा प्रसन्नता के कारण ॥ ८४ ॥ उसके दोनों नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। लाल तथा श्वेत वर्ण के नेत्रों से युक्त, उनका

नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्मभ्यां मुमोचानन्दजं जलम्। चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ॥८५॥
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट्। हनुमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा ॥८६॥
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम्। एतत्ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि ॥८७॥
किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥

हतेऽसुरे संयति शम्बसादने कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात्।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥८८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विश्वासोत्पादनं नाम पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः

अङ्गुलीयकप्रदानम्

भूय एव महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः। अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥
वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः। रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

मुखमण्डल ॥८५॥ राहुमुक्त चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित होने लगा। इतने विमर्श के पश्चात् हनुमान् को यह वनवासी दूत ही है, ऐसा समझा, अन्यथा यह रावण है, यह धारणा जाती रही ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात् उत्तर के रूप में शोभनशीला जानकी से हनुमान् यह वचन बोले हे मिथिलेशकुमारि! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का समाधान कर दिया, इसलिये अब तुम धैर्य धारण करो। अब आज्ञा दो कि मैं क्या करूँ। यदि तुम्हारी रुचि हो, तो मैं लौट जाऊँ ॥ ८७ ॥ महर्षियों की प्रेरणा से वनवासी वीर केसरी के द्वारा शम्बसादन के मारे जाने पर केसरी की स्त्री अञ्जना में वायु के द्वारा क्षेत्रज रूप में मैं उत्पन्न हुआ हूँ। हे मैथिलि! मैं अपने पिता के समान ही बलादि में प्रभाव रखता हूँ ॥ ८८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'जानकी को विश्वास दिलाना' विषयक पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

अंगूठी का प्रदान करना

जानकी को विश्वास दिलाने के लिये महातेजस्वी, पवनसुत हनुमान् पुनः नम्रतापूर्वक ये वचन बोले ॥ १ ॥ हे पुण्यशीले! वनवासी मैं बुद्धिमान्, मर्यादापुरुषोत्तम, भगवान् रामचन्द्र का दूत हूँ। हे देवि! रामनामाङ्कित यह अंगूठी है, इस पर दृष्टिपात करो ॥ २ ॥ महात्मा रामचन्द्र के द्वारा दी हुई अंगूठी, मैं

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना। समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम्। भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ ४ ॥
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम्। बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ५ ॥
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तृसंदेशहर्षिता। परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ ६ ॥
विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम। येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ ७ ॥
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः। विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥ ८ ॥
न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ। यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणान्नापि संभ्रमः ॥ ९ ॥
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्। यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥१०॥
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम्। पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥११॥
दिष्ट्या स कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः। लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥१२॥
कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्। महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥१३॥
अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे। ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥१४॥
कच्चिन्न व्यथितो रामः कच्चिन्न परितप्यते। उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥१५॥
कच्चिन्न दीनः संभ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति। कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥१६॥

तुम्हारे विश्वास के लिये लाया हूँ। तुम्हारे दुःखों का अन्त हो गया है। पूर्ण विश्वास करो। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥ अपने पति के कर का आभूषण लेकर स्नेहमय दृष्टि से निरीक्षण करती हुई पतिदेव ही मुझ से मिल गये हैं, जानकी इस प्रकार प्रसन्न हुई ॥ ४ ॥ श्वेत तथा लाल वर्ण वाले, विशाल नेत्रों से युक्त हर्ष के कारण देदीप्यमान उसका मुखमण्डल राहुमुक्त चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित होने लगा ॥ ५ ॥ लज्जावती वह बाला जानकी पति का सन्देश पाकर अत्यन्त हर्षित हो गई। हनुमान् को अपना पवित्र प्रिय पात्र समझ कर उनकी बार-बार प्रशंसा करने लगी ॥६॥ हे वनवासी वीर! तुम महान् पराक्रमी हो, पूर्ण समर्थ हो, तथा बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ हो, क्योंकि तुमने एकाकी ही दुर्गमनीय इस लङ्का में प्रवेश किया है ॥७॥ सौ योजन वाले विस्तृत, मकरादि जन्तुओं से परिपूर्ण इस समुद्र को अपने प्रशंसनीय पराक्रम के द्वारा लांघते हुये तुमने इसे गोष्पद के समान बना दिया ॥८॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ वीर! मैं तुमको साधारण वनवासी नहीं समझती क्योंकि तुम्हें रावण से भी न भय है, न कुछ उद्वेग ही है ॥ ९ ॥ यदि तुम आत्मविश्वासी रामचन्द्र के द्वारा भेजे गये हो तो हे वनवासिश्रेष्ठ! अब तुम मुझसे खुले हृदय से बातें कर सकते हो ॥ १० ॥ शत्रु विजयी अजेय रामचन्द्र अपरीक्षित अवस्था में पूर्ण पराक्रम के विना जाने दूतकर्म में तुम्हें नहीं भेज सकते, विशेषकर मेरे समीप ॥११॥ यह प्रसन्नता तथा सौभाग्य की बात है कि सत्यव्रती धर्मात्मा रामचन्द्र तथा महातेजस्वी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सकुशल हैं ॥ १२ ॥ हे तात! यदि ककुत्स्थशिरोमणि रामचन्द्र सकुशल हैं, तो मेरे उद्धार के लिये समुद्रपर्यन्त भूमण्डल को प्रलयाग्नि के समान अपने क्रोध से भस्म क्यों नहीं कर देते ॥ १३ ॥ अथवा शक्ति संपन्न वे दोनों राजकुमार राम लक्ष्मण देवमण्डल को भी दण्डित करने में समर्थ हैं, किन्तु दुर्भाग्य से अभी मेरे ही दुःखों का अन्त नहीं आया है ॥ १४ ॥ मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र दुःख का अनुभव तो नहीं करते अथवा सन्ताप तो नहीं करते? मेरे हरण के पश्चात् मेरे उद्धार के लिये प्रयत्न तो करते हैं? ॥ १५ ॥ रामचन्द्र कहीं अधीर तो नहीं हो गये। उद्विग्न तो नहीं होते, किंकर्तव्यविमूढ तो नहीं हो गये। राजकुमार रामचन्द्र पुरुषार्थ तो करते हैं ॥ १६ ॥ शत्रुञ्जयी रामचन्द्र मित्रों से मित्रता

द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते । विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन्मित्रेषु च परंतपः ॥१७॥
कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते । कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥१८॥
कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः । कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥१९॥
कच्चिन्न विगतस्नेहः विवासान्मयि राघवः । कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥२०॥
सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः । दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति ॥२१॥
कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च । अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥२२॥
मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः । कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति ॥२३॥
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः । ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥२४॥
वानराधिपतिः श्रीमान् सुग्रीवः कच्चिदेष्यति । मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥२५॥
कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः । अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान् विधमिष्यति ॥२६॥
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे । द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥२७॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥२८॥
धर्मापदेशात्त्यजतश्च राज्यं मां चाप्यरण्यं नयतः पदातिम् ।
नासीद् व्यथा यस्य न भीर्न शोकः कच्चित्स धैर्यं हृदये करोति ॥२९॥

के नाते मित्रों में साम.दाम इन दो उपायों का प्रयोग तो करते हैं ? उसी प्रकार शत्रुओं के विषय में विजेता रामचन्द्र दान, भेद, दण्ड इन तीन उपायों का प्रयोग तो करते हैं ॥ १७ ॥ रामचन्द्र मित्रों का संग्रह तो करते हैं ? या मित्रों के द्वारा सम्मानित होते हैं ? कल्याण मित्र वाले रामचन्द्र मित्रों के द्वारा सम्मानित होते हैं क्या ॥१८॥ राजकुमार रामचन्द्र देव की प्रसन्नता के लिये उनकी उपासना करते हैं क्या ? पुरुषार्थ तथा भाग्य इन दोनों का अभिनन्दन करते हैं क्या ? ॥१९॥ मुझे अपने से दूर होने के कारण उन्होंने मेरे प्रति स्नेह शिथिल तो नहीं कर दिया ? इस अगाध समुद्र से क्या वे मेरा उद्धार करेंगे ॥ २० ॥ अब तक रामचन्द्र को सुखों का अनुभव था, दुःखों का नहीं । अत्यन्त दुःख पाकर वे उद्विग्न तथा विचलित तो नहीं होते ॥ २१ ॥ माता कौसल्या, सुमित्रा तथा भ्रातृवत्सल भरत का कुशल संवाद रामचन्द्र को मिलता है क्या ? ॥२२॥ माननीय रामचन्द्र मेरे वियोगजनित शोक के कारण अन्यमनस्क तो नहीं हो गये । रामचन्द्र मेरा उद्धार करेंगे क्या ॥ २३ ॥ भ्रातृवत्सल भरत मन्त्रियों से अभिरक्षित अजेय अक्षौहिणी सेना को मेरे उद्धार के लिये भेजेंगे क्या ? ॥ २४ ॥ वनवासियों के सम्राट् श्रीमान् महाराज सुग्रीव दन्त-नख अस्त्र वाले अपनी वनवासी सेना के सहित यहाँ आयेंगे क्या ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दवर्धन, वीरशिरोमणि लक्ष्मण अपनी बाण वर्षा से राक्षसों का विध्वंस करेंगे क्या ॥ २६ ॥ संग्राम में राम के भयङ्कर अस्त्रों के द्वारा शीघ्र ही मित्रों के सहित मारे गये रावण को देखूँगी क्या ॥ २७ ॥ कमल के समान सुगन्धियुक्त, स्वर्ण के समान गौरवर्ण वाले उनका मुखमण्डल मेरे विना शोक से पीड़ित उसी प्रकार सूख तो नहीं गया जिस प्रकार जलाभाव के कारण सूर्यताप से कमल सूख जाता है ॥ २८ ॥ धर्म के व्याज से जिन्होंने अपने स्वायत्त राज्य का त्याग कर दिया, और वन में मुझे भी पैदल साथ में लाते हुए जिनको लेशमात्र भी भय तथा शोक नहीं हुआ वे आर्यकुलकमलदिवाकर धैर्य तो धारण करते हैं ? ॥ २९ ॥ माता पिता

न चास्य माता न पिता च नान्यः स्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावत्त्वहं दूत जिजीविषेयं यावत्प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥३०॥
इतीव देवी वचनं महार्थं तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥३१॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः । शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥३२॥
न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः । तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरंदरः ॥३३॥
श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः । चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥३४॥
विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम् । करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥३५॥
तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवाः सहासुराः । स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥३६॥
तवादर्शनजेनार्ये शोकेन स परिप्लुतः । न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥३७॥
मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा मन्दरेण च । दर्दुरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ॥३८॥
यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम् । मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥३९॥
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ । शतक्रतुमिवासीनं नाकपृष्ठस्य मूर्द्धनि ॥४०॥
न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चापि मधु सेवते । वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥४१॥
नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् । राघवोऽपनयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥४२॥

तथा अन्य कोई भी मेरे समान रामचन्द्र को प्रिय नहीं है । जब मेरे बराबर नहीं है तो अधिक होने की संभावना ही क्या ? हे दूत ! तभी तक मैं भी जीने की इच्छा रखती हूं, जब तक प्रियतम रामचन्द्र के आने की आशा है ॥ ३० ॥ देवी सीता ने इस प्रकार गम्भीर तथा अर्थ परिपूर्ण बातें हनुमान् से कहकर राम के विषय में पुनः रमणीय तथा हितकारी वचन हनुमान् से सुनने के लिये, अपनी बातों को विराम दिया ॥ ३१ ॥ भीषण पराक्रमी पवनसुत हनुमान् सीता की इन बातों को सुनकर नतमस्तक अञ्जलि को जोड़कर उत्तर में यह बोले ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तुम यहाँ लङ्का में हो, कमलनयन रामचन्द्र इस बात को नहीं जानते। इसी कारण तुमको शीघ्र यहाँ से उसी प्रकार नहीं ले जाते जिस प्रकार इन्द्र ने शची का उद्धार किया था ॥३३॥ मेरे वचन के द्वारा सन्देश सुनते ही वनवासी अनेक जातीय सैनिकों की बड़ी सेना के साथ रामचन्द्र शीघ्र ही लङ्का में आवेंगे ॥ ३४ ॥ अपने अक्षोभ्य बाणों से सागर को बांधकर रामचन्द्र राक्षसों का विध्वंस करके लङ्कापुरी में शान्ति करेंगे ॥ ३५ ॥ यदि इसके मध्य में मृत्यु, देव तथा बड़े असुर उनके कार्य में बाधा उपस्थित करेंगे तो रामचन्द्र उनका भी वध कर डालेंगे ॥ ३६ ॥ हे आर्ये जानकि ! तुम्हारे अदर्शन से उत्पन्न होने वाले शोक संताप से पूर्ण रामचन्द्र शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं, जैसे सिंह से आक्रान्त हाथी शान्त नहीं हो पाता है ॥ ३७ ॥ हे देवि ! मैं मन्दराचल, मलय, विन्ध्याचल, मेरु, दर्दुर, तथा फल मूल की शपथ करके कहता हूं ॥ ३८ ॥ रमणीक कुण्डलों से युक्त सुन्दर नेत्र वाले, बिम्बफल के समान ओष्ठ वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान राम के मुखमण्डल को तुम देखोगी ॥ ३९ ॥ हे वैदेहि ! प्रस्रवण पर्वत पर बैठे हुए रामचन्द्र को तुम उसी प्रकार देखोगी, जैसे ऐरावत गज पर बैठे इन्द्र को लोग देखते हैं ॥ ४० ॥ रामचन्द्र मांसभक्षण नहीं करते, न ही वे मद्यपान करते हैं, किन्तु दिन के पाँचवें भाग में वन में उत्पन्न होने वाले पके हुए फल मूल का आहार करते हैं ॥ ४१ ॥ तुम्हारे ध्यान में मग्न अपने शरीर पर आए डांस, मच्छर, कीट, पतङ्ग आदि को भी नहीं हटाते ॥ ४२ ॥ तुम्हारे प्रति आकर्षित होने के कारण शोका-

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः । नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ॥४३॥
अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः । सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥४४॥
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यद्वान्यत्सुमनोहरम् । बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥४५॥
स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥४६॥
सा रामसंकीर्तनवीतशोका रामस्य शोकेन समानशोका ।
शरन्मुखे साम्बुदशेषचन्द्रा निशेव वैदेहसुता बभूव ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अङ्गुलीयकप्रदानं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

सीताप्रत्यानयनानौचित्यम्

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना । हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १ ॥

कान्त होकर तुम्हारे ही ध्यान में मग्न रहते हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचते ॥ ४३ ॥ तुम्हारे वियोग से राम को निरन्तर निद्रा नहीं आती । कदाचित् सो भी जाते हैं, तो स्वप्न में हा सीते ! हा प्रिये ! इत्यादि शब्दों से तुम्हारा ही स्मरण करते हुए जागते हैं ॥ ४४ ॥ जब किसी भी फल, पुष्पादि मनोहर वस्तु, को जो स्त्रियों के लिये प्रायः रमणीय है, देखते हैं तो प्रायः लम्बी सांस लेते हुए, हा प्रिये ! हा प्रिये ! तुम्हीं को लक्ष्य कर बोलते हैं ॥ ४५ ॥ हे देवि ! निरन्तर दुःख से संतप्त तुम्हीं को लक्ष्य करके निरन्तर सीता, सीता, इस शब्द का उच्चारण किया करते हैं। राजकुमार महात्मा रामचन्द्र तुम्हारे लिये व्रतानुष्ठान करते हुए तुम्हारी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहते हैं ॥ ४६ ॥ रामचन्द्र के इन समाचारों को सुनकर उनका अपना शोक दूर हो गया । तथा रामचन्द्र के शोकाकुल होने के कारण सीता को भी उन्हीं के समान शोक उत्पन्न हो गया । उस समय शरत्काल के आरम्भ में मेघाच्छन्न चन्द्रमण्डित रात्रि के समान सीता की अवस्था हो गई ॥ ४७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दर काण्ड का 'अङ्गूठी का प्रदान करना' विषयक छत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां सर्ग

सीता को ले जाने का अनौचित्य

पूर्ण चन्द्रानना सीता इन बातों को सुनकर, धर्मार्थयुक्त इन बातों को हनुमान् से बोली ॥ १ ॥ हे

अमृतं विषसंसृष्टं त्वया वानर भाषितम् । यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ २ ॥
ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे । रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३ ॥
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम । सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥ ४ ॥
शोकस्यास्य कदा पारं राघवोऽधिगमिष्यति । प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥ ५ ॥
राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् । लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ ६ ॥
स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते । अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ ७ ॥
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम । रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति । अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते । रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशं गतम् ॥१०॥
ज्येष्ठा कन्यानला नाम विभीषणसुता कपे । तया ममेदमाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥११॥
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुंगवः । धृतिमान् शीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसंमतः ॥१२॥
रामात् क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् । न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥१३॥
आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः । अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥१४॥

वनवासी वीर ! आपने जो यह कहा है कि रामचन्द्र तुमको छोड़कर अन्य का चिन्तन नहीं करते तथा तुम्हारे शोक से वे संतप्त हैं, ये बातें विषसंपृक्त अमृत के तुल्य हैं ॥ २ ॥ कोई विपुल ऐश्वर्य से युक्त हो अथवा दारुण विपत्ति में पड़ा हो, रस्सी में बँधे हुए पुरुष के समान कर्मफलदाता दैव ही उनको खींचता है ॥ ३ ॥ हे वनवासिश्रेष्ठ ! प्रारब्ध का परिवर्तन मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात है । लक्ष्मण, मुझको तथा रामचन्द्र को ही देख लो, जो आपदा में आकर किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं ॥ ४ ॥ इस शोक समुद्र से रामचन्द्र किस प्रकार पार जाएँगे । जैसे नौका के भग्न हो जाने पर पराक्रमी व्यक्ति अपने पराक्रम से कठिनता से तैरते हुए सागर से पार जाता है, उसी प्रकार रामचन्द्र को भी कठिनाई उठानी पड़ेगी ॥ ५ ॥ राक्षसों का वध करके, रावण का प्राणान्त करके तथा लङ्का का विध्वंस करके मेरे पति प्रियतम रामचन्द्र मुझे कब देखेंगे ॥ ६ ॥ मेरा यह सन्देश रामचन्द्र से कहना कि मेरे उद्धार के लिये वे शीघ्रता करें । जब तक कि इस वर्ष की समाप्ति नहीं होती । क्योंकि इस वर्ष का अन्त ही मेरे जीवन की अवधि है ॥ ७ ॥ हे वनवासी वीर ! यह वर्ष की अवधि का दसवां मास बीत रहा है, केवल दो मास शेष रहे हैं, जो निर्दय रावण ने मेरे जीवन की अवधि रखी है ॥ ८ ॥ उसके कनिष्ठ भ्राता विभीषण ने मेरे लौटाने के लिये अनेकों बार प्रयत्नपूर्वक अनुनय विनय किया, किन्तु वह उसकी बात नहीं मानता ॥ ९ ॥ मेरा लौटना रावण को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह काल से प्रेरित हो गया है । मृत्यु संग्राम में उसका अन्वेषण कर रही है ॥ १० ॥ हे वनवासी वीर ! कला नाम वाली विभीषण की एक ज्येष्ठ पुत्री है । उसने ही यह सम्पूर्ण बातें मुझसे कहीं हैं, जो स्वयं अपनी माता के द्वारा भेजी गई थी ॥ ११ ॥ अविन्ध्य नामक धैर्यशाली, बुद्धिमान्, चरित्रवान्, वयोवृद्ध राक्षस है, जो रावण का प्रियपात्र है ॥ १२ ॥ उसने 'रामचन्द्र के द्वारा संपूर्ण राक्षसवंश का नाश होगा,' यह बात रावण से कहो, किन्तु वह दुरात्मा इस हितकारी बात को नहीं सुनता ॥ १३ ॥ हे वनवासिश्रेष्ठ ! मुझे अब पूर्ण आशा है, कि शीघ्र ही मेरे पति मुझको प्राप्त करेंगे । मेरी यह शुद्ध अन्तरात्मा की ध्वनि है; तथा उनमें (राम में) अनेकों गुण हैं ॥ १४ ॥

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता । विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥१५॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः । जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥१६॥
न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः । अहं तस्य प्रभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥१७॥
शरजालांशुमाञ्शूरः कपे रामदिवाकरः । शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥१८॥
इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् । अश्रुसंपूर्णनयनामुवाच वचनं कपिः ॥१९॥
श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः । चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥२०॥
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव वरानने । अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥२१॥
त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम् । शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥२२॥
अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि । प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥२३॥
द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् । व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥२४॥
त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् । पुरंदरमिवासीनं नगराजस्य मूर्द्धनि ॥२५॥
पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने । योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥२६॥
कथयन्तीव चन्द्रेण संगमिष्यसि रोहिणी । मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशे महार्णवम् ॥२७॥
न हि मे संप्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने । अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥२८॥

हे वनवासिन् ! उत्साह, पुरुषार्थ, धैर्य, दया, कृतज्ञता, पराक्रम तथा प्रभाव ये सभी गुण रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र में हैं ॥ १५ ॥ जनस्थान में चौदह हजार राक्षसों का वध जो अपने भाई लक्ष्मण की सहायता के बिना ही किया, उसके समक्ष कौन ऐसा शत्रु है, जो नतमस्तक न हो ॥ १६ ॥ राक्षसों के द्वारा किसी प्रकार के दुख से वे विचलित नहीं किये जा सकते । मैं उनके प्रभाव तथा शक्ति को जानती हूँ, जैसे शची इन्द्राणी इन्द्र के प्रभाव को जानती हैं ॥ १७ ॥ हे वनवासिन् ! रामरूपी दिवाकर अपने बाणरूपी किरणों से शत्रु राक्षसरूपी जल को शीघ्र ही शुष्क कर देंगे ॥ १८ ॥ शोक से कर्षित रामचन्द्र के विषय में कहती हुई, जिस सीता के नेत्रों में आँसू आ गए थे उस जानकी से हनुमान् बोले ॥ १९ ॥ मेरी बात को सुनते ही श्रीरामचन्द्र वनवासियों की विशाल सेना लेकर तुम्हारे समीप शीघ्र ही आवेंगे ॥ २० ॥ अथवा हे अनिन्दिते ! आप मेरी पीठ पर बैठ जाय । मैं आज ही इस भयङ्कर विपत्ति तथा रावण के बन्दीखाने से आप को मुक्त कर दूँगा ॥ २१ ॥ आपको पृष्ठ पर बैठा कर मैं समुद्र को पार कर जाऊँगा । रावण के सहित सम्पूर्ण लङ्का को विध्वंस करने की मुझमें शक्ति है ॥ २२ ॥ हे मिथिलेशकुमारि ! मैं प्रस्रवण पर्वत पर बैठे हुए रामचन्द्र के समीप तुम्हें उसी प्रकार पहुँचाऊँगा, जैसे शक्र (पर्जन्य) के समीप हवि को अग्नि पहुँचता है ॥ २३ ॥ दैत्य (मेघ, अन्धकार) वध के उद्योग में लगे हुए विष्णु (सूर्य) के समान लक्ष्मण सहित राम को तुम आज ही देखोगी ॥ २४ ॥ ऐरावत गज के मस्तक पर बैठे हुए इन्द्र के समान जिन्हें तुम्हारे दर्शन की उत्सुकता हो रही है, ऐसे महाबली रामचन्द्र को उनके आश्रम में तुम देखोगी ॥ २५ ॥ हे शोभने ! मेरी पीठ पर बैठो । हे देवि ! इसकी उपेक्षा मत करो, जिस प्रकार चन्द्रमा से रोहिणी नक्षत्र का मिलन होता है उसी प्रकार रामचन्द्र से आज तुम्हारा मिलन हो ॥ २६ ॥ वार्तालाप करते हुए, चन्द्र से रोहिणी के समान, आप का रामचन्द्र से सम्मेलन हो जायगा । मेरी पीठ पर तुम बैठ जाओ तथा आकाश के समान इस विशाल समुद्र को पार करो ॥ २७ ॥ हे वराङ्गने ! आप को लेकर यहाँ से प्रयाण करने के समय मेरा पीछा करने की शक्ति सम्पूर्ण लंका निवासियों में भी नहीं है ॥ २८ ॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् । यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥२९॥
मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् । हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥३०॥
हनुमन् दूरमध्वानं कथं मां वोढुमिच्छसि । तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥३१॥
कथं वाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि । सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥३२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः । चिन्तयामास लक्ष्मीवान्नवं परिभवं कृतम् ॥३३॥
न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा । तस्मात्पश्यतु वैदेही यद्रूपं मम कामतः ॥३४॥
इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः । दर्शयामास वैदेह्याः स्वं रूपमरिमर्दनः ॥३५॥
स तस्मात्पादपाद्धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः । ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥३६॥
मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः । अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरोत्तमः ॥३७॥
हरिः पर्वतसंकाशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः । वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥३८॥
सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् । लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥३९॥
तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया । विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥४०॥
तं दृष्ट्वाचलसंकाशमुवाच जनकात्मजा । पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥४१॥
तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे । वायोरिव गतिं चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥४२॥

हे वैदेहि ! जैसे मैं ऋश्यमूक पर्वत से यहाँ आया, उसी प्रकार तुमको लेकर मैं नभ (समुद्र) पथ से चला जाऊँगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मिथिलेशकुमारी जानकी वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् से इन अद्भुत बातों को सुनकर, हर्षातिरेक से जिसके सर्वाङ्ग प्रफुल्लित हो गए हैं, वह हनुमान् से इस प्रकार बोली ॥ ३० ॥ हे हनुमन् ! इतने दूर मार्ग से तुम मुझे किस प्रकार ले जाना चाहते हो । मैं तो तुम्हारी इन बातों में वनवासी (ग्रामीण) की चपलता ही समझती हूँ ॥ ३१ ॥ हे वनवासियों में श्रेष्ठ हनुमन् ! तुम्हारा शरीर अत्यन्त लघु है । इस शरीर के द्वारा मानवेन्द्र मेरे पति रामचन्द्र के समीप मुझे ले जाने की तुम कैसे इच्छा करते हो ॥ ३२ ॥ सीता की इन बातों को सुनकर, वायुपुत्र हनुमान् , सीता के द्वारा इस नूतन तिरस्कार से चिन्तामग्न होकर सोचने लगे ॥३३॥ यह दीर्घनेत्रा सीता मेरे बल तथा प्रभाव को नहीं जानती है, अत एव वैदेही स्वच्छन्दता से मेरे बल और पराक्रम को देखे ॥३४॥ शत्रु के मानमर्दन करने वाले वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ने ऐसा विचार करके अपना स्वरूप सीता को दिखलाया ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् जानकी को विश्वास दिलाने के लिये, उस शिंशपा वृक्ष से नीचे उतरकर (योगबल से) अपने शरीर को बढ़ाने लगे ॥ ३६ ॥ मेरु के समान विशालकाय तथा देदीप्यमान अग्नि के समान तेजस्वी हनुमान् सीता के समक्ष खड़े हो गए ॥ ३७ ॥ विशालकाय, लाल मुख वाले, वज्र के समान दन्तनख वाले, भयङ्कर, महाबली हनुमान् जानकी से यह बोले ॥ ३८ ॥ अट्टालिका, वन, पर्वत, तोरण तथा रावण से युक्त सम्पूर्ण लङ्का को नष्ट करने की मुझमें शक्ति है ॥ ३९ ॥ हे देवि ! अपनी बुद्धि (विचार) को स्थिर करो । आशङ्का की भावना को छोड़ो । मेरी प्रार्थना के द्वारा लक्ष्मण सहित राम के शोक को दूर करो ॥ ४० ॥ कमलनयनी, विशालनेत्रा जानकी विशालकाय अचल के समान स्थिर वायुसुत उस हनुमान् से बोली ॥ ४१ ॥ हे महावनवासिन् ! तुम्हारे धैर्य और बल को मैं जानती हूँ । वायु के समान तुम्हारी गति, अग्नि के समान तुम्हारे अद्भुत तेज को भी मैं जानती हूँ ॥४२॥ हे वनवासी सेनापति !

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति । उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरपुंगव ॥४३॥
जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम । अवश्यं संप्रधार्याशु कार्यसिद्धिर्महात्मनः ॥४४॥
अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मम गन्तुं त्वयानघ । वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव ॥४५॥
अहमाकाशमापन्ना ह्युपर्युपरि सागरम् । प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयाद्वेगेन गच्छतः ॥४६॥
पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले । भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥४७॥
न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन । कलत्रवति संदेहस्त्वय्यपि स्यादसंशयः ॥४८॥
ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः । अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥४९॥
तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः । भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥५०॥
साधुया बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः । कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥५१॥
युध्यमानस्य रक्षोभिस्तव तैः क्रूरकर्मभिः । प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम ॥५२॥
अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च । कथंचित्साम्पराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥५३॥
अथवा युध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते । पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥५४॥
मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद्विशसेयुरथापि वा । अव्यवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥५५॥
अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता । त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥५६॥

सामान्य वनवासी इस अप्रमेय समुद्र को कैसे पार कर सकता है, तथा दुर्गमनीय इस लङ्का में कैसे प्रवेश कर सकता है ॥ ४३ ॥ मुझको लेकर यहाँ से लौट जाने की क्षमता तुममें है, यह मैं जानती हूँ। पुनरपि सन्देहरहित कार्य के विषय में अवश्यमेव विमर्श करना चाहिये ॥ ४४ ॥ हे वनवासिश्रेष्ठ! मेरा तुम्हारे साथ जाना अनुचित होगा। वायु के समान तुम्हारे वेग से मैं मूर्छित हो जाऊँगी ॥ ४५ ॥ समुद्र के ऊपर तैरते हुए तुम्हारे साथ चलती हुई मैं तुम्हारी अत्यन्त वेगवती गति के कारण तुम्हारे पृष्ठभाग से गिर जाऊँगी ॥ ४६ ॥ मीन-नक्र-मकरादि जन्तुओं से पूर्ण समुद्र में गिरकर मैं, विवश दशा में शीघ्र ही जलजन्तुओं का आहार बन जाऊँगी ॥ ४८ ॥ हे शत्रुमर्दन! मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती। मुझ स्त्री समेत तुमको जाते हुए देखकर निश्चय ही तुम पर लङ्कानिवासियों को सन्देह होगा ॥ ४८ ॥ यहाँ से मेरा हरण होते हुए देखकर, दुरात्मा रावण की आज्ञा से भीषण पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीछा अवश्य करेंगे ॥ ४९ ॥ हे वीर हनुमान्! मुझ स्त्री के कारण शूल, मुद्गर आदि शस्त्रधारी सैनिकों से घिरकर तुम अवश्य ही सङ्कट में पड़ जाओगे ॥ ५० ॥ मुझको लेकर अन्तरिक्ष में गमन करते हुए, तुम अकेले अस्त्रहीन रहोगे और अनेकों शस्त्रधारी राक्षस एक तरफ रहेंगे। उस समय मेरी रक्षा करते हुए तुम कैसे जा सकते हो ॥ ५१ ॥ हे वनवासी वीर! जिस समय तुम क्रूरकर्मा राक्षसों से युद्ध कर रहे होगे, उस समय भयभीत होकर मैं तुम्हारी पृष्ठ से गिर जाऊँगी ॥ ५२ ॥ हे वनवासी वीर! ये भयङ्कर, बलवान् राक्षस इस सङ्घर्ष में किसी प्रकार तुमको जीत सकते हैं ॥ ५३ ॥ अथवा सङ्घर्ष में रत होने के कारण मेरी तरफ ध्यान न हो, ऐसी अवस्था में मैं गिर जाऊँगी और ये पापी राक्षस मुझको उठा ले जाएँगे ॥ ५४ ॥ अथवा तुम्हारे हाथ से मुझको छीन कर ले जा सकते हैं, और मेरा वध भी कर सकते हैं क्योंकि सङ्ग्राम में जय-पराजय निश्चित नहीं रहती ॥ ५५ ॥ अथवा राक्षसों के तर्जन-गर्जन से भयभीत होकर मेरा प्राणान्त भी हो सकता है। इसलिये हे वनवासिश्रेष्ठ! तुम्हारा यह सब प्रयत्न भी निष्फल हो जायगा ॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण राक्षसों के मारने में तुम

कामं त्वमसि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् । राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥५७॥
अथवादाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम् । यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवौ ॥५८॥
आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः । त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥५९॥
मयि जीवितमायत्तं राघवस्य महात्मनः । भ्रातॄणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥६०॥
तौ निराशौ मदर्थं तु शोकसंतापकर्शितौ । सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ॥६१॥
भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर । न स्पृशामि शरीरं तु पुंसो वानरपुंगव ॥६२॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य बलाद्गता । अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥६३॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सबान्धवम् । मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥६४॥

श्रुता हि दृष्टाश्च मया पराक्रमा महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥६५॥
समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥६६॥
सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥६७॥

समर्थ हो। इसमें सन्देह नहीं किन्तु तुम्हारे द्वारा राक्षसों का वध होने पर रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र की कीर्ति क्षीण हो जायगी ॥ ५७ ॥ अथवा राक्षस मुझको ऐसे गुप्त स्थान में ले जाकर रख देंगे, जहाँ न वनवासियों को पता लग सकेगा न ही रामचन्द्र को ॥ ५८ ॥ ऐसी अवस्था में मेरे लिये तुम्हारा सब उद्योग निरर्थक हो जायगा। किन्तु तुम्हारे साथ रामचन्द्र का यहाँ आना विशेष गुण रखता है ॥ ५९ ॥ हे विशाल भुजा वाले वीर ! अमित पराक्रमी रामचन्द्र का जीवन, रामचन्द्र के भ्राताओं का जीवन, सपरिवार राजा सुग्रीव का जीवन मेरे ऊपर निर्भर है ॥६०॥ यदि मेरी तरफ से शोककर्शित उन दोनों राजकुमारों को निराशा हो जायगी, तो उस अवस्था में समस्त वनवासी सैनिकों के साथ वे अपने जीवन से उदासीन हो जाएँगे ॥६१॥ हे वनवासी वीर ! अतिभक्ति के कारण या पातिव्रत्य नियम को देखते हुए, मैं रामचन्द्र के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ६२ ॥ जो मैंने रावण के शरीर का स्पर्श किया, उस समय मैं रक्षकहीन, अनाथा तथा विवश थी। उस समय मैं कर ही क्या सकती थी ॥ ६३ ॥ यदि रामचन्द्र राक्षसों सहित रावण का वध करके मुझको यहाँ से ले जाएँ तो यह उनके अनुरूप होगा ॥ ६४ ॥ रण में रणदुर्मद महात्मा रामचन्द्र के पराक्रम को मैंने स्वयं देखा तथा सुना है। देव, गन्धर्व, नाग, राक्षस जाति के कोई भी मनुष्य सङ्ग्राम में उनकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥ सङ्ग्राम में चित्रित धनुष वाले इन्द्र के तुल्य पराक्रमी लक्ष्मण के सहित महाबली वायु से प्रेरित अग्नि के समान रामचन्द्र के पराक्रम का कौन सामना कर सकता है ॥ ६६ ॥ हे वनवासियों में मुख्य ! संग्राम में प्रलयकारी, सूर्य के समान चमकते हुए बाणों वाले, मदमस्त दिग्गजों की तरह, शत्रुमर्दनकारी लक्ष्मण के सहित, रामचन्द्र को व्यवस्थित देखकर उनका सामना कौन कर सकेगा ॥ ६७ ॥ हे वनवासी वीर ! वीर लक्ष्मण तथा सेनापतियों

स मे हरिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं पतिं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां कुरुष्व मां वानरमुख्य हर्षिताम् ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीताप्रत्यानयनानौचित्यं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

वायसवृत्तान्तकथनम्

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन हर्षितः। सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥
युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने। सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥
स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम्। मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ३ ॥
द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते। रामादन्यस्य नार्हामि संस्पर्शमिति जानकि ॥ ४ ॥
एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः। का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥ ५ ॥
श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः। चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं च ममाग्रतः ॥ ६ ॥
कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया। स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम् ॥ ७ ॥

के साथ मेरे प्रियतम रामचन्द्र को तुम शीघ्र यहाँ लिवा लाओ। चिरकाल से राम के वियोग जनित शोक से मैं कृश हो रही हूं, मुझको प्रसन्न करो ॥ ६८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'सीता को ले जाने का अनौचित्य' विषयक सैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवां सर्ग

कौए का वृत्तान्तकथन[1]

वाणीविशारद वनवासी वीर हनुमान् जानकी की इन बातों को सुनकर अति प्रसन्न हुए तथा उनसे बोले ॥ १ ॥ हे शुभदर्शने देवि! तुमने उपयुक्त ही कहा है। स्त्रीस्वभाव, सती साध्वी तथा विनय के अनुकूल ही कहा है ॥ २ ॥ मेरी पीठ पर बैठ कर शतयोजन चौड़े समुद्र का पार करना तुम स्त्री के लिये अत्यन्त कठिन है, यह ठीक है ॥ ३ ॥ हे विनयशीले जानकि! यह जो दूसरा हेतु तुमने न जाने के विषय में दिया है कि राम के अतिरिक्त अन्य पुरुष का मैं सम्पर्क नहीं कर सकती ॥ ४ ॥ हे देवि! यह उस महात्मा की धर्मपत्नी के लिये उपयुक्त ही है। इस प्रकार का वचन तुमको छोड़कर और कौन कह सकता है ॥ ५ ॥ हे देवि! मेरे समक्ष जो तुम्हारी चेष्टा या भाषण हुए हैं, वह सब रामचन्द्र सुनेंगे ॥ ६ ॥ रामचन्द्र के प्रिय करने की इच्छा से, तथा अन्य अनेकों कारणों से मन के द्रवीभूत हो जाने पर मैंने तुमसे ऐसा कहा ॥ ७ ॥ लङ्का के दुर्गम होने से, समुद्र के पार जाने की कठिनता से और अपनी शक्ति

---

१. इस सर्ग में, विशेषकर वायसवृत्तान्तवर्णन में, कुछ स्थल अतिशयोक्तिपूर्ण हैं जो पाठकों को खटकते हैं।

लङ्काया दुष्प्रवेशत्वादुस्तरत्वान्महोदधेः। सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम् ॥ ८ ॥
इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुबन्धुना। गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथैतदुदाहृतम् ॥ ९ ॥
यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते। अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥ १० ॥
एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा। उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥ ११ ॥
इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम्। शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पुरा ॥ १२ ॥
तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके। तस्मिन् सिद्धाश्रिते देशे मन्दाकिन्या ह्यदूरतः ॥ १३ ॥
तस्योपवनषण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु। विहृत्य सलिलक्लिन्ना ममाङ्के समुपाविशः ॥ १४ ॥
ततो मां स समायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत्। तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥ १५ ॥
दारयन् स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते। न चाप्युपारमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः ॥ १६ ॥
उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणि। स्रस्यमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥ १७ ॥
त्वयापहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तथा। भक्षगृध्नेन काकेन दारिता त्वामुपागता ॥ १८ ॥
आसीनस्य च ते श्रान्ता पुनरुत्सङ्गमाविशम्। क्रुध्यन्ती च प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता ॥ १९ ॥
बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती। लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥ २० ॥
परिश्रमात्प्रसुप्ता च राघवाङ्केऽप्यहं चिरम्। पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥ २१ ॥

पर पूर्ण विश्वास होने के कारण मैंने ये बातें कही थीं ॥ ८ ॥ रामचन्द्र से आज ही मिला देने की इच्छा से तथा श्रेष्ठ राम के प्रति अनन्य भक्ति के कारण मैंने यह बातें कही थीं। इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं ॥ ९ ॥ हे अनिन्दिते! यदि आप मेरे साथ नहीं जा सकती हैं तो परिचय के लिये कोई ऐसा चिह्न दीजिये, जिसको रामचन्द्र पहचान सकें ॥ १० ॥ देवकन्या के समान सीता हनुमान् के ऐसा कहने पर रोने आदि के कारण अत्यन्त क्षीण तथा मन्द स्वर में बोली ॥ ११ ॥ यह सर्वश्रेष्ठ चिह्न मेरे परमप्रिय रामचन्द्र से तुम कह देना। चित्रकूट पर्वत के पूर्वोत्तर दिशा में रहने वाले छोटे पर्वत पर हम लोग उपस्थित थे ॥ १२ ॥ मन्दाकिनी नदी के बिलकुल समीप, पर्याप्त फल फूल तथा जल से युक्त, तपस्वी सिद्धों से युक्त स्थान में बैठी हुई मेरे समक्ष जो घटना हुई थी उसे सुनो ॥ १३ ॥ वहाँ के उपवन-खण्डों में जो नाना प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित हो रहा था, भ्रमण करके पसीने से लथपथ शरीर वाले आप मेरी गोद में आकर लेट गये ॥ १४ ॥ पश्चात् मेरी तरफ आकृष्ट होते हुए एक कौए ने मुझे चोंच मारी। मैंने ढेले को उठाकर उसे बार बार रोका ॥ १५ ॥ मुझे चोंच मारकर, मेरे हटाने पर वह कौवा वहीं छिप जाता था। वह मांसभोजी मेरा मांस खाने की इच्छा से हटाने पर भी नहीं हटा ॥ १६ ॥ मेरे कटिसूत्र के खींचने पर मैं उस कौए पर क्रुद्ध होती हुई खींचते हुए वस्त्र को सम्भाल रही थी, उस समय आपने मुझे देखा ॥ १७ ॥ मुझे देखकर आप हंसने लगे। उस समय मुझे अत्यन्त क्रोध आया, तथा मैं लज्जित हो गई। उस मांसाहारी पक्षी से क्षतविक्षत होकर मैं आपके समीप आई ॥ १८ ॥ उस समय थकी हुई मैं बैठे हुए आपकी गोद में पड़ गई। उस समय मुझको अत्यन्त क्रोध था, किन्तु प्रसन्नतापूर्वक आपने मुझे शान्त किया ॥ १९ ॥ उस समय मेरी आँखें आंसुओं से भरी हुई थीं, और मैं उन्हें पोंछ रही थी, कौए के आक्रमण से क्रुद्ध हुई उस समय आपने मुझे देखा ॥ २० ॥ परिश्रम के कारण मैं रामचन्द्र की गोद में देर तक सोती रही। पर्याय क्रम से मेरे जागने पर रामचन्द्र मेरी गोद में सो गए ॥ २१ ॥ वह कौआ फिर वहाँ मेरे पास आया। रामचन्द्र की गोद से सोकर उठी हुई मुझको जानकर उस कौए ने

स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत् । ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम् ॥२२॥
वायसः सहसागम्य विरराद स्तनान्तरे ॥
पुनः पुनरथोत्पत्य विददार स मां भृशम् । ततः समुक्षितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः॥२३॥
वायसेन ततस्तेन बलवत्क्लिश्यमानया । स मया बोधितः श्रीमान् सुखसुप्तः परंतपः ॥२४॥
स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा । आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन् वाक्यमभाषत ॥२५॥
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् । कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥२६॥
वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समुदैक्षत । नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ॥२७॥
पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः । धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥२८॥
ततस्तस्मिन् महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः । वायसे कृतवान् क्रूरां मतिं मतिमतां वरः ॥२९॥
स दर्भं संस्तराद्गृह्य ब्राह्मेणास्त्रेण योजयत् । स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्॥३०॥
स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति । ततस्तं वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम तम् ॥३१॥
अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् । त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ॥३२॥
स पित्रा च परित्यक्तः सुरैः सर्वैर्महर्षिभिः । त्रींल्लोकान् संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥३३॥
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् । वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥३४॥
परिद्यूनं विषण्णं च स तमायान्तमब्रवीत् । मोघं कर्तुं न शक्यं तु ब्राह्ममस्त्रं तदुच्यताम् ॥३५॥
हिनस्तु दक्षिणाक्षि त्वच्छर इत्यथ सोऽब्रवीत् । ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ॥३६॥

सहसा आकर मेरे स्तन के मध्य में चोंच मारी ॥ २२ ॥ वह बार बार मेरे समीप आकर इस प्रकार चोंच मारने लगा । मेरे स्तन से गिरे हुए रक्त बिन्दु से रामचन्द्र भीग गए ॥ २३ ॥ उस बलवान् कौए के द्वारा इस प्रकार पीड़ित होने पर मैंने सुख से सोए हुए शत्रुतापी श्रीमान् रामचन्द्र को जगाया ॥ २४ ॥ विशाल भुजा वाले रामचन्द्र क्षतविक्षत मेरे स्तन को देखकर क्रुद्ध हुए सर्प के समान लम्बी श्वास लेते हुए मुझसे बोले ॥ २५ ॥ हे नागनासोरु ! तुम्हारे इन स्तनों को किसने क्षत विक्षत किया है । क्रुद्ध सर्प के साथ में यह कौन क्रीडा कर रहा है ॥२६॥ इधर उधर देखते हुए उन्होंने रक्त से भीगे हुए नखों वाले मेरे सामने बैठे हुए उस कौए को देखा ॥२७॥ पक्षियों में श्रेष्ठ वह कौआ इन्द्र का पुत्र था । पृथिवी पर पवन की गति के समान गतिशील था ॥ २८ ॥ विशाल भुजा वाले रामचन्द्र की आँखें क्रोध से रक्तवर्ण हो गईं । बुद्धिमानों में श्रेष्ठ रामचन्द्र ने उसके प्रति अपनी कठोर धारणा बनाई ॥ २९ ॥ कुश के आसन से एक कुश को लेकर ब्रह्मास्त्र से संयुक्त किया । वह जाज्वल्यमान अग्नि की तरह उस पक्षी के समक्ष प्रज्वलित होने लगा ॥ ३० ॥ उस जलते हुए दर्भास्त्र को कौए की तरफ फेंका । तब वह दर्भास्त्र कौए के पीछे आकाश में गया ॥ ३१ ॥ रामबाण के पीछा करने पर वह कौआ नाना प्रकार की गति से उड़ने लगा । रक्षानिमित्त सब स्थानों में घूम आया ॥ ३२ ॥ अपने पिता तथा सम्पूर्ण ऋषियों से परित्यक्त वह त्रिलोकी का भ्रमण करता हुआ पुनः रामचन्द्र की ही शरण में आया ॥ ३३ ॥ वध के योग्य उस कौए को शरणागत आए हुए तथा पास ही भूमि में गिरे हुए उसकी शरणागतवत्सल रामचन्द्र ने रक्षा की ॥ ३४ ॥ अत्यन्त थका हुआ, विवर्ण मुख वाला वह कौआ जब राम के समक्ष आया तब रामचन्द्र उससे बोले । यह ब्रह्मास्त्र व्यर्थ नहीं जाता अब तुम्हीं इसका समाधान बताओ ॥ ३५ ॥ कौए ने कहा कि शर द्वारा मेरी दाहिनी आँख को फोड़ दो । अनन्तर उस कौए की दाहिनी आँख को नष्ट कर उसको मुक्त कर दिया ॥ ३६ ॥ वह रामचन्द्र तथा राजा दशरथ को

स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च । विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ॥३७॥
मत्कृते काकमात्रे तु ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् । कस्माद्यो मां हरेत्त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ॥३८॥
स कुरुष्व महोत्साहः कृपां मयि नरर्षभ । त्वया नाथवती नाथ ह्यनाथा इव दृश्यते ॥३९॥
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतः । जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ॥४०॥
अपारपारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात्सागरोपमम् । भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ॥४१॥
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्यवान् बलवानपि । किमर्थमस्त्रं रक्षस्सु न योजयसि राघव ॥४२॥
न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः । रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ॥४३॥
तस्य वीर्यवतः कश्चिद्यद्यस्ति मयि संभ्रमः । किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ॥४४॥
भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परंतपः । कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ॥४५॥
यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ । सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ॥४६॥
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः । समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परंतपौ ॥४७॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् । अथाब्रवीन्महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥४८॥
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन मे शपे । रामे दुःखाभिपन्ने च लक्ष्मणः परितप्यते ॥४९॥
कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् । इमं मुहूर्तं दुःखानां द्रक्ष्यस्यन्तमनिन्दिते ॥५०॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ । त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥५१॥

नमस्कार करके, रामचन्द्र से आज्ञा पाने पर अपने स्थान को चला गया ॥ ३७ ॥ मेरे लिये एक सामान्य कौए पर ब्रह्मास्त्र का जो प्रयोग किया था, हे राजन् ! मेरे हरण करने वाले इस राक्षस को आप क्यों क्षमा कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप उत्साहपूर्वक मेरे ऊपर कृपा करें । हे नाथ ! आप जैसे नाथ को पाकर भी मैं अनाथा हो रही हूँ ॥ ३९ ॥ दया परम धर्म है, यह मैंने आपसे ही सुना है । आपके महान् पराक्रम, महोत्साह तथा बल को मैं जानती हूं ॥ ४० ॥ सीमारहित, अक्षोभ्य, गहराई में समुद्र के समान आप गम्भीर हैं । समुद्रपर्यन्त पृथिवी के आप स्वामी हैं । आप की उपमा इन्द्र के समान है ॥ ४१ ॥ इसलिये हे रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र ! इस प्रकार अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, बलवान्, धीर, पराक्रमी होने पर भी राक्षसों पर आप अस्त्र का प्रयोग क्यों नहीं करते ॥ ४२ ॥ नागों में, गन्धर्वों में तथा मरुद्गणों में कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है, जो संग्राम में राम की प्रतिद्वन्द्विता कर सके ॥४३॥ यदि पराक्रमी रामचन्द्र का मेरे प्रति कुछ भी आदर है, तो तीक्ष्ण बाणों से राक्षसों का विध्वंस क्यों नहीं करते हैं ॥ ४४ ॥ अथवा अपने भाई की आज्ञा लेकर शत्रुतापी महाबली लक्ष्मण मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ॥ ४५ ॥ यदि वे दोनों नरकेसरी वायु तथा इन्द्र के समान तेजस्वी हैं, तथा देवताओं से भी अजेय हैं, तो मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ ये मेरे ही किन्हीं दुष्कर्मों का परिणाम है, इसमें कोई सन्देह नहीं, जो कि समर्थ होने पर भी वे मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ॥ ४७ ॥ अश्रुपूर्ण करुणामय जानकी की इन बातों को सुनकर वनवासियों के सेनापति, महातेजस्वी हनुमान् बोले ॥ ४८ ॥ हे देवि ! मैं सत्य की शपथ करके कहता हूँ कि रामचन्द्र तुम्हारे शोक के कारण अति उदासीन हो गए हैं । राम के दुःखी होने के कारण लक्ष्मण भी संतप्त हो रहे हैं ॥ ४९ ॥ किसी प्रकार आपका दर्शन हो गया । अब शोक तथा चिन्ता करने का समय नहीं । इस समय आप अपने दुःख का अन्त शीघ्र ही देखेंगी ॥ ५० ॥ महाबली, नरकेसरी वे दोनों राजकुमार आपके दर्शन के लिये उत्साहित होकर राक्षस वंश को भस्मीभूत कर देंगे ॥ ५१ ॥ हे विशालाक्षी जानकि ! बन्धु बान्धवों के सहित संग्राम

हत्वा च समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् । राघवस्त्वां विशालाक्षि नेष्यति स्वां पुरीं प्रति ॥५२॥
ब्रूहि यद्राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः । सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयोऽपि समागताः ॥५३॥
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता सुरसुतोपमा । उवाच शोकसंतप्ता हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ॥५४॥
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी । तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ॥५५॥
स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः । ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥५६॥
पितरं मातरं चैव संमान्याभिप्रसाद्य च । अनुप्रव्राजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ॥५७॥
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् । अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन् वने ॥५८॥
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः । पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ॥५९॥
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः । वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहु भाषिता ॥६०॥
राजपुत्रः प्रियः श्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे । मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ॥६१॥
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् । यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरेत् ॥६२॥
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम । मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ॥६३॥
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् । त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम ॥६४॥
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् । इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ॥६५॥
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ॥६६॥

में निर्दयी रावण को मार कर रामचन्द्र तुम्हें अपनी नगरी में ले जाएँगे ॥५२॥ हे देवि ! महाबली राम तथा लक्ष्मण से, तेजस्वी राजा सुग्रीव से या इकट्ठे हुए वनवासियों से आप जो कुछ कहना चाहती हैं, उसे कहें ॥ ५३ ॥ हनुमान के ऐसा कहने पर देवकन्या के समान शोक से सन्तप्त सीता वनवासी हनुमान् से इस प्रकार बोली ॥ ५४ ॥ मनस्विनी कौसल्या ने जिस लोकसम्राट् राम को उत्पन्न किया, मेरी ओर से उन्हें मस्तक झुका कर प्रणाम कहना तथा उनका कुशल पूछना ॥ ५५ ॥ सम्पूर्ण रत्न माला, उत्तम स्त्री तथा विशाल पृथिवी पर जितने दुर्लभ ऐश्वर्य हैं (उनको त्याग कर) ॥ ५६ ॥ माता पिता को संतुष्ट कर जो वनवासी रामचन्द्र के साथ वन में आए, जिनको उत्पन्न कर माता सुमित्रा पुत्रवती हैं ॥ ५७ ॥ अत्यन्त अनुकूलता के कारण जिस धर्मात्मा ने सम्पूर्ण उत्तम सुखों को छोड़कर, अपने भाई रामचन्द्र की रक्षा करते हुए उनका अनुगमन किया ॥ ५८ ॥ सिंह के समान कन्धे वाले, प्रियदर्शी, मनस्वी, विशाल भुजा वाले, ऐसे राम के प्रति जो पिता के समान तथा मेरे प्रति माता के समान आचरण करते हैं ॥ ५९ ॥ राक्षस द्वारा हरण के समय जो लक्ष्मण मुझे नहीं जान सके, वृद्धसेवी, सुन्दर, समर्थ, जो बहुत बोलते नहीं ॥६०॥ जो रामचन्द्र के प्रिय पात्र हैं, जो मेरे ससुर राजा दशरथ के अनुरूप ही श्रेष्ठ हैं। मुझसे भी अधिक प्रियतर राम के लिये जो लक्ष्मण हैं ॥ ६१ ॥ जो भी काम उनको सौंपा जाय, पराक्रमी लक्ष्मण उसको पूर्ण करते हैं, जिसको देखकर रामचन्द्र अपने पिता के वियोग का स्मरण नहीं करते ॥ ६२ ॥ उस लक्ष्मण का मेरे तरफ से कुशलक्षेम पूछना (तथा उनको मेरा आशीर्वाद कहना) । कोमल चित्त वाले, शुद्धान्तःकरण, प्रत्येक कार्य में दक्ष, जो रामचन्द्र के अत्यन्तप्रिय हैं ऐसे लक्ष्मण से (यह कहना) ॥ ६३ ॥ जिससे कि मेरे दुःख का अन्त करने के लिये वे समुद्यत हो जाएं। हे वनवासियों के सेनापति ! मेरे उद्धार का कार्यभार तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है ॥ ६४ ॥ आपके ही उत्साह देने से रामचन्द्र मेरे उद्धार का प्रयत्न करेंगे । मेरे बलवान् पति रामचन्द्र से आप यह बार बार कहना (कि) ॥ ६५ ॥ हे राजकुमार ! मैं एक महीने तक और जी सकूंगी । एक महीने के पश्चात् मैं जीवित नहीं रह सकूँगी, यह मैं सत्य कहती हूँ ॥ ६६ ॥ छलपूर्वक

रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा । त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ॥६७॥
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् । प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥६८॥
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् । अङ्गुल्या योजयामास न ह्यस्य प्राभवद्भुजः ॥६९॥
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च । सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥७०॥
हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः । हृदयेन गतो रामं शरीरेण तु निष्ठितः ॥७१॥
मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।
गिरिरिव पवनावधूतमुक्तः सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे वायसवृत्तान्तकथनं नाम अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

हनुमत्संदेशः

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनुमन्तमथाब्रवीत् । अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥
मणिं तु दृष्ट्वा रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति । वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ २ ॥

दुष्कर्मा रावण के द्वारा बन्दी की हुई मेरा आप उसी प्रकार उद्धार करें, जैसे जलमग्न पृथिवी का उद्धार विष्णु (सूर्य) ने किया ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् वस्त्रगत मस्तक से शुभ, दिव्य चूडामणि को उतार कर, रामचन्द्र को प्रदान करने के लिये सीता ने हनुमान् को दिया ॥ ६८ ॥ वीर हनुमान् ने उस उत्तम मणिरत्न को लेकर, भुजा में न आने के कारण अपनी अंगुली में धारण कर लिया ॥ ६९ ॥ वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ने मणिरत्न को लेकर उनका अभिवादन किया। पश्चात् नम्रतापूर्वक उनके समीप खड़े हो गए ॥ ७० ॥ सीता के दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हनुमान् ने हृदय से रामचन्द्र तथा लक्ष्मण का ध्यान किया ॥ ७१ ॥ जानकी के द्वारा धारण किये हुए उस मूल्यवान् मणिरत्न को लेकर पर्वतीय वायु से कम्पित पश्चात् मुक्त पर्वत की तरह अत्यन्त सुखी वह हनुमान् शनैः-शनैः वहाँ से चल पड़े ॥ ७२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'कौए का वृत्तान्त कथन' विषयक अड़तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ सर्ग

हनुमान् को सन्देश

मणि को देकर जानकी हनुमान् से यह बोली—यह दिया हुआ मेरा अभिज्ञान (चूड़ामणि) रामचन्द्र का अत्यन्त परिचित है ॥ १ ॥ इस मणि को देख कर वीर रामचन्द्र अपनी माता, राजा दशरथ तथा मेरा स्मरण करेंगे ॥ २ ॥ हे वनवासी वीर ! इस मणि को देखकर उत्साहित रामचन्द्र को तुम

स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम । अस्मिन् कार्यसमारम्भे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥
त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम । तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ४ ॥
हनुमन् यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव । स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ॥ ५ ॥
शिरसाभिवन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे । ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं मारुतात्मजम् ॥ ६ ॥
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् । कुशलं हनुमन् ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥
सुग्रीवं च सहामात्यं वृद्धान् सर्वांश्च वानरान् । ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥
यथा स च महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥ ९ ॥
जीवन्तीं मां यथा रामः संभावयति कीर्तिमान् । तत्तथा हनुमन्वाच्यो वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥१०॥
नित्यमुत्साहयुक्ताश्च वाचः श्रुत्वा त्वयेरिताः । वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥११॥
मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः । पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत्संविधास्यति ॥१२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः । शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१३॥
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः । यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥१४॥
न हि पश्यामि मर्त्येषु नामरेष्वसुरेषु वा । यस्तस्य क्षिपतो बाणान् स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥१५॥
अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् । स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः ॥१६॥
स हि सागरपर्यन्तां महीं शासितुमर्हति । त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥१७॥

पुनः पुनः उत्साहपूर्वक प्रेरित करना ॥ ३ ॥ उत्साहित होने के पश्चात् जो कर्तव्य कार्य है उसका भी स्मरण कर लो । हे वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ! इस कार्यभार के सम्भालने में तुम सर्वथा उपयुक्त हो। इस आपदा से छुटकारा हो इसका उपाय करो ॥ ४ ॥ हे हनुमान् ! उस उपाय का अवलम्बन करो जिससे मेरे दुःख का अन्त हो जाय । 'ऐसा ही होगा', विशाल पराक्रमी हनुमान् ने ऐसी प्रतिज्ञा की ॥ ५ ॥ पश्चात् जानकी को सिर झुका कर प्रणाम करके चलने के लिये समुद्यत हो गए। प्रस्थान करने के लिये समुद्यत वायुपुत्र हनुमान् को जानकर ॥ ६ ॥ बाष्पगद्गद स्वर से मिथिलेशकुमारी जानकी उनसे बोली । हे हनुमान् ! राम लक्ष्मण से कुशल कहना ॥ ७ ॥ मन्त्रिमण्डल के सहित राजा सुग्रीव को तथा समस्त वयोवृद्ध वनवासियों को हे वीर ! धर्मयुक्त कुशल कहना ॥ ८ ॥ इस विपत्ति समुद्र से जिस उपाय के द्वारा विशाल भुजा वाले रामचन्द्र मेरा उद्धार करें, उस उपाय का समाधान तुम करना ॥ ९ ॥ कीर्तिमान् रामचन्द्र जिस प्रकार जीवित रहते हुए मुझको मिलें, हे हनुमन् ! तुम वही उपाय करना, अथवा उसी प्रकार बातें करना । इस प्रकार के वचन से तुम्हें धर्म प्राप्त होगा ॥ १० ॥ तुम्हारी बातों को सुनकर नित्य हो उत्साहयुक्त रामचन्द्र का मेरी प्राप्ति के लिये उद्योग वृद्धिङ्गत होगा ॥ ११ ॥ तुम्हारे द्वारा मेरी बातों को सुनकर ही वीर रामचन्द्र विधिवत् उद्योग या पुरुषार्थ करने का प्रयत्न करेंगे ॥ १२ ॥ वायुपुत्र हनुमान् सीता की इन बातों को सुनकर नतमस्तक हाथ जोड़कर उत्तर में यह वचन बोले ॥ १३ ॥ वनवासियों की विशाल सेना लेकर रामचन्द्र शीघ्र ही आवेंगे । जो संग्राम में शत्रुओं को मारकर तुम्हारे शोक को दूर करेंगे ॥ १४ ॥ देव, असुर, मनुष्यों में किसी को मैं ऐसा नहीं देखता जो बाण बरसाते हुए रामचन्द्र के सामने आने का साहस करे ॥ १५ ॥ सूर्य, पर्जन्य (बादल), तथा वैवस्वत यमराज इनकी शक्ति का सामना करने में भी रामचन्द्र समर्थ हैं, विशेषकर तुम्हारे लिये । (अर्थात् तुम्हारे लिये रामचन्द्र गर्मी, बरसात तथा मृत्यु का भी सामना कर सकते हैं ।) ॥ १६ ॥ हे जनकराजकुमारि ! समुद्रपर्यन्त पृथिवी को भी रामचन्द्र हस्तगत कर सकते हैं । तुम्हारे लिये रामचन्द्र की विजय निश्चित है ॥ १७ ॥ सत्य तथा मधुर हनुमान् की बातों को अच्छी प्रकार सुनकर जानकी

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक्सत्यं सुभाषितम् । जानकी बहु मेनेऽथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥१८॥
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः । भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥१९॥
यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम । कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥२०॥
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर । अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥२१॥
गते हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु । प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥२२॥
तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् । दुःखाद् दुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥२३॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वरः ॥२४॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥२५॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥२६॥
तदस्मिन् कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे । किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥२७॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥२८॥
बलैः समग्रैर्यदि मां रावणं जित्य संयुगे । विजयी स्वपुरीं यायात्तत्तु मे स्याद्यशस्करम् ॥२९॥
शरैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥३०॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥३१॥
तदर्थोपहितं वाक्यं सहितं हेतुसंहितम् । निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥३२॥

उनका हार्दिक आदर करती हुई ये वचन बोली ॥ १८ ॥ स्वामिभक्त हनुमान् को जाने के लिये उद्यत देखकर सीता ने अत्यन्त स्नेह के कारण उनका हार्दिक सत्कार किया ॥ १९ ॥ हे महावीर ! यदि तुम इस बात को उचित समझो तो किसी गुप्त स्थान में एक दिन यहाँ और निवास करो और कल पुनः विश्राम करके जाना ॥ २० ॥ हे वनवासी वीर ! तुम्हारे एक दिन यहाँ रह जाने से मुझ भाग्यहीना को इन आपदाओं से थोड़ी देर के लिये शान्ति मिल जाएगी ॥ २१ ॥ हे वनवासी वीर ! कहीं तुम्हारे पुनरागमन में सन्देह हुआ, तो मेरा प्राण भी सन्देहास्पद हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥ २२ ॥ हे वनवासिन् ! तुम्हारे अदर्शन से जो मुझे शोक होगा, वह पूर्ण दुःखों से सन्तप्त मुझको प्रदीप्त अग्नि की तरह सन्ताप देगा ॥ २३ ॥ हे वीर ! तुम्हारी उपस्थिति में मेरा यह सन्देह तो अभी बना ही हुआ है । तुम्हारे सम्पूर्ण सहायक वनवासी सैनिक तथा वनवासियों के राजा सुग्रीव ॥ २४ ॥ उनकी विशाल सेना, दोनों राजकुमार राम, लक्ष्मण इस दुर्गम महान् समुद्र को किस प्रकार पार करेंगे ॥२५॥ इस समय तीन प्रकार की शक्ति ही समुद्र पार जाने में समर्थ मानी जाती हैं—गरुड़ की, तुम्हारी और वायु की ॥२६॥ हे वीर ! दुर्गमनीय इस कार्य की सफलता के लिये तुम कौन सा साधन समझ रहे हो । हे कर्मयोगियों में कुशल ! तुम्हारी बुद्धि में इसका क्या समाधान है ॥ २७ ॥ हे शत्रुञ्जय ! इस कार्य के साधन में वस्तुतः तुम एक ही समर्थ हो । इस कार्य सिद्धि का श्रेय भी तुमको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ यदि सङ्ग्राम में सम्पूर्ण सेना के समेत रावण पर विजय प्राप्त कर विजेता के रूप में मुझ समेत अपने पुर को प्रस्थान करें, यह उनके लिये उपयुक्त होगा ॥ २९ ॥ शत्रुसैन्य के मान भञ्जन करने वाले रामचन्द्र अपनी सम्पूर्ण सेना से लङ्का को परिपूरित करके अर्थात् क्षुब्ध करके यदि मुझको यहाँ से ले जायँ तो उनके लिये यह योग्य होगा ॥ ३० ॥ रणदुर्मद महात्मा रामचन्द्र का पराक्रम जिस प्रकार उनके शील स्वभाव के अनुकूल हो, तुम वही उपाय करो ॥ ३१ ॥ युक्तियुक्त अर्थपरिपूर्ण तथा स्नेहयुक्त सीता की इन बातों को सुनकर हनुमान् उत्तर में यह वचन बोले ॥ ३२ ॥ हे देवि ! वनवासी

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥३३॥
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः । क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥३४॥
तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः । मनःसंकल्पसंपाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥३५॥
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः । न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥३६॥
असकृत्तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा । प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥३७॥
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः । मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥३८॥
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः । न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥३९॥
तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते । एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥४०॥
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ । त्वत्सकाशं महासत्त्वौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥४१॥
तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ । आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥४२॥
सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः । त्वामादाय वरारोहे स्वपुरं प्रतियास्यति ॥४३॥
तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी । न चिराद्द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम् ॥४४॥
निहते राक्षसेन्द्रेऽस्मिन् सपुत्रामात्यबान्धवे । त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥४५॥
क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं यास्यसि मैथिलि । रावणं चैव रामेण निहतं द्रक्ष्यसेऽचिरात् ॥४६॥

सेना के सम्राट् सत्यव्रती (सत्यप्रतिज्ञ) महाराज सुग्रीव ने निश्चयपूर्वक तुम्हारे लिये उद्धार प्रतिज्ञा की है ॥ ३३ ॥ हे वैदेहि ! राक्षस वंश के विनाशक सुग्रीव हजारों तथा लाखों वनवासी सैनिकों के साथ शीघ्र ही इस लङ्का में आवेंगे ॥ ३४ ॥ पराक्रम संपन्न, धैर्यवान्, महाबलशाली, सङ्कल्प से कार्य में प्रवृत्त होने वाले वीर वनवासी सैनिक सम्राट् सुग्रीव के निदेशकारी हैं (अर्थात् उनकी आज्ञा के पालक हैं) । ॥ ३५ ॥ ऊपर, नीचे अगल, बगल जिनकी गति कभी भी अवरुद्ध नहीं होती । जो अमित तेजस्वी, महान् से महान् विकट कार्यों में भी कभी उद्विग्न नहीं होते ॥ ३६ ॥ गति में वायु के समान वेग वाले उन सैनिकों ने पर्वत तथा सागर से परिपूर्ण इस भूभाग की अनेकों बार प्रदक्षिणा की है ॥ ३७ ॥ वहाँ पर मुझ से बढ़कर तथा मेरे समान वनवासी वीर सैनिक हैं । सुग्रीव की सेना में मुझसे दुर्बल कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ यदि मैं यहाँ चला आया तो उन वीरों के यहाँ आने में क्या सन्देह है । श्रेष्ठ या बलवान् व्यक्ति दूतकार्य के लिये नहीं भेजे जाते । किन्तु छोटे लोग ही इस काम में नियुक्त होते हैं ॥ ३९ ॥ हे देवि ! अब अपने सन्ताप तथा शोक को दूर करो । सैनिकों के सहित ये वनवासी सेनापति एक छलांग में लङ्का आ धमकेंगे ॥ ४० ॥ उदीयमान सूर्य चन्द्र के समान धैर्यशाली नरकेसरी वीर रामचन्द्र तथा लक्ष्मण मेरी पीठ पर बैठकर तुम्हारे समीप आवेंगे ॥४१॥ मानवश्रेष्ठ वे दोनों वीर राम, लक्ष्मण यहाँ आकर अपने तीक्ष्ण बाणों से लङ्का का विध्वंस कर देंगे ॥ ४२ ॥ हे आर्ये ! रघुकुलशिरोमणि रघुनन्दन रामचन्द्र सकुटुम्ब रावण को मारकर तथा तुमको लेकर अपनी पुरी अयोध्या को प्रस्थान करेंगे ॥ ४३ ॥ हे देवि ! अब तुम धैर्य धारण करो । तुम्हारा कल्याण हो । कुछ समय और प्रतीक्षा करो । देदीप्यमान अग्नि के समान रामचन्द्र को आप शीघ्र ही देखेंगी ॥ ४४ ॥ पुत्र, अमात्य, बन्धु-बान्धवों के साथ राक्षसराज रावण के मारे जाने पर जैसे रोहिणी नक्षत्र चन्द्रमा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप रामचन्द्र को प्राप्त होंगी ॥ ४५ ॥ हे देवि ! मिथिलेश-कुमारि ! इन आपदाओं का अन्त आप शीघ्र ही देखेंगी । बलपूर्वक राम के द्वारा रावण का नाश भी आप शीघ्र ही देखेंगी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वायुपुत्र हनुमान् सीता को आश्वासन देकर लौटने का विचार करके

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः। गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥४७॥
तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्। लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपस्थितम् ॥४८॥
नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान्। वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान्॥४९॥
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु। नर्दतां कपिमुख्यानामचिराच्छ्रोष्यसि स्वनम् ॥५०॥
स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा। न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥५१॥
मा रुदो देवि शोकेन मा भूत्ते मनसोऽप्रियम्। शचीव पत्या शक्रेण भर्त्रा नाथवती ह्यसि ॥५२॥
रामाद्विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति कश्चित्सौमित्रिणा समः। अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ॥५३॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्संदेशो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः

हनूमत्प्रेषणम्

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः। उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥ १ ॥

जानकी से पुनः यह बोले ॥ ४७ ॥ अरिमर्दन, उन्नत विचार वाले रामचन्द्र को, धनुर्धारी लक्ष्मण को लङ्काद्वार पर उपस्थित हुए शीघ्र ही देखोगी ॥ ४८ ॥ नख, दन्त, आयुध वाले, सिंह व्याघ्र के समान पराक्रमी, मतवाले हाथी की तरह रणदुर्मद आए हुए वनवासी सैनिकों को आप शीघ्र देखेंगी ॥ ४९ ॥ लङ्कागत मलय-पर्वत की चोटियों पर विशालकाय पर्वत के समान तथा गर्जते हुए मेघ के समान, वीर वनवासी सैनिकों के गर्जते हुए शब्द को तुम शीघ्र ही सुनोगी ॥ ५० ॥ घोर क्लेश से जिसको मर्मान्त वेदना हो रही है, ऐसे रामचन्द्र शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं, जिस प्रकार सिंह से आक्रान्त हाथी शान्ति नहीं प्राप्त करता ॥ ५१ ॥ हे देवि ! अब आप न रोवें। शोक जनित भय अपने मन से निकाल देवें। हे जानकि ! इन्द्र के द्वारा जैसे शची सनाथा है, वैसे ही रामचन्द्र के द्वारा तुम भी सनाथा हो ॥ ५२ ॥ राम से बढ़कर इस जगती-तल में कौन है। लक्ष्मण के समान वीर संसार में कौन है। अग्नि और वायु के समान इन दोनों भाइयों के संरक्षण में तुम हो ॥ ५३ ॥ अतिभयानक राक्षसों से परिपूर्ण इस लङ्कापुरी में अब आपको अधिक समय तक नहीं रहना होगा। आपके प्रिय राम के आने में अब देर नहीं। जब तक मेरी रामचन्द्र से भेंट नहीं होती तब तक इन क्लेशों को सहती हुई आप अपने प्राणों की रक्षा करें ॥ ५४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान को संदेश' विषयक उनतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ सर्ग

हनुमान् को भेजना

पवनपुत्र हनुमान् की इन बातों को सुनकर देवकन्या के समान सीता अपने उद्धार संबन्धी बातों को

त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं संप्रहृष्यामि वानर । अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा ॥ २ ॥
यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः । संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ॥ ३ ॥
अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम । क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम्॥ ४ ॥
मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः । त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
स वीर्यवान् कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे । वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ६ ॥
एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः । एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥ ७ ॥
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसंभवः । अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥ ८ ॥
असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः । राक्षसीनां सुघोराणां त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥ ९ ॥
धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन । मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥१०॥
घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि । त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमहं क्षणम् ॥११॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् । अथाब्रवीन्महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥१२॥
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे । रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥१३॥
कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् । इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥१४॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावरिंदमौ । त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥१५॥

सुनकर बोली॥१॥ हे वनवासी वीर! वर्षा को प्राप्त अङ्कुरित धान्ययुक्त पृथिवी के समान आप जैसे प्रियवक्ता को देखकर मैं प्रसन्नता से गद्गद हो गई हूँ ॥२॥ शोक से अत्यन्त कृश तथा शुभकामना वाली मैं उस नरकेसरी रामचन्द्र से जिस प्रकार मिल सकूं, दयापूर्वक आप वही उपाय करें ॥३॥ हे श्रेष्ठ वनवासिन्! क्रोध से कौए की आँख फोड़ने वाले इषीकास्त्र का स्मरण रामचन्द्र को दिलाना ॥४॥ तिलकबिन्दु के नष्ट हो जाने पर कपोल के समीप में मैनसिल धातु का जो तिलक आपने लगाया था, उसका स्मरण करो। (ये बातें भी कहना) ॥ ५ ॥ इन्द्र और वरुण के समान पराक्रम वाले रामचन्द्र अपहृत मुझ सीता का राक्षसों के बीच में निवास कैसे सहन कर रहे हैं ॥६॥ हे निष्कलङ्क रामचन्द्र! यह जो दिव्य चूड़ामणि है अद्यावधि इसको मैंने सुरक्षित रखा है। इस विपत्ति में भी इसको देखकर आपके मिलन सुख का अनुभव करती हूँ ॥ ७ ॥ समुद्र से निकले हुए इस मणिरत्न को मैं आप के समीप भेज रही हूँ। अब इसके पश्चात् शोक पीड़ित मैं अधिक काल तक जीवित न रह सकूंगी ॥ ८ ॥ असह्य अनेकों प्रकार का दुःख, मर्म भेदने वाली बातें, क्रूर राक्षसों के मध्य में निवास यह सब कुछ आपके मिलने की आशा से ही मैं सह रही हूँ ॥ ९ ॥ हे शत्रुनाशी राजकुमार! एक मासावधि मैं अपने को जीवित रख सकूंगी। एक मास के पश्चात् मेरा जीवन आपके बिना असंभव है ॥ १० ॥ यह राक्षसराज रावण महान् क्रूर है। मेरे प्रति इसकी दृष्टि भी अच्छी नहीं है। इस अवस्था में भी आप आने में विलम्ब कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मैं क्षण भर भी जीना नहीं चाहती ॥ ११ ॥ दयनीय, अश्रुपूर्ण, करुणामय जानकी की बातों को सुनकर महातेजस्वी वायुपुत्र हनुमान् बोले ॥ १२ ॥ हे देवि! आपके शोक से रामचन्द्र सब कार्यों से उपरत हो गए हैं। यह मैं सत्य की शपथपूर्वक कह रहा हूँ। रामचन्द्र के शोकाक्रान्त होने पर लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं ॥ १३ ॥ आपका दर्शन किसी प्रकार हो गया। अब दुःख करने का किसी प्रकार समय नहीं। हे तपस्विनि! इस थोड़े ही समय में आप अपने दुःखों का अन्त देखेंगी ॥ १४ ॥ नरकेसरी प्रशंसित वे दोनों राजकुमार तुम्हारे दर्शन के लिये जो उत्कण्ठित हो रहे हैं वे निश्चय ही लङ्का को भस्मीभूत कर देंगे ॥ १५ ॥ हे विशालाक्षि! बन्धु बान्धवों सहित संग्राम में राक्षसराज रावण को मारकर राम लक्ष्मण

हत्वा तु समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् । राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रापयिष्यतः ॥१६॥
यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते । प्रीतिसंजननं तस्य भूयस्त्वं दातुमर्हसि ॥१७॥
साब्रवीद्दत्तमेवेति मयाभिज्ञानमुत्तमम् । एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा मत्केशभूषणम् ॥१८॥
श्रद्धेयं हनुमन् वाक्यं तव वीर भविष्यति । स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान् प्लवगसत्तमः ॥१९॥
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे । तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुंगवम् ॥२०॥
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा । अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥२१॥
हनुमन् सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया ह्यनामयम् ॥२२॥
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ॥२३॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥
स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
अल्पावशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्प्रेषणं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

तुमको यहाँ से अपनी नगरी को ले जाएँगे ॥ १६ ॥ हे अनिन्दिते सीते ! जिस अभिज्ञान (चिह्न) को केवल रामचन्द्र ही जान सकें और जो उनके लिये प्रीतिजनक हो उस प्रकार का कोई और चिह्न भी आप देवें ॥ १७ ॥ पश्चात् जानकी ने कहा कि मैंने उत्तम से उत्तम चिह्न आपको दे दिया । इसी अभिज्ञान को रामचन्द्र सावधानी से देखकर ॥ १८ ॥ हे वीर हनुमन् ! आपको बातों को विश्वसनीय समझेंगे । वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् उस मणिरत्न को लेकर ॥ १९ ॥ तथा सिर झुकाकर जानकी को प्रणाम करके चलने के लिये उद्यत हो गए । वनवासी सेनापति हनुमान् को उत्साहयुक्त तथा चलने के लिये उठते हुए उद्यत देखकर ॥ २० ॥ तथा उनके बढ़ते हुए महान् वेग को देखकर आँखों में आँसू भरती हुई दुःखी जानकी गद्गद वाणी से बोली ॥ २१ ॥ हे हनुमन् ! सिंहसमान दोनों भाई राम लक्ष्मण को तथा मन्त्रिमण्डल के सहित राजा सुग्रीव को कुशलक्षेम कहना ॥ २२ ॥ विशाल भुजावाले रामचन्द्र इस विपत्ति के अगाध समुद्र से जिस प्रकार मेरा उद्धार करें आप वह उपाय करना ॥ २३ ॥ हे वनवासी वीर ! मेरा यह असहनीय दुःख, राक्षसों का तर्जन गर्जनपूर्ण आतङ्क, यह सब राम के समीप जाकर कहना । आपका मार्ग मंगलमय हो ॥ २४ ॥ राजकुमारी जानकी के अभिप्राय के जानने से कृतार्थ प्रसन्नचित्त हनुमान्, अब थोड़ा ही काम अवशेष रह गया है, ऐसा सोचते हुए मन से उत्तर दिशा की ओर जाने का विचार करने लगे ॥२५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् को भेजना' विषयक चालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः

प्रमदावनभञ्जनम्

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन् पूजितस्तया । तस्माद्देशादपक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥
अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा । त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥
न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते ॥ ३ ॥
न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीराश्च रणे हि राक्षसाः कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ॥ ४ ॥
कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत् । पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः । यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ६ ॥
इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यहं यदि व्रजेयं प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसंमर्दविशेषतत्त्ववित्ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ७ ॥
कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्संमानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ८ ॥

इकतालीसवां सर्ग

प्रमदावाटिकाध्वंस

प्रशस्त वाक्यों के द्वारा जानकी से आदर पाने पर उस स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर वनवासी हनुमान् विचार करने लगे ॥ १ ॥ जानकी का दर्शन तो कर लिया। थोड़ा एक काम यह शेष रह गया है। अर्थात् शत्रुशक्ति का परिचय करना। चारों उपायों में से साम, दान, भेद इन तीनों को छोड़कर दण्ड ही मुझे उपयुक्त प्रतीत हो रहा है ॥ २ ॥ राक्षसों में साम या शान्ति का प्रयोग लाभप्रद नहीं होगा और वे स्वयं धनसंपन्न हैं, इसलिये इन धनियों को दान के द्वारा वश में नहीं किया जा सकता। बल से दर्पित बलवानों में भेद भी साध्य नहीं है। इसलिये इन लोगों से पराक्रम का ही बर्ताव मुझे उचित जान पड़ता है ॥ ३ ॥ पराक्रम के अतिरिक्त यहाँ पर कोई रीति सफल नहीं हो सकती। संग्राम में मेरे द्वारा मारे जाने पर, हो सकता है, ये राक्षसगण कुछ ढीले पड़ें। (इसका भाव यह है कि इन राक्षसों के मारे जाने पर उनके अन्दर यह धारणा हो जायगी कि जिसका एक दूत इतना बलवान् है तो उनकी सेना कितनी बलवती होगी। इन विचारों से उनका रणोन्माद दूर हो जायगा) ॥ ४ ॥ मुख्य कार्य में सफलता प्राप्त होने पर जो प्रधान कार्य के अनुकूल दूसरे कार्यों को कर सकता है, वस्तुतः वही सफल कार्यकर्त्ता है ॥५॥ छोटा भी काम हो, उसके लिये भी एक हेतु न होकर अनेकों हेतु होते हैं। जो कार्यसिद्धि को अनेकों हेतुओं से सिद्ध करता है वही कार्य करने में क्षमता रखता है ॥ ६ ॥ शत्रु को विध्वंस करने की पूर्ण जानकारी तथा उनके उपायों का निश्चय यहीं से करके यदि मैं सुग्रीव के समीप जाऊँ तो स्वामी सुग्रीव की आज्ञाकारिता यथार्थ रूप में समझी जायगी ॥ ७ ॥ मेरा यहाँ आना सफल कैसे माना जायगा। राक्षसों के साथ हठात् मेरा युद्ध किस प्रकार होगा। राक्षसराज रावण मेरे तथा अपने बल की तुलना कैसे कर सकेगा? ॥ ८ ॥ उस

ततः समासाद्य रणे दशाननं समन्त्रिवर्गं सबलप्रयायिनम् ।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च वै सुखेन मत्वाहमितः पुनर्व्रजे ॥ ९ ॥
इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् । वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥१०॥
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः । अस्मिन् भग्ने ततः कोपं करिष्यति दशाननः ॥११॥
ततो महत्साश्वमहारथद्विपं बलं समादेक्ष्यति राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टसायुधं ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति ॥१२॥
अहं तु तैः संयति चण्डविक्रमैः समेत्य रक्षोभिरसह्यविक्रमः ।
निहत्य तद्रावणचोदितं बलं सुखं गमिष्यामि कपीश्वरालयम् ॥१३॥
ततो मारुतवत्क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः । ऊरुवेगेन महता द्रुमान् क्षेप्तुमथारभत् ॥१४॥
ततस्तु हनुमान् वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् । मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥१५॥
तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः । चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥१६॥
नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नैः सलिलाशयैः । ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतम् ॥१७॥
न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा । व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः ॥१८॥
लतागृहैश्चित्रगृहैश्च नाशितैर्महोरगैर्व्यालमृगैश्च निर्धुतैः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः प्रनष्टरूपं तदभून्महद्वनम् ॥१९॥
सा विह्वलाशोकलताप्रताना वनस्थली शोकलताप्रताना ।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य ॥२०॥

संघर्ष में सम्पूर्ण सेना, मन्त्री तथा अनुयायियों के साथ रावण को समक्ष पाकर तथा उन सबके मनोगत अभिप्राय तथा बलशक्ति को जानकर पश्चात् मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा ॥ ९ ॥ नाना प्रकार के द्रुम लताओं से युक्त, मन तथा नेत्राभिराम निर्दय राक्षसराज रावण का यह वन (वाटिका) नन्दनवन के समान है ॥ १० ॥ जैसे वन की अग्नि सूखी लकड़ियों को जलाती है उसी प्रकार मैं इस वन का विध्वंस करूँगा । इस वन के विध्वंस हो जाने पर रावण क्रोध करेगा ॥ ११ ॥ पश्चात् घोड़े, हाथी, महान् रथ तथा त्रिशूल, तलवार आदि शस्त्रों से युक्त विशाल सेना लेकर रावण आएगा । तत्पश्चात् उसके साथ में यह महान् युद्ध होगा ॥ १२ ॥ संग्राम में मैं उन प्रचण्ड पराक्रमी राक्षसों से युद्ध करके तथा रावण की भेजी हुई सम्पूर्ण सेना का विध्वंस करके अक्षत शरीर सुखपूर्वक सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा को प्रस्थान करूँगा ॥ १३ ॥ वायु के समान वेगवाले, पराक्रमी क्रुद्ध हनुमान् अत्यन्त वेग से वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर फेंकने लगे ॥ १४ ॥ नानावृक्ष लताओं से परिपूर्ण पक्षिरव से गुञ्जारित उस प्रमदावन को बली हनुमान् उजाड़ने लगे ॥ १५ ॥ वृक्षों के उखाड़ देने से, तालाबों को मथित करने से, कृत्रिम पर्वतों को ढहा देने से वह वन शोभा रहित हो गया ॥ १६ ॥ नाना प्रकार के पक्षियों के चिल्लाने से, तालाबों के छिन्न-भिन्न होने से, लाल पत्तों के शुष्क हो जाने से, वृक्ष लताओं के नष्ट हो जाने से ॥ १७ ॥ दावानलदग्ध वह वन शोभित नहीं हो रहा था । आश्रय नष्ट हो जाने से उद्विग्न स्त्रियों के समान वहाँ की लताएँ प्रतीत होने लगीं ॥ १८ ॥ लतागृह तथा चित्रगृह के भग्न हो जाने से, क्रूर हिंसक जन्तुओं तथा अन्य पशु पक्षियों के आर्तरव से, पत्थर के बने हुए घर तथा सामान्य गृहों के नष्ट हो जाने से वह प्रमदावन शोभारहित हो गया ॥१९॥ हनुमान् के पराक्रम से अशोकवन की लताओं के मुरझा जाने से वह अशोकवन जो रावण की स्त्रियोंके लिये अशोकवन कहलाता था वास्तव में शोकवन बन गया ॥२०॥ पश्चात् अकेले ही अनेकों महाबलवान् राक्षसों से लड़ने के

स तस्य कृत्वार्थपतेर्महाकपिर्महद्व्यलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रमदावनभञ्जनं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

किंकरनिषूदनम्

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च । बभूवुस्त्राससंभ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ १ ॥
विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षिणः । रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे ॥ २ ॥
ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः । तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ॥ ३ ॥
स ता दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः । चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ॥ ४ ॥
ततस्तं गिरिसंकाशमतिकायं महाबलम् । राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥
कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः । कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥ ६ ॥
आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम् । संवादमसितापाङ्गे त्वया किं कृतवानयम् ॥ ७ ॥

लिये उत्सुक वे महान् वनवासी हनुमान् समुन्नत रावण का महान् अनर्थ करते हुए चमचमाते हुए वाटिका के प्रधान द्वार पर आए ॥ २१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'प्रमदावाटिकाध्वंस' विषयक इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ सर्ग

किंकर-वध

वाटिकाध्वंस के समय पक्षिगण के अत्यन्त कोलाहल करने से तथा वृक्षों के टूटने गिरने के भयङ्कर शब्द से सम्पूर्ण लङ्का निवासियों में भयङ्कर त्रास उत्पन्न हो गया ॥ १ ॥ भागते हुए पशुपक्षिगण अत्यन्त कोलाहल करने लगे। राक्षसों के समक्ष नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे ॥ २ ॥ कोलाहल के द्वारा राक्षसियों की नींद टूट जाने पर विकराल मुख वाली उन राक्षसियों ने उस प्रमदावन को उजड़ा हुआ देखा और उस वनवासी वीर हनुमान् को देखा ॥ ३ ॥ विशाल भुजा वाले महाबली हनुमान् ने उन राक्षसियों को भयभीत करने के लिये अपना विशाल आकार बनाया ॥ ४ ॥ विशाल, पर्वताकार, महाबली हनुमान् के रूप को देखकर राक्षसियाँ जानकी से पूछने लगीं ॥ ५ ॥ यह कौन है ? किसका व्यक्ति है ? कहां से आया है ? किस कारण से यहाँ आया है ? तुम्हारे साथ इसने क्यों बातें कीं ? ॥ ६ ॥ हे विशालाक्षि ! ये सब बातें हमसे कहो। तुम भय मत करो। हे शुभाङ्गि ! तुम्हारे साथ इसने क्या बातें की हैं ॥ ७ ॥ पश्चात्

अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गसुन्दरी। रक्षसां भीमरूपाणां विज्ञाने मम का गतिः ॥ ८ ॥
यूयमेवाभिजानीत योऽयं यद्वा करिष्यति। अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः ॥ ९ ॥
अहमप्यस्य भीतास्मि नैनं जानामि को न्वयम्। वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥१०॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता दिशः। स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम् ॥११॥
रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः। विरूपं वानरं भीममाख्यातुमुपचक्रमुः ॥१२॥
अशोकवनिकामध्ये राजन् भीमवपुः कपिः। सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥१३॥
न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना। अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति ॥१४॥
वासवस्य भवेद्दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा। प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया ॥१५॥
तेन त्वद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम्। नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् ॥१६॥
न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः। यत्र सा जानकी सीता स तेन न विनाशितः ॥१७॥
जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद्वा नोपलक्ष्यते। अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥१८॥
चारुपल्लवपुष्पाढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता। प्रवृद्धः शिंशपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥१९॥
तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि। सीता संभाषिता येन तद्वनं च विनाशितम् ॥२०॥
मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर। कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्त्यक्तजीवितः ॥२१॥

सर्वाङ्गसुन्दरी साध्वी सीता बोली—स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले राक्षसों के व्यवहार जानने में मैं असमर्थ हूँ ॥ ८ ॥ तुम लोग ही जानो कि यह कौन है और क्या करेगा। इसमें कोई संशय नहीं कि साँप ही सांप के पैरों को जानता है ॥ ९ ॥ मैं भी अत्यन्त डर गई हूँ और मैं नहीं जानती कि यह कौन है। स्वच्छन्द विचरण करने वाला यह कोई राक्षस ही है, ऐसा मैं समझती हूँ ॥ १० ॥ जानकी के इन वचनों को सुनकर राक्षसियाँ शीघ्र ही वहाँ से उठ पड़ीं। कुछ तो वहीं ठहर गईं और कुछ रावण से निवेदन करने के लिये उसके समीप चली गईं ॥ ११ ॥ विकराल मुख वाली राक्षसियाँ रावण के समीप जाकर भीषण आकृति वाले, विकराल वनवासी के सम्पूर्ण वृत्तान्त को रावण से निवेदन किया ॥ १२ ॥ हे राजन्! अशोकवाटिका के मध्य में विशाल काय कोई वनवासी आया है। उस अत्यन्त पराक्रमी वनवासी ने सीता से बातें भी की हैं ॥ १३ ॥ मृगनयनी जानकी हम लोगों के बार-बार पूछने पर भी उस वनवासी का परिचय नहीं देना चाहती ॥ १४ ॥ यह इन्द्र का दूत हो सकता है अथवा अलकापुरी के सम्राट् कुबेर का दूत हो सकता है या रामचन्द्र के द्वारा भेजा हुआ सीता के खोजने की इच्छा से आया हुआ दूत हो सकता है ॥ १५ ॥ उसी अद्भुत आकार वाले वनवासी ने नाना प्रकार के पशु पक्षियों से परिपूर्ण अत्यन्त मनोहर आपके प्रमदावन को ध्वस्त कर दिया है ॥ १६ ॥ उस वन में कोई ऐसा स्थान शेष नहीं रह गया है, जिसको उसने नष्ट न किया हो। केवल उसी स्थान को उसने नष्ट नहीं किया है जहाँ देवी जानकी रहती थी ॥ १७ ॥ जानकी की रक्षा के लिये अथवा श्रान्त होकर उसने उस स्थान को नष्ट नहीं किया, इसका हम लोग निश्चय नहीं कर सकीं। अथवा वह श्रमित ही क्या हो सकता है। सीता की रक्षा के कारण ही उसने उस स्थान को नष्ट नहीं किया ॥ १८ ॥ अत्यन्त शोभित पत्रों से परिपूर्ण उस शिंशपा वृक्ष की उसने रक्षा की है, जहाँ पर सीता बैठी थी ॥ १९ ॥ उस भयानक स्वरूप वाले वनवासी को आप भयङ्कर दण्ड दें जिसने कि सीता के साथ सम्भाषण किया है तथा प्रमदावन को नष्ट किया है ॥ २० ॥ हे राक्षसराज! इसकी स्पृहा आप मन से करते हैं। नष्ट आयु वाले को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है जो सीता के साथ भाषण कर सकता है ॥ २१ ॥ राक्षसियों की इन बातों को सुनकर हुताग्नि के समान राक्षसराज रावण की आँखें

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः। हुताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः ॥२२॥
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नस्रबिन्दवः। दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥२३॥
आत्मनः सदृशाञ्शूरान् किंकरान्नाम राक्षसान्। व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥२४॥
तेषामशीतिसाहस्रं किंकराणां तरस्विनाम्। निर्ययुर्भवनात्तस्मात्कूटमुद्गरपाणयः ॥२५॥
महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः। युद्धाभिमनसः सर्वे हनुमद्ग्रहणोन्मुखाः ॥२६॥
ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम्। अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम् ॥२७॥
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः। आजघ्नुर्वानरश्रेष्ठं शरैश्चादित्यसंनिभैः ॥२८॥
मुद्गरैः पट्टिसैः शूलैः प्रासतोमरशक्तिभिः। परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥२९॥
हनुमानपि तेजस्वी श्रीमान् पर्वतसंनिभः। क्षिताविध्य हस्तौ द्वौ ननाद च महास्वनम् ॥३०॥
स भूत्वा सुमहाकायो हनुमान् मारुतात्मजः। गात्रमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥३१॥
तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना। पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥३२॥
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥३३॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥३४॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्। शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥३५॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्। समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥३६॥

प्रज्वलित हो उठीं तथा क्रोध से इधर-उधर नाचने लगीं ॥ २२ ॥ क्रुद्ध हुई रावण की दोनों आँखों से इस प्रकार बूंदें गिरने लगीं जैसे जलते हुए दो दीपों से ज्वाला सहित तेल की बूंदें टपकती हों ॥ २३ ॥ अपने समान वीर किंकर नाम वाले राक्षसों को महातेजस्वी रावण ने हनुमान् को दण्डित करने के लिये भेजा ॥ २४ ॥ कूट, मुद्गर आदि शस्त्रों को लेकर अत्यन्त वेग वाले ८० हजार रावण के किङ्कर सैनिक उसके भवन से निकल पड़े ॥२५॥ विशाल उदर वाले, भयानक रूप तथा लम्बे दांत वाले किंकर युद्धेच्छु तथा महाबली हनुमान् को पकड़ने के लिए वहाँ से चल पड़े ॥ २६ ॥ हनुमान् जिस तोरण (वाटिकाद्वार) के समीप बैठे थे, अग्नि के समक्ष पतङ्गवत् वे सभी बलवान् राक्षस वहाँ पहुँचे ॥२७॥ विचित्र गदाओं, परिघों, काञ्चनमयी श्रृङ्खलाओं तथा सूर्य के समान देदीप्यमान बाणों से युक्त वे वनवासिश्रेष्ठ वीर हनुमान् के पास पहुँचे ॥ २८ ॥ मुद्गर, पट्टिस, शूल, फरसा आदि शस्त्रों को हाथ में लेकर हनुमान् को चारों तरफ से घेरकर उनके समक्ष खड़े हो गए ॥ २९ ॥ विशालकाय, तेजस्वी, श्रीमान् हनुमान् ने भी भूमि पर दोनों हाथों को पटक कर भयङ्कर महाध्वनि से गर्जन किया ॥३०॥ पवनपुत्र हनुमान् ने विशाल काय होकर अपने गर्जन से लङ्का को प्रतिध्वनित करते हुए अङ्गड़ाई ली ॥ ३१ ॥ उनके हस्तादि पटकने की ध्वनि से तथा भयङ्कर गर्जन से गगनचारी पक्षी भी आतङ्कित होकर नीचे गिर पड़े। उस समय हनुमान् ने यह उद्घोष किया ॥ ३२ ॥ अत्यन्त बलवान् पुरुषोत्तम रामचन्द्र की जय हो। महाबली लक्ष्मण की जय हो। रामचन्द्र से अभिरक्षित वनवासि-सम्राट् सुग्रीव की जय हो ॥ ३३ ॥ शोभनकर्मा कोसलाधीश रामचन्द्र का मैं दास हूँ। मैं वायु का पुत्र तथा शत्रुनाशक हूँ और मेरा नाम हनुमान् है ॥ ३४ ॥ चट्टानों तथा हजारों वृक्षों से प्रहार करते हुए युद्ध में मेरे समक्ष हजारों रावण भी नहीं ठहर सकते ॥ ३५ ॥ लङ्कापुरी को ध्वस्त करके मिथिलेशकुमारी जानकी को प्रणाम करके सम्पूर्ण राक्षसों के समक्ष ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा ॥ ३६ ॥ उनके गर्जन शब्द से आए हुए सम्पूर्ण राक्षस सैनिक भय से आतङ्कित हो गए, तथा

तस्य संनादशब्देन तेऽभवन् भयशङ्किताः । ददृशुश्च हनूमन्तं सन्ध्यामेघमिवोन्नतम् ॥३७॥
स्वामिसंदेशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् । चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुः सहस्रशः ॥३८॥
स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः । आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥३९॥
स तं परिघमादाय जघान च निशाचरान् । स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ॥४०॥
विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः । स हत्वा राक्षसान् वीरान् किंकरान् मारुतात्मजः ॥४१॥
युद्धकाङ्क्षी पुनर्वीरस्तोरणं समुपाश्रितः । ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ॥४२॥
निहतान् किंकरान् सर्वान् रावणाय न्यवेदयन् ॥

स राक्षसानां निहतं महद्बलं निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे किंकरनिषूदनं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

चैत्यप्रासाददाहः

ततः स किंकरान् हत्वा हनुमान् ध्यानमास्थितः । वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥१॥

सन्ध्याकाल में उठे हुए मेघ के समान हनुमान् को देखा ॥ ३७ ॥ हनुमान् के द्वारा अपने स्वामी राम आदि का स्वयं परिचय देने से उन राक्षसों का सन्देह अब जाता रहा । पश्चात् वे निश्शङ्क होकर भयङ्कर शस्त्रास्त्रों को लेकर हनुमान् पर टूट पड़े ॥ ३८ ॥ उन वीर सैनिकों से चारों तरफ से घिर जाने पर महाबली हनुमान् ने तोरण के समीप रखे हुए लोहे के परिघ नामक अस्त्र को उठाया ॥ ३९ ॥ हनुमान् ने उस परिघ नामक अस्त्र को लेकर उन सभी राक्षसों को इस प्रकार मार डाला जिस प्रकार गरुड़ नामक पक्षी तिलमिलाते हुए सर्पों को मार डालता है ॥ ४० ॥ उस परिघ नामक अस्त्र को लेकर वायुपुत्र वीर हनुमान् स्वच्छन्द खुले अकाश में विचरण करने लगे । पश्चात् पवनसुत हनुमान् वीर तथा किङ्कर नामक दैत्यानुयायी राक्षसों को मारकर ॥ ४१ ॥ युद्ध की आकाङ्क्षा रखते हुए पुनः उस तोरण के समीप आकर बैठ गए । उस भीषण संग्राम से बचकर किङ्कर के अनुयायी कुछ राक्षसों ने राक्षसराज रावण के समीप जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ॥ ४२ ॥ राक्षसों की विशाल सेना के नष्ट होने का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण के नेत्र इधर उधर चारों तरफ घूमने लगे । समर में दुर्जय, अत्यन्त पराक्रमी, अप्रतिद्वन्द्वी प्रहस्त के पुत्र को संग्राम में रावण ने जाने की आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'किंकर-वध' विषयक बयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवां सर्ग

राक्षसी यज्ञशाला का दाह

रावण के आए हुए सम्पूर्ण किङ्करों का वध करके हनुमान् कुछ देर के लिये ध्यानमग्न होकर यह विचार करने लगे कि मैंने इस प्रमदावन को तो नष्ट कर दिया परन्तु इन राक्षसों का चैत्य प्रासाद (राक्षसी यज्ञ शाला—जहाँ मद्य मांस का भी प्रयोग होता है) को नष्ट नहीं किया ॥ १ ॥ इसलिये आज ही मैं इस

तस्मात्प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम् । इति संचिन्त्य मनसा हनुमान् दर्शयन् बलम् ॥ २ ॥
चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् । आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ३ ॥
आरुह्य गिरिसंकाशं प्रासादं हरियूथपः । बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ॥ ४ ॥
संप्रधृष्य च दुर्धर्षं चैत्यप्रासादमुत्तमम् । हनुमान् प्रज्वलल्लँक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥ ५ ॥
स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान्मारुतात्मजः । धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥
तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना । पेतुर्विहङ्गमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥
अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् । शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥१०॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् । समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥११॥
एवमुक्त्वा महाबाहुश्चैत्यस्थो हरियूथपः । ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन् भयम् ॥१२॥
तेन शब्देन महता चैत्यपालाः शतं ययुः । गृहीत्वा विविधानस्त्रान् प्रासान् खड्गान् परश्वधान् ॥१३॥
विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन् । ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ॥१४॥
आजघ्नुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसंनिभैः । आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥१५॥
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः । ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥१६॥

चैत्य मन्दिर का नाश करूंगा। मन से इस प्रकार चिन्तन करते हुए तथा अपने बल का प्रदर्शन करते हुए ॥ २ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ वह पवन पुत्र महावीर हनुमान् मेरु पर्वत के समान उन्नत शिखर वाले उस प्रासाद पर कूद कर चढ़ गए ॥ ३ ॥ विशाल काय उस प्रासाद पर चढ़कर महातेजस्वी वनवासी सेनापति हनुमान् नवोदित सूर्य के समान सुशोभित होने लगे ॥ ४ ॥ समुन्नत राक्षसो यज्ञशाला का ध्वंस कर विजय-गर्व से प्रज्वलित, दुर्धर्ष हनुमान् पारियात्र पर्वत के समान प्रतीत होने लगे ॥५॥ पवनपुत्र हनुमान् ने अपने प्रभाव से विशालकाय होकर निर्भय होकर चैत्य मन्दिर को तोड़ा ॥ ६ ॥ जिसके महान् शब्द से लङ्का परिपूर्ण हो गई पक्षिगण गिरने लगे तथा सभी चैत्यरक्षक मूर्छित हो गए ॥ ७ ॥ अस्त्रवेत्ता मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की जय हो और महाबली लक्ष्मण की जय हो। रामचन्द्र से पालित वनवासि-सम्राट् सुग्रीव की जय हो ॥८॥ पुण्यकर्मा कोसलाधीश रामचन्द्र का मैं दास हूं। मैं पवन का पुत्र, शत्रु सैन्य का नाशक हूँ, मेरा नाम हनुमान है ॥ ९ ॥ पत्थर की शिलाओं तथा हजारों वृक्षों के द्वारा मैं प्रहार करूंगा। उस समय हजारों रावण भी मेरे सम्मुख नहीं खड़े हो सकेंगे ॥ १० ॥ लङ्कापुरी को ध्वस्त करके, मिथिलेश कुमारी जानकी को प्रणाम करके सफल मनोरथ मैं सब राक्षसों के सामने ही चला जाऊँगा ॥ ११ ॥ चैत्यप्रासाद (राक्षसी यज्ञशाला) पर बैठे हुए विशालकाय वनवासी सेनापति हनुमान् ने इस प्रकार कह कर राक्षसों में भय उत्पन्न करते हुए भीषण घोर गर्जन किया ॥ १२ ॥ उस महान् गर्जन को सुनकर सैकड़ों चैत्यपाल विविध प्रकार के अस्त्र, खड्ग आदि को लेकर जहाँ तहाँ से सभी चल पड़े ॥ १३ ॥ उन विशालकाय राक्षसों ने विचित्र गदा तथा काञ्चनचित्रित परिघादि अस्त्रों का प्रयोग करते हुए हनुमान् को चारों तरफ से घेर लिया ॥१४॥ गङ्गाजल के बड़े भँवर के समान, सूर्य के समान देदीप्यमान बाणों की वर्षा करते हुए वनवासि-श्रेष्ठ हनुमान् के समीप सब आ गए ॥ १५ ॥ वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् पर उन अस्त्रों का प्रयोग करके राक्षस लोग अत्यन्त गर्वित हो गए। पश्चात् पवनसुत क्रुद्ध हनुमान् ने अपना भीषण रूप धारण किया ॥ १६ ॥

प्रासादस्य महान्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् । उत्पाटयित्वा वेगेन हनुमान् पवनात्मजः ॥१७॥
ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः । तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥१८॥
दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः । स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥१९॥
अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् । मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ॥२०॥
बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् । अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥२१॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥२२॥
सन्ति चौघबलाः केचित्केचिद्वायुबलोपमाः । अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन् हरियूथपाः ॥२३॥
ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः । शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ॥२४॥
आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः । नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः ॥२५॥
यस्मादिक्ष्वाकुनाथेन बद्धं वैरं महात्मना ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चैत्यप्रासाददाहो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

जम्बुमालिवधः

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली । जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥ १ ॥

पश्चात् पवनसुत हनुमान् ने अपने बल वेग से स्वर्ण चित्रित उस प्रासाद के एक खम्भे को उखाड़ दिया ॥ १७ ॥ उस सौ धारी वाले विशाल खम्भे को महाबली हनुमान् ने घुमाया । उसके घुमाने से उसमें अग्नि उत्पन्न हो गई । उससे राक्षसी यज्ञशाला जलने लगी ॥ १८ ॥ इन्द्र के वज्र से मरे हुए असुरों की तरह हजारों राक्षसों को मार कर तथा जलते हुए उस चैत्यमन्दिर (राक्षसी यज्ञ शाला) को देखकर वनवासी सेनापति ॥ १९ ॥ श्रीमान् हनुमान् खुले आकाश में अवस्थित हुए ये वचन बोले । मेरे समान भेजे हुए हजारों महावीर ॥ २० ॥ बली वनवासी सैनिक जो सुग्रीव के आज्ञाकारी हैं ऐसे हम लोग तथा अन्य वनवासी वीर समस्त भूभाग में घूम रहे हैं ॥ २१ ॥ कोई दस हाथी के समान बल वाले, कोई सौ हाथी के समान बल वाले, तथा कोई सहस्र हाथी के समान बल वाले हम लोगों में हैं ॥ २२ ॥ उन भ्रमण करने वाले वनवासी वीरों में कोई इन सबसे भी बलवान् हैं, कोई वायुवेग के समान हैं तथा कुछ ऐसे वनवासी वीर हैं, जिनके बल का पता नहीं लगाया जा सकता ॥ २३ ॥ दन्त, नख, आयुध वाले इस प्रकार के हजारों लाखों वनवासियों से घिरे हुए ॥ २४ ॥ तुम लोगों का नाश करने वाले सम्राट् सुग्रीव यहाँ आवेंगे । अब न तो यह लङ्कापुरी ही बचेगी, न तुम लोग बच सकोगे और न ही राक्षसराज रावण बच सकेगा क्योंकि इक्ष्वाकुकुलवीर महात्मा रामचन्द्र से वैर भाव उत्पन्न हो गया है ॥ २५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'राक्षसी यज्ञशाला का दाह' विषयक तैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

चवालीसवां सर्ग

जम्बुमाली का वध

राक्षसराज रावण की आज्ञा से प्रहस्त का पुत्र महाबली, विकराल दांतों वाला जम्बुमाली हाथों में धनुष लेकर चल पड़ा ॥ १ ॥ लाल वस्त्र का धारण करने वाला, कानों में कमनीय कुण्डल वाला, मालाधारी

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः । महान् विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः ॥ २ ॥
धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद्रुचिरसायकम् । विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३ ॥
तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः । प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ४ ॥
रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः । हनुमान् वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ ५ ॥
तं तोरणविटङ्कस्थं हनुमन्तं महाकपिम् । जम्बुमाली महाबाहुर्विव्याध निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना । बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तं कपीश्वरम् ॥ ७ ॥
तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् । शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥ ८ ॥
तत्तस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम् । यथाकाशे महापद्मं सिक्तं चन्दनबिन्दुभिः ॥ ९ ॥
चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः । ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् ॥१०॥
तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप बलवद्बली । तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥११॥
विपन्नं कर्म तद्दृष्ट्वा हनुमांश्चण्डविक्रमः । सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥१२॥
भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम् । चिक्षेप सुबहून् बाणान् जम्बुमाली महाबलः ॥१३॥
सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे । शिरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥१४॥
स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः । तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगतः ॥१५॥

विशाल आंखें फाड़े हुए अत्यन्त क्रोध में आया हुआ वह जम्बुमाली समर में अजेय माना जाता था ॥ २ ॥ उसका धनुष इन्द्र के धनुष के तुल्य था, विशाल सुन्दर बाण जिस पर चढ़े हुए थे। वेगवान् उसके धनुष का शब्द वज्र के समान प्रतिध्वनित होता था ॥ ३ ॥ दूर तक फैलने वाले उसके धनुष के महान् शब्द से दिशाएं, उपदिशाएं तथा सम्पूर्ण नभमण्डल सहसा प्रतिध्वनित हो गया ॥ ४ ॥ खच्चर के जुते हुए रथ पर बैठकर आए हुए जम्बुमाली को देखकर वेगवान् महावीर हनुमान् प्रसन्नतापूर्वक गर्जन करने लगे ॥ ५ ॥ तोरण के खम्भे पर बैठे हुए महाबलशाली हनुमान् पर तेजस्वी जम्बुमाली ने अपने तीखे बाणों का प्रहार किया ॥ ६ ॥ अर्ध चन्द्राकार बाणों से उनके मुख में, कर्णी नामक बाणों से मस्तक में, दस बाणों से हनुमान् की दोनों भुजाओं पर जम्बुमाली ने प्रहार किया ॥ ७ ॥ जम्बुमाली के बाणों से आहत उनका वह लाल वर्ण वाला मुख इस प्रकार शोभित होने लगा, जिस प्रकार आदित्य की किरणों से विकसित शरत्कालीन कमल शोभा को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ रक्तरञ्जित उनका लाल वर्ण वाला मुख इस प्रकार सुशोभित हुआ जिस प्रकार आकाश में चन्दन बिन्दुओं से अभिषिक्त पद्म शोभा को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ राक्षसों के बाण से आहत महाबली हनुमान् उस राक्षस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और समीप में ही पड़ी हुई एक विशाल शिला (पत्थर की चट्टान) को देखा ॥ १० ॥ महाबली हनुमान् ने अत्यन्त वेगपूर्वक उस महती शिला को उखाड़ कर उस जम्बुमाली पर प्रहार किया। क्रोध में आए हुए जम्बुमाली ने अपने दस बाणों से उस शिला को खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ११ ॥ पराक्रमी हनुमान् अपने इस परिश्रम को व्यर्थ देखकर अत्यन्त क्रोध में आकर एक विशाल वृक्ष को उखाड़ कर घुमाने लगे ॥ १२ ॥ महाबली हनुमान् को साल वृक्ष घुमाते हुए देखकर महाबली जम्बुमाली ने उन पर अनेक बाणों से प्रहार किया ॥ १३ ॥ उसने चार बाणों से वृक्ष को ध्वस्त कर दिया। पाँच बाणों से उसकी भुजा पर प्रहार किया। एक बाण से हृदय पर और दस बाणों से उनके स्तनों के बीच में प्रहार किया ॥ १४ ॥ बाणों से जिसका शरीर आच्छादित हो गया है ऐसे क्रोध में आए हुए हनुमान् ने उसी पूर्वाभ्यस्त परिघ को लेकर अत्यन्त वेग से घुमाया ॥ १५ ॥ अतिवेगवान् हनुमान् ने अत्यन्त वेग से उस परिघ को घुमाकर जम्बुमाली के वक्षःस्थल

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः। परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥१६॥
तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी। न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः ॥१७॥
स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महाबलः। पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥१८॥
जम्बुमालिं च निहतं किंकरांश्च महाबलान्। चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥१९॥
स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान् समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे जम्बुमालिवधो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

अमात्यपुत्रवधः

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणां सुताः। निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥
महाबलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः। कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥ २ ॥
हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः। तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥

पर मारा ॥ १६ ॥ उस प्रहार के पश्चात् उसका सिर, बाहु और घुटने नहीं दिखाई पड़े। धनुष, बाण, रथ तथा रथ में जुते हुए खच्चर भी सब समाप्त हो गये ॥ १७ ॥ महाबली हनुमान् के द्वारा महारथी जम्बुमाली मर कर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा जैसे कटा हुआ वृक्ष गिर जाता है ॥ १८ ॥ जम्बुमाली तथा अपने महाबली किङ्करों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया तथा उसके नेत्र रक्तवर्ण हो गए ॥ १९ ॥ प्रहस्त के पुत्र महाबली जम्बुमाली के मारे जाने पर क्रोध से लाल नेत्रवाले राक्षसराज रावण ने अत्यन्त पराक्रमी अपने मन्त्रि-पुत्रों को शीघ्र संग्राम में जाने की आज्ञा दी ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'जम्बुमाली का वध'
विषयक चवालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

मन्त्रि-पुत्रों का वध

सूर्य के समान तेजस्वी वे मन्त्रियों के सातों पुत्र राक्षसराज रावण की आज्ञा पाकर घर से निकल पड़े ॥ १ ॥ बड़ी विशाल सेना से घिरे हुए धनुर्धारी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परस्पर जय की अभिलाषा करने वाले वे महाबली ॥ २ ॥ स्वर्णभूषणों से सुसज्जित, ध्वजा पताकाओं से युक्त मेघ के समान गर्जन करने वाले, घोड़ों से युक्त विशाल रथों के द्वारा ॥ ३ ॥ उत्तम स्वर्ण चिह्नित धनुष से टङ्कार करते हुए प्रसन्नचित्त

तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः । विस्फारयन्तः संहृष्टास्तटित्वन्त इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

जनन्यस्तु ततस्तेषां विदित्वा किंकरान् हतान् । बभूवुः शोकसंभ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥ ५ ॥

ते परस्परसङ्घर्षात्तप्तकाञ्चनभूषणाः । अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः । वृष्टिमन्त इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः ॥ ७ ॥

अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनुमाञ्शरवृष्टिभिः । अभवत्संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥ ८ ॥

स शरान् मोघयामास तेषामाशुचरः कपिः । रथवेगं च वीराणां विचरन् विमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥

स तैः क्रीडन् धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते । धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतः प्रभुरम्बरे ॥१०॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् । चकार हनुमान् वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥११॥

तलेनाभ्यहनत्कांश्चित्पद्भ्यां कांश्चित्परंतपः । मुष्टिनाभ्यहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत् ॥१२॥

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरान् कपिः । केचित्तस्य निनादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥१३॥

ततस्तेष्ववसन्नेषु भूमौ निपतितेषु च । तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥१४॥

विनेदुर्विस्वरं नागा विपेतुर्भुवि वाजिनः । भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाभवद्रथैः ॥१५॥

स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि । विविधैश्च स्वरैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा ॥१६॥

अमित पराक्रमी वे राक्षसगण विद्युत् परिपूर्ण मेघ के समान अपने गृहों से निकल पड़े ॥ ४ ॥ सैनिक भृत्यों की मृत्यु का समाचार सुनकर उनकी माताएँ, बन्धु-बान्धव तथा मित्रवर्ग सभी अत्यन्त शोक से व्याकुल हो गए ॥ ५ ॥ परस्पर में स्पर्धा करने वाले समुज्ज्वल सुवर्ण आभूषणों से सुशोभित वे राक्षसगण तोरण के समीप बैठे हुए हनुमान् के समीप पहुँचे ॥ ६ ॥ बाणों की वर्षा करते हुए तथा रथगर्जित शब्दों के द्वारा वे राक्षसगण वर्षाकाल के मेघ के समान विचरण करते हुए प्रतीत हुए ॥ ७ ॥ राक्षसों की बाण वर्षा से हनुमान् चौतरफा से इस प्रकार घिर गए जिस प्रकार वर्षा से घिरा हुआ कोई पर्वत प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ खुले आकाश में शीघ्रतापूर्वक विचरण करते हुए महाबली हनुमान् अपनी शीघ्र तथा तिर्यगूर्ध्व गति से राक्षसों की वञ्चना करते हुए उनके शीघ्रताकारी बाणों से अपने आपकी रक्षा कर लेते थे ॥ ९ ॥ वह वीर हनुमान् खुले आकाश में धनुर्धारी राक्षसों के साथ क्रीडा करते हुए इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे, जिस प्रकार इन्द्रधनुष युक्त मेघों से वायु क्रीडा करता है ॥ १० ॥ पराक्रमी हनुमान् भयङ्कर गर्जन करते हुए उन सारी राक्षसी सेना को भयभीत करते हुए अपनी शक्ति का आतङ्क जमा दिया ॥ ११ ॥ शत्रुतापी हनुमान् ने किन्हीं को तमाचे से मारा, किसी को पैर से मारा, किसी को घूँसा मारा, किसी को अपने तीक्ष्ण नखों से फाड़ दिया ॥ १२ ॥ किसी को छाती से रगड़ दिया, किसी को जांघों के मध्य में मसल डाला, और अनेक तो इनके भयङ्कर गर्जन से ही धराशायी हो गए ॥ १३ ॥ उन मन्त्रिपुत्रों के मरकर धराशायी हो जाने पर भयभीत उनकी शेष सम्पूर्ण सेना दशों दिशाओं में भाग गई ॥ १४ ॥ हाथी चिंघाड़ने लगे, घोड़े पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े । जिन रथों के बैठने का स्थान, ध्वज, पताका, छत्र आदि ध्वस्त हो गए हैं ऐसे रथों से संग्रामभूमि आच्छादित हो गई ॥ १५ ॥ मार्ग में संग्रामजनित रक्त की धार बहते हुए देखकर राक्षसों के भयङ्कर आर्तनाद से लङ्का निनादित हो गई ॥ १६ ॥ अत्यन्त पराक्रमी, महाबली वनवासी

स तान् प्रवृद्धान् विनिहत्य राक्षसान् महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैस्तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अमात्यपुत्रवधो नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

सेनापतिपञ्चकवधः

हतान् मन्त्रिसुतान् बुद्ध्वा वानरेण महात्मना। रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥
स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम्। प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २ ॥
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्। हनुमद्ग्रहणे व्यग्रान् वायुवेगसमान् युधि ॥ ३ ॥
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः। सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ॥ ४ ॥
यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात्तमासाद्य वनालयम्। कर्म चापि समाधेयं देशकालाविरोधितम् ॥ ५ ॥
न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन्। सर्वथा तन्महद्भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥
वानरोऽयमिति ज्ञात्वा न हि शुध्यति मे मनः। नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा ॥ ७ ॥

हनुमान् मदोन्मत्त उन राक्षसों को मारकर अन्य राक्षसों से संग्राम करने की इच्छा से पुनः उसी तोरण के समीप आए ॥ १७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'मन्त्रिपुत्रों का वध' विषयक पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवां सर्ग

पांच सेनापतियों का वध

महात्मा वनवासी हनुमान् के द्वारा मन्त्रिपुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण ने अपने उद्वेग को छिपाते हुए धीरतापूर्वक कर्तव्य का निश्चय किया ॥ १ ॥ उस रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण इन पाँच सेनानायकों को ॥ २ ॥ जो संग्राम में वायुवेग के समान काम करने वाले, नीतिनिष्णात, उद्भट बलवान् थे, उनको हनुमान् को पकड़ने की आज्ञा दी ॥ ३ ॥ घोड़े, हाथी, रथ तथा पदाति चतुरङ्गिणी विशाल सेना को साथ में लेकर हे महाबलवान् प्रधान सेनापतियो! तुम सभी जाओ और उस वनवासी को पकड़ लाओ ॥ ४ ॥ देश काल के विरोधी सभी व्यवहारों को छोड़कर अत्यन्त सावधानी के साथ उस वनवासी के पास जाओ ॥ ५ ॥ अब तक के उसके क्रिया कलापों को देखकर मैं उसको सामान्य वनवासी नहीं समझता। किन्तु मैं उसे बड़े से बड़े संग्राम में विजयी तथा महाबलशाली समझता हूँ ॥ ६ ॥ यह सामान्य वनवासी है यह बात मेरे मन में नहीं बैठ रही है। जिसके कार्य इस प्रकार के हों उसको मैं साधारण वनवासी नहीं समझता ॥ ७ ॥ अथवा इन्द्र ने अपनी तपश्चर्या के बल से हम लोगों की हानि

भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात्। सनागयक्षगन्धर्वा देवासुरमहर्षयः ॥ ८ ॥
युष्माभिः सहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः। तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किंचिदेव नः ॥ ९ ॥
तदेव नात्र संदेहः प्रसह्य परिगृह्यताम्। यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥१०॥
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति। नावमान्यश्च युष्माभिर्हरिः क्रूरपराक्रमः ॥११॥
दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः। वाली च सहसुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ॥१२॥
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः। नैवं तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥१३॥
न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम्। महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ॥१४॥
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः। कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ॥१५॥
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे। तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥१६॥
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला। ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ॥१७॥
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः। रथैर्मत्तैश्च मातङ्गैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥१८॥
शस्त्रैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपचिता बलैः। ततस्तं ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ॥१९॥
रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम्। तोरणस्थं महोत्साहं महावेगं महाबलम् ॥२०॥
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम्। तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः ॥२१॥

करने के लिये भेजा हो। नाग, यक्ष, गन्धर्व, देव, असुर तथा महर्षियों को ॥ ८ ॥ मेरे द्वारा आदेश पाने पर तुम लोगों ने समय समय पर जीता है। उन सभी ने आज अवसर पाकर प्रतिक्रिया की भावना से इसको भेजा हो ॥ ९ ॥ यही बात हो सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। दक्ष महाबली प्रधान सेनापतियो, तुम लोग जाओ, हठात् इसको पकड़ो ॥ १० ॥ मतवाले हाथी, घोड़े रथ के साथ तुम लोग वहाँ जाकर इन कर्मों के लिये इसको करारी शिक्षा दो। यह सामान्य वनवासी है ऐसा समझकर उसकी उपेक्षा मत करो ॥ ११ ॥ विपुल पराक्रम वाले बाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान् इन वनवासी वीरों को मैंने पहले देखा है ॥ १२ ॥ तथा नील, द्विविद आदि प्रधान सेनापतियों को भी मैंने देखा है। किन्तु उनके इतने भयङ्कर कार्य नहीं हैं तथा उनका तेज और पराक्रम भी इतना नहीं है ॥ १३ ॥ ऐसी बुद्धि, इस प्रकार का बल, उत्साह स्वरूप-परिवर्तन की इस प्रकार की शक्ति भी उन लोगों में नहीं है। वनवासी के रूप में यह कोई महान् व्यक्ति प्रतीत हो रहा है ॥ १४ ॥ बड़े प्रयत्नों के द्वारा तुम लोग इसे दण्डित करो। इन्द्र सहित देवता, असुर, मनुष्य इन तीनों श्रेणियों के वीर ॥ १५ ॥ संग्राम में आप लोगों के समक्ष खड़े होने की क्षमता नहीं रखते, यह ठीक है। तो भी नीति निष्णात विजयाकाङ्क्षी पुरुषों को संग्राम में ॥ १६ ॥ प्रयत्न-पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि संग्राम में सफलता अनैकान्तिक (अनिश्चित) होती है। महान् ओज वाले वे सभी सेनापति अपने स्वामी की आज्ञा को शिरोधार्य करके ॥ १७ ॥ अत्यन्त वेग वाले घोड़े, मतवाले हाथी तथा रथों के द्वारा अग्नि के समान तेज वाले, वेगवान् वे सभी राक्षस सेनापति चल पड़े ॥ १८ ॥ विविध प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों तथा सेना के साथ उन वीर सेनापतियों ने अत्यन्त क्रुद्ध उस वनवासी वीर हनुमान् को देखा ॥ १९ ॥ उदीयमान सूर्य के समान किरणों से परिपूर्ण, अतिवेगवान् धैर्यशाली, महाबली ॥ २० ॥ महामति, उत्साहसंपन्न, विशाल भुजा वाले, विशालकाय उस हनुमान् को तोरण पर बैठे हुए उन सेनापतियों ने देखा ॥ २१ ॥ उनको देखते ही सब दिशाओं से उनको घेरकर भयङ्कर अस्त्र शस्त्रों से युक्त वे सेनापति हनुमान् पर टूट पड़े। काले तथा पीतवर्ण मुख वाले, कमलपत्र के

तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः । तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः शिताः पीतमुखाः शराः ॥२२॥
शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः ॥
स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः । उत्पपात नदन् व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥२३॥
ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्यकार्मुकः । किरञ्शरशतैस्तीक्ष्णैरभिपेदे महाबलः ॥२४॥
स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् । वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ॥२५॥
अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः । चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वेगवान् ॥२६॥
स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः । निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ॥२७॥
ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् । विहाय न्यपतद्भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ॥२८॥
तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि । संजातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिंदमौ ॥२९॥
स ताभ्यां सहसोत्पत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे । मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ॥३०॥
तयोर्वेगवतोर्वेगं विनिहत्य महाबलः । निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ॥३१॥
स सालवृक्षमासाद्य तमुत्पाट्य च वानरः । तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ॥३२॥
ततस्तांस्त्रीन् हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना । अभिगम्य महावेगः प्रसह्य प्रघसो हरिम् ॥३३॥
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् । एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ ॥३४॥
पट्टिसेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्ययोधयत् । भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिसत्तमम् ॥३५॥

समान आकार वाले, तेज पाँच बाणों से दुर्धर ने हनुमान् के सिर पर प्रहार किया ॥ २२ ॥ उन पाँचों बाणों से आहत होने पर बली हनुमान् तोरण से हटकर खुले आकाश में चले गए और अपने भयङ्कर गर्जन से सम्पूर्ण दिशाओं को गुंजारित कर दिया ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् रथ पर बैठा हुए, धनुर्धारी, वीर दुर्धर ने अनेक तेज बाणों की वर्षा करते हुए हनुमान् को अपना लक्ष्य बनाया ॥ २४ ॥ खुले आकाश में बाण वर्षा करने वाले उस दुर्धर सेनापति को हनुमान् ने इस प्रकार रोका, जैसे वृष्टि के अन्त में जलयुक्त मेघ को वायु रोकता है ॥ २५ ॥ सेनापति दुर्धर के द्वारा पीड़ित होने पर पराक्रमी पवनसुत हनुमान् ने अपने आकार को बढ़ाते हुए पुनः भयङ्कर गर्जन किया ॥ २६ ॥ पश्चात् पर्वत शिखर पर वज्रपतन के समान महावेग वाले वनवासी वीर हनुमान् दुर्धर के रथ पर सहसा कूद पड़े ॥ २७ ॥ हनुमान् के कूदते ही उसके रथ में जुते आठों घोड़े मारे गए। रथ का जुआ तथा धुरी ध्वस्त हो गई। वह दुर्धर रथ तथा प्राणों से वियुक्त होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ दुर्धर को मरकर पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर शत्रुविजयी अजेय विरूपाक्ष, यूपाक्ष अत्यन्त क्रोध से हनुमान् के समीप पहुँचे ॥ २९ ॥ उन दोनों ने सहसा कूदकर खुले आकाश में स्थित विशाल भुजा वाले, वनवासी वीर हनुमान् के वक्षःस्थल पर मुद्गर से प्रहार किया ॥ ३० ॥ महाबली हनुमान् उन राक्षसों के वेगयुक्त प्रहार को रोक कर वेगवान् पक्षी की तरह मुक्तभूमि (खुले मैदान) में आए ॥ ३१ ॥ पवनपुत्र वनवासी हनुमान् ने साल वृक्ष के पास जाकर तथा उसको उखाड़कर उसके द्वारा उन दोनों विरूपाक्ष तथा यूपाक्ष का प्राणान्त कर दिया ॥ ३२ ॥ वेगवान् वनवासी हनुमान् के द्वारा तीनों सेनापति मार दिये गए, इसको जानकर वेगवान् महाबली प्रघस उसके समीप जाकर ॥ ३३ ॥ तथा संक्रुद्ध भासकर्ण शूल को लेकर यशस्वी वनवासी वीर हनुमान् के एक ओर खड़े हो गए ॥ ३४ ॥ तीक्ष्ण पट्टिश के द्वारा प्रघस तथा शूल के द्वारा राक्षस भासकर्ण इन दोनों ने वनवासी वीर हनुमान् पर प्रहार किया ॥ ३५ ॥ इन दोनों के द्वारा आहत होने पर हनुमान्

स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः । अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः ॥३६॥
समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् । जघान हनुमान् वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ॥३७॥
ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु । बलं तदवशेषं च नाशयामास वानरः ॥३८॥
अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधैर्योधान् रथै रथान् । स कपिर्नाशयमास सहस्राक्ष इवासुरान् ॥३९॥
हतैर्नागैस्तुरङ्गैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः । हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥४०॥

ततः कपिस्तान् ध्वजिनीपतीन् रणे निहत्य वीरान् सबलान् सवाहनान् ।
तदेव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सेनापतिपञ्चकवधो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

अक्षकुमारवधः

सेनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान् हनूमता सानुचरान् सवाहनान् ।
निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताग्रतः ॥ १ ॥

के शरीर से निकली हुई रुधिरधारा से शरीर के लोम रक्तवर्ण हो गए। उस समय उदीयमान बालरवि के समान हनुमान् अत्यन्त क्रुद्ध हो गए ॥ ३६ ॥ सर्प, पशु तथा वृक्षों से भरे हुए पर्वत की एक चोटी को तोड़कर महाबली हनुमान् नें उन दोनों राक्षसों को मारा ॥ ३७ ॥ उन पाँच सेनापतियों के मारने के पश्चात् वनवासी हनुमान् अवशिष्ट सेना का नाश करने लगे ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार इन्द्र ने असुरों का नाश किया था उसी प्रकार वनवासी वीर हनुमान् ने घोड़ों से घोड़ों को, हाथियों से हाथियों को रथों से रथों को तथा सैनिकों से सैनिकों को नष्ट कर डाला ॥ ३९ ॥ मारे गए घोड़े हाथी तथा टूटे हुए रथ और मरे हुए राक्षसों से वह भूमि पट गई और गमनागमन का मार्ग अवरुद्ध हो गया ॥ ४० ॥ पश्चात् उन वीर सेनापतियों तथा सैनिकों के साथ घोड़े, हाथी आदि वाहनों का युद्ध में नाश करके पुनः उस तोरण पर जाकर अवस्थित हो गए, और प्रलय के समय सर्वनाशक काल के समान अवकाश का समय बिताने लगे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'पाँच सेनापतियों का वध' विषयक छियालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

अक्षकुमार का वध

हनुमान् के द्वारा, अपने अनुचर तथा वाहन आदि साधनों के साथ पाँच सेनापतियों की मृत्यु का समाचार सुनकर लंकेश रावण ने समर में जाने के लिये उत्सुक अपने पुत्र कुमार अक्ष की तरफ दृष्टिपात किया ॥ १ ॥ अक्ष को देखते हुए उसे संग्राम में जाने के लिये रावण ने आज्ञा दी। स्वर्णचित्रित धनुष

स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः प्रतापवान् काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः ॥ २ ॥

ततो महान् बालदिवाकरप्रभं प्रतप्तजाम्बूनदजालसंततम् ।
रथं समास्थाय ययौ स वीर्यवान् महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥ ३ ॥

ततस्तपः संग्रहसंचयार्जितं प्रतप्तजाम्बूनदजालशोभितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजं मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥

सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं रविप्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं यथाक्रमावेशितचारुतोमरम् ॥ ५ ॥

विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥ ६ ॥

स पूरयन् खं च महीं च साचलां तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं समर्थमासीनमुपागमत्कपिम् ॥ ७ ॥

स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसंभ्रमः समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥ ८ ॥

स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः पराक्रमं चारिषु रावणात्मजः ।
विचारयन् स्वं च बलं महाबलो युगक्षये सूर्य इवाभिवर्धते ॥ ९ ॥

को हाथ में लेकर जो अग्नि ब्राह्मण के द्वारा हवि से प्रेरित की गई हो ऐसी अग्नि के समान देदीप्यमान प्रतापी वह राजकुमार अक्ष, राजसभा में आज्ञा पाने पर संग्रामभूमि की तरफ चल पड़ा ॥ २ ॥ उज्ज्वल स्वर्ण जाल से चित्रित रथ पर बैठ कर बलवान् वह राक्षस श्रेष्ठ अक्षबालरवि के समान उदीयमान हनुमान् की ओर चल पड़ा ॥ ३ ॥ तपश्चर्या के द्वारा प्राप्त उत्तम स्वर्ण जाल से निर्मित हरी पताका से परिपूर्ण रत्नजटित मन के समान वेगवाले जिसमें आठ घोड़े जुटे हुए हैं ॥ ४ ॥ देव और असुरों से भी अजेय, अनाक्रमणीय गगन में भी गमन करने वाला, विद्युत् के समान देदीप्यमान, बाण तथा कोश (म्यान) में निबद्ध आठ तलवारों से सुशोभित, उपयुक्त स्थान पर शक्ति, तोमर शस्त्र जहाँ पर रखे हुए हैं ॥ ५ ॥ तथा जिसमें युद्ध की अन्य सामग्री भी रखी है, चन्द्र और सूर्य के समान स्वर्णशृङ्खला से युक्त, देदीप्यमान सूर्य के समान प्रकाशित रथ पर बैठकर देवतुल्य पराक्रमी वह अक्षकुमार अपने स्थान से निकल पड़ा ॥ ६ ॥ हाथी, घोड़े तथा रथ के शब्दों से सम्पूर्ण आकाश पर्वत सहित पृथिवी को प्रतिध्वनित करता हुआ वह अक्षकुमार अपने सम्पूर्ण सैन्यबल के साथ, तोरण पर बैठे हुए शक्तिमान् हनुमान् के समीप आया ॥ ७ ॥ प्रलय के समय युगान्तकाल की अग्नि के समान तथा कुछ उद्विग्न उस तोरण पर बैठे हुए वनवासी हनुमान् को सिंह के समान भयंकर नेत्रों वाले मदगर्वित उस अक्ष ने देखा ॥ ८ ॥ महात्मा वनवासी हनुमान् के पराक्रम वेग आदि का विचार करता हुआ तथा अपनी शक्ति, सेना पर भी ध्यान देता हुआ वह महाबली अक्षकुमार प्रलयकाल के सूर्य के समान आगे बढ़ने लगा ॥ ९ ॥ हनुमान् को देखते ही जिसके क्रोध का वेग बढ गया है संग्राम में दुर्निवार, पराक्रमयुक्त अक्ष ने उस हनुमान् को रोकने के लिये तेज तीन बाणों से

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं स्थिरं स्थितः संयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे प्रचोदयामास शरैस्त्रिभिः शितैः ॥१०॥

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितं जितश्रमं शत्रुपराजयोर्जितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसः स बाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥११॥

स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम् ।
तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः ॥१२॥

ररास भूमिर्न तताप भानुमान् ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीक्ष्य संयुगं ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥ १३ ॥

ततः स वीरः सुमुखान् पतत्रिणः सुवर्णपुङ्खान् सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्वविच्छरानथ त्रीन् कपिमूर्ध्न्यपातयत् ॥ १४ ॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तलोचनः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान् व्यरोचतादित्य इवांशुमालिकः ॥ १५ ॥

ततः स पिङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्तायुधचित्रकार्मुकं जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥ १६ ॥

स मन्दराग्रस्थ इवांशुमालिको विवृद्धकोपो बलवीर्यसंयुतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥ १७ ॥

प्रहार किया ॥ १० ॥ शत्रु पर विजय करने में समर्थ जो श्रम, क्लम आदि से रहित है युद्धगर्वित हनुमान् को धनुष बाण हाथ में लिये हुए अक्षकुमार ने देखा ॥ ११ ॥ स्वर्णमय ग्रीवाभूषण, भुजदण्ड पर अंगद धारण करने वाला, शीघ्र पराक्रमी अक्षकुमार हनुमान् के पास पहुँचा। देव तथा असुरों को भी विस्मित करने वाला उन दोनों का यह अपूर्व समागम हुआ ॥ १२ ॥ राजकुमार अक्ष और पराक्रमी हनुमान् के परस्पर युद्ध को देखकर सम्पूर्ण भूमि में हड़कम्प मच गया। भानु को ज्योति मन्द पड़ गई। वायु का वेग शिथिल हो गया। पर्वत कम्पित हो गए। नभ गर्जन करने लगा। समुद्र में ज्वार भाटा उत्पन्न हो गया ॥ १३ ॥ लक्ष्यवेध में निपुण, बाण के रक्षण तथा सञ्चालन में कुशल राजकुमार अक्ष ने सुवर्णपङ्ख वाले सीधे तीक्ष्ण सर्पविष के समान अपने तीन बाणों से हनुमान् के मस्तक पर प्रहार किया ॥ १४ ॥ मस्तक पर उन तीन बाणों के आघात से हनुमान् का सम्पूर्ण शरीर रक्तरञ्जित हो गया, तथा उनके नेत्र विशाल हो गए। उस समय हनुमान् बाणों की किरणों से युक्त रश्मि वाले नवोदित सूर्य के समान प्रतीत होने लगे ॥ १५ ॥ पश्चात् वनवासियों के सम्राट् राजा सुग्रीव के श्रेष्ठ सचिव हनुमान् विशाल धनुष तथा उत्तम आयुध के धारण करने वाले राजकुमार अक्ष को देखकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सङ्घर्ष के लिये सन्नद्ध हो गए ॥ १६ ॥ क्रोध बढ़ जाने के कारण बल तथा पराक्रम से परिपूर्ण हनुमान् मन्दराचल स्थित सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे। उस समय वे सेना तथा वाहन से युक्त राजकुमार अक्ष को जाज्वल्यमान नेत्राग्नि की किरणों से जलाने लगे ॥ १७ ॥ राक्षसरूपी मेघ, जिसका कार्मुक ही इन्द्रधनुष था, संग्राम में जिसकी बाणवृष्टि वर्षा के समान थी, इस प्रकार मेघरूपी अक्ष हनुमान् रूपी अंचल पर इस प्रकार बाणवर्षा करने लगा, जिस

ततः स बाणासनचित्रकार्मुकः शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः।
शरान् मुमोचाशु हरीश्वराचले वलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥ १८ ॥
ततः कपिस्तं रणचण्डविक्रमं विवृद्धतेजोबलवीर्यसंचयम्।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे ननाद हर्षाद्घनतुल्यनिःस्वनः ॥ १९ ॥
स बालभावाद्युधि वीर्यदर्पितः प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः।
समाससादाप्रतिमं कपिं रणे गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥ २० ॥
स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैश्चकार नादं घननादनिःस्वनः।
समुत्पपाताशु नभः स मारुतिर्भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥ २१ ॥
समुत्पतन्तं समभिद्रवद्बली स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान्।
रथी रथिश्रेष्ठतमः किरञ्शरैः पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥ २२ ॥
स ताञ्शरांस्तस्य विमोक्षयन् कपिश्चचार वीरः पथि वायुसेविते।
शरान्तरे मारुतवद्विनिष्पतन् मनोजवः संयति चण्डविक्रमः ॥ २३ ॥
तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा जगाम चिन्तां च स मारुतात्मजः ॥ २४ ॥
ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः कुमारवीर्येण महात्मना नदन्।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्वविद्विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥ २५ ॥
अबालवद्बालदिवाकरप्रभः करोत्ययं कर्म महन्महाबलः।
न चास्य सर्वाहवकर्मशोभिनः प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥ २६ ॥

प्रकार मेघ पर्वतमाला पर बरसता है ॥ १८ ॥ संग्राम में प्रचण्ड पराक्रमी, अत्यन्त दर्प से जिसका तेज, बल, पराक्रम, बाणसञ्चालन बढ़ा हुआ है, ऐसे राजकुमार अक्ष को देखकर वनवासी हनुमान् प्रसन्नतापूर्वक मेघ के समान गर्जन करने लगे ॥ १९ ॥ बालकपन के कारण जिसका क्रोध, पराक्रम तथा अभिमान बढ़ा हुआ है, क्रोध के कारण जिसके नेत्र लाल हो गए हैं, इस प्रकार का राजकुमार अक्ष संग्राम में अप्रतिम (बेजोड़) हनुमान् के समीप इस प्रकार पहुँचा जैसे तृणाच्छादित कूप के समीप हाथी जाता है ॥ २० ॥ अक्षकुमार के चलाए हुए बाणों से मेघ के समान गर्जन करने वाले तथा हाथ पैर के सञ्चालन से भयङ्कर दीखने वाले हनुमान् तोरण से शीघ्र ही उछल पड़े ॥ २१ ॥ रथियों में श्रेष्ठ, महारथी, राक्षसप्रवर, प्रतापी, महाबली, राजकुमार अक्ष पर्वत पर उपलवर्षा करने वाले मेघ के समान अपने बाणों की वर्षा करता हुआ उस कूदते हुए हनुमान् की ओर चल पड़ा ॥ २२ ॥ भीषण पराक्रमी, वायु के समान वेग वाले वीर हनुमान् बाण वर्षा वाले संग्राम में अक्षकुमार के बाणों को व्यर्थ करते हुए खुले आकाश में विचरने लगे ॥ २३ ॥ नाना प्रकार के बाणों से आकाश को आच्छादित करते हुए युद्ध में उत्साहित, धनुर्धारी अक्षकुमार को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हुए, वायुपुत्र हनुमान् चिन्ता करने लगे ॥ २४ ॥ प्रशंसनीय महात्मा राजकुमार अक्ष के द्वारा छाती में बाणों के द्वारा आहत होने पर विशाल भुजा वाले तथा कर्तव्य के तत्त्वज्ञ वनवासी हनुमान् संग्राम में अक्ष के पराक्रम पर विचार करने लगे ॥२५॥ बालरवि के समान, संग्राम में उद्भट वीर के समान यह कार्य कर रहा है तथा रणविशारद इस अक्ष को मारने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है ॥ २६ ॥ पराक्रमी, युद्ध-कष्ट-सहिष्णु यह अक्ष महान् आशय वाला प्रतीत हो रहा है। संग्राम

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥ २७ ॥

पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः समीक्षते मां प्रमुखागतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्सुरासुराणामपि शीघ्रगामिनः ॥ २८ ॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं त्वेव ममास्य रोचते न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥ २९ ॥

इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन् स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा मतिं च चक्रेऽस्य वधे महाकपिः ॥ ३० ॥

स तस्य तानष्टहयान् महाजवान् समाहितान् भारसहान् विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ॥ ३१ ॥

ततस्तलेनाभिहतो महारथः स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
प्रभग्ननीडः परिमुक्तकूबरः पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥ ३२ ॥

स तं परित्यज्य महारथो रथं सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
ततोऽभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान् विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥ ३३ ॥

ततः कपिस्तं विचरन्तमम्बरे पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुततुल्यविक्रमः क्रमेण जग्राह स पादयोर्दृढम् ॥ ३४ ॥

में सांग्रामिक श्रेष्ठ गुणों के कारण नाग, यक्ष तथा सिद्ध मुनियों के द्वारा भी निस्सन्देह आदर पाने के योग्य है ॥ २७ ॥ अति पराक्रमी होने के कारण जिसका साहस बढ़ा हुआ है, ऐसा अक्ष संग्राम में सेनापति के समान मेरे समक्ष खड़े होते हुए मुझे देख रहा है। शीघ्रकारी इसका पराक्रम देव और असुरों के मन को भी कम्पायमान करने वाला है ॥ २८ ॥ अब इसकी उपेक्षा करने से मेरी पराजय की सम्भावना है। क्योंकि मेरी उपेक्षा से संग्राम में इसका पराक्रम बढ़ रहा है। अब इसका वध करना ही श्रेयस्कर है। क्योंकि बढ़ती हुई अग्नि की उपेक्षा करना उचित नहीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार शत्रु के पराक्रम पर विचार करते हुए 'अब मुझे क्या काम करना चाहिये' यह निश्चय करके पराक्रमी महावीर हनुमान् ने उस समय इसके मारने का निश्चय कर उद्योग आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ संग्राम में अक्ष के उन आठ घोड़ों को जो भारवाहन में समर्थ, दाईं बाईं गति में घूमकर रथ तथा महारथी की रक्षा करनेवाले थे, पवनपुत्र वीर हनुमान् ने खुले आकाश में अपने तलप्रहार से मार डाला ॥ ३१ ॥ सुग्रीव के मन्त्री द्वारा जो जीत लिया गया है तथा हनुमान् के तमाचे के प्रहार से जो आहत हो गया है, जिसके सम्पूर्ण रथ के अवयव ध्वस्त हो चुके हैं, घोड़े मारे जा चुके हैं, ऐसा महारथी अक्षकुमार भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥ टूटे हुए उस रथ को छोड़कर तथा हाथ में धनुष, खड्ग लेकर अपनी उग्र तपश्चर्या के द्वारा, शरीर को छोड़कर देवलोक में जाने वाले ऋषियों की तरह खुले आकाश में कूदते हुए ॥ ३३ ॥ गरुड़, वायु, सिद्धों से सेवित आकाश मार्ग में विचरण करने वाले उस अक्षकुमार के दोनों पैरों को वायु के समान वेग वाले वनवासी वीर हनुमान् ने दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ जैसे पक्षिसम्राट् गरुड़ विशाल सर्प को पकड़कर घुमाता है, उसी प्रकार अपने

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः।
मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥ ३५ ॥
स भग्नबाहूरुकटीशिरोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः।
प्रभिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ ३६ ॥
महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं चकार रक्षोऽधिपतेर्महद्भयम्।
महर्षिभिश्चक्रचरैर्महाव्रतैः समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ॥ ३७ ॥
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैर्हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः।
निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ॥
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अक्षकुमारवधो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजिदभियोगः

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा हनूमताक्षे निहते कुमारे।
मनः समाधाय तदेन्द्रकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं स रोषात् ॥ १ ॥

पिता वायु के तुल्य पराक्रम वाले हनुमान् ने अक्ष को अनेकों बार घुमाकर भूमि पर पटक दिया ॥ ३५ ॥ जिसकी भुजाएँ, छाती, कमर, गर्दन आदि अवयव टूट चुके हैं, आँखों की हड्डियाँ टूट चुकी हैं, जिसके जोड़ों के सारे बन्धन शिथिल हो चुके हैं, जिसके सम्पूर्ण शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है, ऐसे राजकुमार अक्षकुमार को वायुपुत्र हनुमान् ने मार डाला ॥ ३६ ॥ वनवासी वीर हनुमान् ने निर्जीव अक्षकुमार को पृथ्वी पर पटक कर राक्षसराज रावण के हृदय में आतङ्क उत्पन्न कर दिया। अक्ष के मारे जाने पर महर्षि लोग, नक्षत्र में विचरण करने वाले सिद्ध लोग, यक्ष नाग जाति के लोग तथा देवताओं के समेत इन्द्र ने विस्मय पूर्वक चकित होकर वीर हनुमान् को देखा ॥ ३७ ॥ इन्द्रपुत्र के समान रक्तपूर्ण नेत्र वाले रावणपुत्र अक्षकुमार को संग्राम में मारकर प्रलयकाल के समय काल की तरह महावीर हनुमान् अवकाश के समय उसी तोरण पर चले गए ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'अक्षकुमार का वध' विषयक सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित् को आदेश

वीर हनुमान् के द्वारा अक्षकुमार के मारे जाने पर दुःखित मन को सावधान करके क्रुद्ध हुए राक्षसराज रावण ने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् को संग्राम में जाने की आज्ञा दी ॥ १ ॥ तुम शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ

त्वमस्त्रविच्छस्त्रविदां वरिष्ठः सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा पितामहाराधनसंचितास्त्रः ॥ २ ॥

तवास्त्रबलमासाद्य नासुरा न मरुद्गणाः । न शेकुः समरे स्थातुं सुरेश्वरसमाश्रिताः ॥ ३ ॥
न कश्चित्त्रिषु लोकेषु संयुगे नगतश्रमः । भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ॥ ४ ॥
देशकालविभागज्ञस्त्वमेव मतिसत्तमः ॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणा न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित्त्रिषु संग्रहेषु वै न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ते ॥ ५ ॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्दे मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥

निहिताः किंकराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः । अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रयायिनः ॥ ७ ॥
बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च । सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ॥ ८ ॥
न हि तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ॥

इदं हि दृष्ट्वा मतिमन्महद्बलं कपेः प्रभावं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि समीक्ष्य सारं कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥ ९ ॥
बलावमर्दस्त्वयि संनिकृष्टे यथागते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च समारभस्वास्त्रविदां वरिष्ठ ॥१०॥

तथा स्वयं अस्त्रविशारद हो, देव तथा असुरमण्डल को भी आतङ्कित करने वाले हो। इन्द्र के सहित देवताओं को भी तुम्हारे बल का पूर्ण परिचय है, तथा ब्रह्मा की आराधना से तुमने ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है ॥ २ ॥ संग्राम में इन्द्र के आश्रित होने पर देवता तथा मरुद्गण तुम्हारे शस्त्रास्त्र बल के सामने नहीं टिक सके ॥ ३ ॥ त्रिलोकी में तुमको छोड़कर ऐसा कोई नहीं है जो संग्राम में क्लान्ति तथा श्रम को न प्राप्त हुआ हो। अपने भुजबल तथा तपोबल से तुम स्वयं रक्षित हो। देश काल के ज्ञाता तथा स्वयं बुद्धि सम्पन्न हो ॥ ४ ॥ संग्राम में कोई भी कर्तव्य तुम्हारे लिये अशक्य नहीं है। शास्त्रोचित कर्तव्य में तुम्हारा कोई विचार अनुचित नहीं होता। त्रिलोकी में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो तुम्हारे अस्त्रबल तथा भुजबल को न जानता हो ॥ ५ ॥ संग्राम में मेरे ही समान तुम्हारा तपोबल, पराक्रम तथा अस्त्रबल है। संग्राम में तुम्हारे जैसे वीर पुत्र को प्राप्त कर मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। मुझे विजय निश्चित प्रतीत हो जाती है ॥ ६ ॥ भेजे गए सम्पूर्ण सैनिक भृत्य मार दिए गए। महाबली राक्षस जम्बुमाली मारा गया। मन्त्रियों के पुत्र प्रधान ५ सेनापति भी मारे गए ॥ ७ ॥ हाथी, घोड़े, रथ से परिपूर्ण विशाल सेना भी समाप्त हो गई। तुम्हारा सहोदर बन्धु राजकुमार अक्ष भी मार दिया गया। हे शत्रुसूदन ! जो भरोसा मुझे तुम्हारे ऊपर है वह इन लोगों पर नहीं ॥ ८ ॥ इस विशाल सेना की समाप्ति को देखकर उस वनवासी वीर के प्रभाव तथा पराक्रम को देखकर अपनी शक्ति तथा बल को सामने रखते हुए अपने सामर्थ्य के अनुकूल ही कार्य करो ॥ ९ ॥ युद्ध में तुम्हारे पहुँचने पर शत्रु की शक्ति जिस प्रकार समाप्त हो अपने आत्मिक बल को देखकर हे अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ! तुम उसी प्रकार का कार्य आरम्भ करो ॥ १० ॥ हे वीर ! दलबद्ध भागनेवाले इन

न वीर सेना गणशोच्यवन्ति न वज्रमादाय विशालसारम् ।
न मारुतस्यास्य गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ॥११॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा ।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्त्रवीर्यं व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व ॥१२॥

न खल्वियं मतिः श्रेष्ठा यत्त्वां संप्रेषयाम्यहम् । इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥१३॥
नानाशस्त्रैश्च संग्रामे वैशारद्यमरिंदम । अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥१४॥

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमहीनसत्त्वो रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥१५॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः । युद्धोद्धतः कृतोत्साहः संग्रामं प्रत्यपद्यत ॥१६॥
श्रीमान् पद्मपलाशाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः । निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वसु ॥१७॥

स पक्षिराजानिलतुल्यवेगैर्व्यालैश्चतुर्भिः सिततीक्ष्णदंष्ट्रैः ।
रथं समायुक्तमसङ्गवेगं समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥१८॥

स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः । रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान् यत्र सोऽभवत् ॥१९॥
स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च । निशम्य हरिवीरोऽसौ संप्रहृष्टतरोऽभवत् ॥२०॥
सुमहच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान् । हनुमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥२१॥

सैनिकों को साथ में मत ले जाना । अप्रमेय शक्ति अतुल पराक्रमी उस वनवासी को मारने के लिए बाणों को लेकर भी मत जाओ । वायु के समान गति वाला तथा अग्नि के समान तेजस्वी वह वीर इन सामान्य अस्त्रों से नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥ मेरे सम्पूर्ण वक्तव्य पर ध्यान देते हुए सावधान चित्त होकर अपने कार्य के द्वारा जिस प्रकार सफलता हो वैसा करो । अपने दिव्य धनुष का स्मरण करते हुए तथा इस वीर के पराक्रम को समझते हुए तुम जाओ और अमोघ (सफल) कार्य का आरम्भ करो ॥ १२ ॥ हे प्रिय पुत्र ! जो तुम्हें संग्राम में भेज रहा हूँ, यह मेरे लिये उचित नहीं । किन्तु शासन करने वाले राजधर्मावलम्बियों का यही प्रशस्त मार्ग है ॥ १३ ॥ हे शत्रुओं के मानमर्दन करने वाले ! संग्राम में विजय कामना रखने वाले लोगों का नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों की जानकारी परमावश्यक है ॥ १४ ॥ पिता के आदेश को सुनकर देव-तुल्य प्रभाव वाले वीर मेघनाद ने संग्राम में जाने के लिये बुद्धिपूर्वक अपने पिता राजा रावण की शीघ्रता से प्रदक्षिणा की ॥ १५ ॥ अपने इष्ट दल के लोगों के द्वारा सम्मानित युद्ध में जाने के लिये उत्साही इन्द्रजित् समर क्षेत्र में जाने के लिए उद्यत हो गया ॥ १६ ॥ महातेजस्वी, कमल के समान विशाल नेत्र वाले राक्षस-राज रावण का पुत्र मेघनाद पर्व (पूर्णमासी) के समय समुद्र के समान अपने स्थान से निकल पड़ा ॥१७॥ गरुड़ के समान वेग वाले, विशाल दन्त वाले मदोन्मत्त, चार नाग (गज) के समान घोड़ों से युक्त रथ पर इन्द्र के समान असह्य वेगवाले उस इन्द्रजित् ने आरोहण किया ॥ १८ ॥ रथ पर बैठकर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र जानने वालों में वरिष्ठ वह इन्द्रजित् हनुमान् के समीप शीघ्र पहुँचा ॥ १९ ॥ उसके रथ की ध्वनि (घरघराहट) तथा धनुष की प्रत्यञ्चा का उद्घोष सुनकर वीर हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥ २० ॥ रण विशारद इन्द्रजित् विशालकाय धनुष तथा तीक्ष्ण बाणों को लेकर हनुमान् को लक्ष्य करके चल पड़ा ॥ २१ ॥

तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुर्मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥२२॥

समागतास्तत्र तु नागयक्षा महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥२३॥

आयान्तं सरथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रजितं कपिः। विननाद महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥२४॥

इन्द्रजित्तु रथं दिव्यमास्थितश्चित्रकार्मुकः। धनुर्विस्फारयामास तटिदूर्जितनिःस्वनम् ॥२५॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ।
कपिश्च रक्षोऽधिपतेश्च पुत्रः सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥२६॥

स तस्य वीरस्य महारथस्य धनुष्मतः संयति संमतस्य।
शरप्रवेगं व्यहनत्प्रवृद्धश्चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥२७॥

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान् सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान्।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता सुसंनतान् वज्रनिपातवेगान् ॥२८॥

स तस्य तु स्यन्दननिःस्वनं च मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥२९॥

शराणामन्तरेष्वाशु व्यवर्तत महाकपिः। हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोहयल्लँक्ष्यसंग्रहम् ॥३०॥

शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत। प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥३१॥

तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ। सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥३२॥

बाणों को हाथ में लेकर प्रसन्नता पूर्वक इन्द्रजित् के निकलने पर सारी दिशाएँ कलुषित (अन्धकारमय) हो गईं तथा भयानक पशु जहाँ तहाँ बोलने लगे ॥ २२ ॥ उस समय नाग, यक्ष, महर्षि, सिद्धों का संघ वहाँ पर आया तथा गगनचारी पक्षिगण प्रसन्नता पूर्वक उच्च स्वर से बोलने लगे ॥ २३ ॥ रथ से युक्त इन्द्रजित् को आते हुए देखकर वेगवान् हनुमान् भयङ्कर गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ २४ ॥ विचित्र धनुर्धारी दिव्य रथ पर बैठे हुए उस इन्द्रजित् ने विद्युत् के समान ध्वनि करने वाले अपने धनुष का टङ्कार किया ॥ २५ ॥ संग्राम में सदा शङ्कारहित रहने वाले, अतितीक्ष्ण वेग वाले, महाबलवान् हनुमान् तथा राक्षसराज रावण का पुत्र इन्द्रजित् परस्पर वैर करने वाले देव असुर के समान एक दूसरे के सामने आये ॥ २६ ॥ हनुमान् ने संग्राम में प्रशंसित धनुर्धारी, महारथी वीर इन्द्रजित् के द्वारा प्रयुक्त बाण वेग को नष्ट कर दिया, तथा स्वच्छन्द खुले आकाश में विचरण करने लगे ॥ २७ ॥ तत्पश्चात् शत्रु सैन्यतापी वीर मेघनाद स्वर्णचित्रित पूँछवाले, वज्र के समान वेग वाले तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करने लगा ॥२८॥ रथ के घोष तथा मृदङ्ग, भेरी, नगाड़े के शब्द को प्रत्यञ्चायुक्त धनुष के खींचे जाने पर, भयङ्कर शब्द को सुनकर हनुमान् पुनः उछल पड़े ॥२९॥ लक्ष्यवेध चतुर इन्द्रजित् के लक्ष्य को अपने गतिचातुर्य से व्यर्थ करते हुए हनुमान् इधर-उधर घूमने लगे ॥३०॥ हनुमान् पुनः मेघनाद की बाणवर्षा के समक्ष आए। पश्चात् पवनपुत्र वीर हनुमान् हाथों को फैलाकर ऊपर उछल पड़े ॥३१॥ वेग सम्पन्न रणकोविद वे दोनों हनुमान् तथा इन्द्रजित् सभी दर्शकों को पसन्द आने वाला युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥ शीघ्रकारिता के कारण राक्षस की बाण वर्षा को हनुमान् न जान सके। हनुमान् के द्वारा मेघनाद की

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥३३॥
ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥३४॥
ततो मतिं राक्षसराजसूनुश्चकार तस्मिन् हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥३५॥
ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः । संदधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥३६॥
अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् । निजग्राह महाबाहुर्मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥३७॥
तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः । अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥३८॥
ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं प्रभोः प्रभावाद्विगतात्मवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥३९॥
ततः स्वायंभुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रमभिमन्त्रितम् । हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥४०॥
न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येव मत्वा विहितोऽस्त्रबन्धो मयात्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥४१॥
स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥४२॥
अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते । पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥४३॥

बाण वर्षा का नाश हो रहा है, इस बात को वह राक्षस भी न जान सका । देव के समान पराक्रमी हनुमान् तथा इन्द्रजित् एक दूसरे के पराक्रम का धीरता से सामना करने लगे ॥३३॥ अमोघ बाणों की वर्षा करने पर भी लक्ष्यवेध (हनुमान् की पराजय) नहीं हो रहा है, ऐसी अवस्था में जितेन्द्रिय महात्मा इन्द्रजित् सावधानता पूर्वक विचार करने लगा ॥ ३४ ॥ राक्षसराज रावण का पुत्र मेघनाद हनुमान् पर बाणों की व्यर्थता देखकर इसका निग्रह कैसे हो इस विचार में मग्न हो गया । वनवासी वीर हनुमान् की अवध्यता को जानकर 'इनके निग्रह का अन्य क्या उपाय है' यह विचारने लगा ॥ ३५॥ अस्त्रधारियों में वीर मेघनाद ने ब्रह्मा के दिए हुए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग वनवासी वीर हनुमान् पर किया ॥३६॥ तत्त्व का जानने वाले इन्द्रजित् ने यह जानकर कि हनुमान् अस्त्र के द्वारा अवध्य हैं, ऐसी अवस्था में हनुमान् को जीवित ही पकड़ लिया ॥३७॥ राक्षस के द्वारा उस ब्रह्मास्त्र में बँध जाने के कारण वनवासी हनुमान् चेष्टा रहित हो गए, तथा पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ ब्रह्मास्त्र के द्वारा बँध जाने पर भी अपने स्वामी (राम) के प्रभाव से इनको किसी प्रकार का उद्वेग या कष्ट नहीं हुआ । ब्रह्मास्त्र में ब्रह्मा के प्रभाव का स्मरण करते हुए वनवासी वीर हनुमान् विचारमग्न हो गए ॥३९॥ स्वयंभू ब्रह्मा के विचारों से युक्त उस ब्रह्मास्त्र में अपने आपको बँधा देखकर तथा ब्रह्मा के वरदान को देखते हुए हनुमान् चिन्ता करने लगे ॥ ४० ॥ लोकगुरु ब्रह्मा में निष्ठा होने के कारण मैं इस ब्रह्मा के प्रभाव का उल्लंघन नहीं कर सकता । इसलिये ब्रह्मा के द्वारा निर्मित इस ब्रह्मास्त्र का मुझे आदर करना ही चाहिये ॥४१॥ ब्रह्मास्त्र के प्रभाव, ब्रह्मा का अपने ऊपर अनुग्रह, तथा ब्रह्मास्त्र से मुक्त होने की अपनी क्षमता इन सब पर विचार करते हुए ब्रह्मा की आज्ञा मानना ही श्रेयस्कर समझा ॥ ४२ ॥ पितामह ब्रह्मा इन्द्र तथा वायु के

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महान् मे गुणदर्शनः। राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्गृह्णन्तु मां परे ॥४४॥

स निश्चितार्थः परवीरहन्ता समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥ ४५ ॥

ततस्तं राक्षसा दृष्ट्वा निर्विचेष्टमरिंदमम्। बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ४६ ॥

स रोचयामास परैश्च बन्धनं प्रसह्य वीरैरभिनिग्रहं च।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ॥ ४७ ॥

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान्। अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥४८॥

अथेन्द्रजित्तु द्रुमचीरबद्धं विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम्।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्तां नान्येन बद्धो ह्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥ ४९ ॥

अहो महत्कर्म कृतं निरर्थकं न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥ ५० ॥

अस्त्रेण हनुमान् मुक्तो नात्मानमवबुध्यत। कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥५१॥

हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः काष्ठमुष्टिभिः। समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ॥५२॥

अथेन्द्रजित्तं प्रसमीक्ष्य मुक्तमस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः।
व्यदर्शयत्तत्र महाबलं तं हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥ ५३ ॥

द्वारा रक्षित होने पर मुझे ब्रह्मास्त्र के बंधन में बँध जाने पर भी कोई कष्ट नहीं हो रहा है ॥ ४३ ॥ मेरे बन्धन में आने का सबसे विशेष लाभ यह है कि राक्षसराज रावण के साथ वार्तालाप करने का अवसर मिलेगा। इसलिये ये राक्षस लोग मुझको निर्विरोध पकड़ लेवें ॥ ४४ ॥ शत्रु सैन्यसंहारी विचारपूर्वक काम करने वाले हनुमान् इस प्रकार निश्चय करके चेष्टारहित हो गए। चारों तरफ से घेर कर राक्षसगण उन्हें दण्डित करने लगे। उस समय उन्होंने गर्जन किया ॥ ४५ ॥ अरिमर्दन हनुमान् को निश्चेष्ट देखकर वे राक्षसगण वल्कल तथा वृक्षों से बनी हुई रस्सियों से उन्हें बाँधने लगे ॥ ४६ ॥ कौतूहल से राक्षसराज रावण मुझे देखने की चेष्टा करे (तथा भाषण करने की चेष्टा करे) यह श्रेष्ठ लाभ है, ऐसा विचार करके हनुमान् ने शत्रुओं के द्वारा बाँधे जाना तथा अनेकों प्रकार के तिरस्कार को श्रेयस्कर समझा ॥ ४७ ॥ वल्कल आदि रस्सियों के द्वारा बाँधे जाने पर हनुमान् ब्रह्मास्त्र बन्धन से मुक्त हो गए। क्योंकि ब्रह्मास्त्र अन्य बन्धनों के साथ नहीं रह सकता ॥ ४८ ॥ द्रुमादि चीर वल्कल वस्त्रादियों से बँधा हुआ तथा ब्रह्मास्त्र से मुक्त होने पर भी अपने आपको ब्रह्मास्त्र में बँधा हुआ समझ रहा है इस प्रकार इन्द्रजित् चिन्ता करने लगा ॥४९॥ अहो ! मेरा यह सम्पूर्ण किया हुआ कार्य निरर्थक हो गया। अनुयायी राक्षसों ने ब्रह्मास्त्र की मन्त्रगति पर विचार नहीं किया था। निरर्थक हो जाने पर अब इस ब्रह्मास्त्र का दुबारा प्रयोग नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में हम सबकी विजय सन्देहयुक्त हो गई है ॥ ५० ॥ ब्रह्मास्त्र से मुक्त हो जाने पर भी हनुमान् ने अपने को मुक्त नहीं समझा। राक्षसों के द्वारा खींचे गये तथा पीड़ित किये गये ॥५१॥ काल के समान मुष्टिकादि से आहत होते हुए वनवासी हनुमान् राक्षसराज रावण के समीप ले जाए गए ॥५२॥ मेघनाद ने महाबली उस वनवासी वीर हनुमान् को रस्सियों से बँधा हुआ तथा ब्रह्मास्त्र से मुक्त देखकर उसको सभासदों के मध्य राक्षसराज रावण को दिखलाया ॥ ५३ ॥ मदोन्मत्त गजराज के समान बँधे हुए उस वनवासी वीर हनुमान् को रावण के

तं सत्त्वमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् । राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥५४॥
कोऽयं कस्य कुतो वात्र किं कार्यं को व्यपाश्रयः । इति राक्षसवीराणां तत्र संजज्ञिरे कथाः ॥५५॥
हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे । राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥५६॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा स तत्र रक्षोऽधिपपादमूले ।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान् गृहं महारत्नविभूषितं च ॥ ५७ ॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् । रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥५८॥
राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः । तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥५९॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टिर्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान् कुलशीलवृद्धान् समादिशत्तं प्रति मन्त्रिमुख्यान् ॥ ६० ॥
यथाक्रमं तैः स कपिर्विपृष्टः कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे इन्द्रजिदभियोगो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

समक्ष उपस्थित किया ॥ ५४ ॥ यह कौन है ? किसका है ? कहाँ से आया है ? किस कार्य के लिये आया है ? इसका आश्रयदाता तथा स्थान कहाँ है ? हनुमान् को देखकर राक्षस लोग आपस में इस प्रकार वार्ता करने लगे ॥५५॥ मार डालो, जला दो, खा जाओ—क्रोध में आए हुए सम्पूर्ण राक्षस परस्पर इस प्रकार की बातें करने लगे ॥ ५६ ॥ महात्मा हनुमान् अनेकों मार्गों को पार करते हुए वहाँ राक्षसराज रावण के समीप पहुँचे । वहाँ पर हनुमान् ने राक्षसराज रावण के वयोवृद्ध सेवकों तथा उत्तम रत्नों से विभूषित गृह को देखा ॥ ५७ ॥ भयङ्कर आकार वाले राक्षसों से इधर उधर खींचे जाते हुए वीर हनुमान् को महातेजस्वी रावण ने देखा ॥ ५८ ॥ वीर हनुमान् ने तेज, बल से पूर्ण देदीप्यमान सूर्य की तरह राक्षसराज रावण को वहाँ देखा ॥ ५९ ॥ अत्यन्त रोष से जिसकी आँखें लाल हो गईं हैं, ऐसे रावण ने हनुमान् को सभा में आये हुए देखकर राजसभा में बैठे हुए कुलशील से युक्त तथा वयोवृद्ध मन्त्रियों को पूछताछ करने का आदेश दिया ॥६०॥ लङ्का में आगमन का ध्येय तथा ध्येय का प्रधान हेतु इस विषय में मन्त्रियों द्वारा पर्यायक्रम से पूछे जाने पर हनुमान् ने उत्तर दिया कि मैं वनवासिसम्राट् का दूत हूँ तथा उन्हीं के समीप से यहाँ आया हूँ ॥ ६१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'इन्द्रजित् को आदेश' विषयक अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः

रावणप्रभावदर्शनम्

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः । हनुमान् रोषताम्राक्षो रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १ ॥
भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता । मुक्ताजालावृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥ २ ॥
वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः । हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥
महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूषितम् । स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः॥ ४ ॥
विवृतैर्दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः । दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रैः प्रलम्बदशनच्छदैः ॥ ५ ॥
[शिरोभिर्दशभिर्वीरं भ्राजमानं महौजसम् । नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६ ॥]
नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता । पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबलाकमिवाम्बुदम् ॥ ७॥
बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः । भ्राजमानाङ्गदैः पीनैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८ ॥
महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगसंस्कृते । उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ॥ ९ ॥
अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः । वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥ १० ॥

उनञ्चासवाँ सर्ग

रावण के प्रभाव का दर्शन

पराक्रमी वीर हनुमान् इन्द्रजित् के इस अप्रमेय कार्य से अत्यन्त चकित हुए, तथा क्रोध से लाल नेत्रों से राक्षसराज रावण को देखा ॥ १ ॥ मुक्ताओं से गुम्फित मूल्यवान् सोने के देदीप्यमान मुकुट से युक्त ॥ २ ॥ जिसमें यत्र-तत्र रत्न जड़े हुए हैं। इस प्रकार अन्य अनेकों मानसिक कल्पनाओं से निर्मित आभूषणों से वह सुशोभित हो रहा था ॥ ३ ॥ वह मूल्यवान् रेशमी वस्त्र धारण किये हुये था। सर्वाङ्ग में लाल चन्दन का अनुलेपन था, जिसमें विविध प्रकार की रचना थी ॥ ४ ॥ भयानक, लाल वर्ण की आँखों से जो अत्यन्त दर्शनीय थी। विशाल अधर से छिपे हुए उसके विशाल तथा चमकीले दन्त थे ॥ ५ ॥ नाना प्रकार के सर्पादि जन्तुओं से व्याप्त मन्दराचल के शिखर के समान अत्यन्त ओजवाले दस सिरों से वह प्रकाशित हो रहा था[1] ॥ ६ ॥ नील कज्जल के समान उसका वर्ण श्याम था। वक्षःस्थल हार से सुशोभित हो रहा था। पूर्णचन्द्र के समान मुखमण्डल बाल रवि से युक्त नील मेघ के समान प्रतीत हो रहा था ॥ ७ ॥ इसमें अङ्गद नामक आभूषण तथा केयूर आभूषण सुशोभित हो रहे थे। चन्दन से अनुलिप्त ५ सिर वाले सर्प के समान उसकी विशाल भुजाएँ सुशोभित हो रही थी ॥ ८ ॥ रत्न जटित स्फटिक प्रस्तर का सिंहासन जिस पर मूल्यवान् आसन बिछा हुआ था उस पर रावण सुशोभित हो रहा था ॥ ९ ॥ नाना प्रकार के उत्तम अलंकारों से अलंकृत बाल व्यजन को हाथ में लिए हुए अनेकों स्त्रियाँ समीप से उसकी सेवा कर रही थीं ॥ १० ॥ दुर्धर

१—यह श्लोक प्रक्षिप्त है। यहाँ पर रावण के दस सिरों का जो वर्णन किया गया है वह सर्वथा असंभव है। दस सिर और बीस भुजा का वर्णन प्रायः पद्मपुराण आदि पुराणों में आता है। यह वहाँ से उठाकर यहाँ रख दिया गया है। वस्तुतः यह वाल्मीकि का नहीं है।

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा । मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥ ११ ॥
उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितैः । कृत्स्नं परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः ॥ १२ ॥
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभबुद्धिभिः । अन्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥ १३ ॥
अपश्यद्राक्षसपतिं हनुमानतितेजसम् । विष्ठितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥ १४ ॥
स तैः संपीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः । विस्मयं परमं गत्वा रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १५ ॥
भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान् राक्षसेश्वरम् । मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥१६॥
अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः । अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥ १७ ॥
यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः । स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥ १८ ॥
अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः । तेन बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥१९॥
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् । इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान् कपिः ॥२०॥
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे रावणप्रभावदर्शनं नाम एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

प्रहस्त, महापार्श्व तथा निकुम्भ नामक चार तत्त्व के जानने वाले मन्त्री उसके समीप थे ॥ ११ ॥ उन तत्त्वज्ञ चारों मन्त्रियों से घिरा हुआ बलदर्पित रावण इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार चार समुद्र से घिरा हुआ सम्पूर्ण भूमण्डल सुशोभित होता है ॥ १२ ॥ तत्त्व के जानने वाले शुभदर्शी अन्य मन्त्रियों से वह इस प्रकार आश्वासित हो रहा था जिस प्रकार अमरमण्डली से इन्द्र ॥ १३ ॥ मेरुपर्वत के शिखर पर सजल मेघ के समान अति तेजस्वी राक्षसराज रावण को हनुमान् ने देखा ॥ १४ ॥ भीषण पराक्रम वाले, राक्षसों के द्वारा पीड़ित होने पर भी अत्यन्त विस्मित हनुमान् राक्षसराज रावण को देखने लगे ॥ १५ ॥ अत्यन्त प्रकाशमान राक्षसराज रावण को देख कर तथा उसके तेज पर मुग्ध होते हुए अपने अन्तःकरण में सोचने लगे ॥ १६ ॥ कितना इसका सौन्दर्य है ? कितना इसमें धैर्य है ? कितना इसमें पराक्रम तथा किस प्रकार की इसमें कमनीय कान्ति है। वस्तुतः यह राक्षसराज सर्व लक्षणों से परिपूर्ण है ॥ १७ ॥ यदि इस राक्षसराज रावण में अधर्म का आधिक्य न होता तो यह इन्द्र सहित देवलोक पर भी शासन करता ॥१८॥ इसके क्रूर, निर्दय तथा अन्य लोकनिन्दित कर्मों से सम्पूर्ण देव दानव मण्डल भयत्रस्त रहते हैं ॥ १९ ॥ क्रुद्ध होने पर यह राक्षसराज रावण सम्पूर्ण जगत् का नाश कर सकता है। अमित पराक्रमी वनवासी वीर हनुमान् राक्षसराज रावण के इस प्रभाव को देखकर नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे ॥ २० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'रावण के प्रभाव का दर्शन' विषयक उनंचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः

प्रहस्तप्रश्नः

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् । रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥
शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसावृतम् । किमेष भगवान्नन्दी भवेत्साक्षादिहागतः ॥ २ ॥
येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया संचालिते पुरा । सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किंस्विद्बाणोऽपि वासुरः ॥ ३ ॥
स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् । कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥ ४ ॥
दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् । वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसीनां च तर्जने ॥ ५ ॥
मत्पुरीमप्रधृष्यां वागमने किं प्रयोजनम् । आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ६ ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् । समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ॥ ७ ॥
यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् । तत्त्वमाख्याहि मा भूत्ते भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य वा । चाररूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा । न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥१०॥
तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे । अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥११॥

पचासवां सर्ग

प्रहस्त के द्वारा प्रश्न

क्लिष्ट कर्मों से लोकमात्र को रुलाने वाले, विशाल भुजा वाले अत्यन्त क्रुद्ध उस रावण ने पीली आँखों वाले हनुमान् को अपने समक्ष बैठे हुए देखा ॥ १ ॥ देदीप्यमान, तेजस्वी हनुमान् को देखकर सशङ्कित होते हुए वह मन में विचार करने लगा। क्या यह साक्षात् भगवान् नन्दी तो नहीं आ गए ॥ २ ॥ कैलास पर्वत पर मेरे हँसते हुए जिन्होंने मुझे शाप दिया था वही वनवासी का रूप धारण करके तो यहाँ नहीं आए, अथवा बाणासुर वनवासी के रूप में तो नहीं आया ? ॥ ३ ॥ क्रोध से लाल नेत्रों वाला वह राक्षसराज रावण मन्त्रियों में श्रेष्ठ प्रहस्त से समयोचित तथा अर्थयुक्त गम्भीर वचन बोला ॥ ४ ॥ इस दुरात्मा वनवासी से पूछो कि यह कहाँ से आया है ? तथा किस निमित्त से आया है ? वन के उजाड़ने में तथा राक्षसियों के तर्जन से इसका क्या प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥ इस दुर्बुद्धि से यह पूछो कि दुर्गमनीय मेरी नगरी लङ्का में इसके आने का क्या प्रयोजन है तथा यहाँ आकर संग्राम करने का इसका क्या कारण है ? ॥ ६ ॥ राक्षसराज रावण के वचन को सुनकर प्रहस्त बोला—हे वनवासी वीर ! तुम उद्विग्न मत हो, किसी प्रकार का भय मत करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ७ ॥ यदि तुमको इन्द्र ने इस लङ्कापुरी में भेजा है तो सच-सच बतला दो, भय मत करो। तुम अवश्य मुक्त हो जाओगे ॥ ८ ॥ यदि कुबेर, यम तथा वरुण के द्वारा भेजने पर गुप्तचर का रूप धारण कर इस मेरी लङ्का नगरी में प्रविष्ट हुए हो (तो बता दो) ॥ ९ ॥ अथवा विजय की आकांक्षा रखने वाले विष्णु (नामक राजा) के द्वारा तुम भेजे गये हो क्या ? तेज तथा पराक्रम से तुम वनवासी नहीं मालूम पड़ते हो केवल बाहरी आकार ही वनवासी का है ॥ १० ॥ हे वनवासी वीर ! सच बोलने पर तुम मुक्त हो जाओगे। अनृत बोलने पर तुम्हारा जीवन अति दुर्लभ हो जायगा ॥ ११ ॥ अथवा

अथवा यन्निमित्तं ते प्रवेशो रावणालये। एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥१२॥
अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा। धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ॥१३॥
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः। दर्शने राक्षसेन्द्रस्य दुर्लभे तदिदं मया ॥१४॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम्। ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥१५॥
रक्षणार्थं तु देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे। अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बन्धुं देवासुरैरपि ॥१६॥
पितामहादेव वरो ममाप्येषोऽभ्युपागतः। राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥१७॥
विमुक्तो ह्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिपीडितः। केनचिद्राजकार्येण संप्राप्तोऽस्मि तवान्तिकम् ॥१८॥
दूतोऽहमिति विज्ञेयो राघवस्यामितौजसः। श्रूयतां चापि वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रहस्तप्रश्नो नाम पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

जिस किसी भी निमित्त से तुमने इस लङ्कानगरी में प्रवेश किया है, वह सत्यपूर्वक कहो। राक्षसराज रावण के मन्त्री प्रहस्त के इस प्रकार पूछने पर हनुमान् ने कहा ॥ १२ ॥ इन्द्र, यम तथा वरुण का मैं दूत नहीं हूँ। अलकापुरी के सम्राट् कुबेर से मेरी कोई मित्रता नहीं है और न ही मैं विष्णु का भेजा हुआ हूँ ॥ १३ ॥ जन्म से ही मैं वनवासी हूँ। राक्षसराज रावण के दर्शन के लिये यहाँ आया हूँ। किन्तु यह मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ था ॥ १४ ॥ राक्षसराज रावण के दर्शन के लिये ही मैंने वन का नाश किया। वन के उजाड़ने पर युद्ध की आकांक्षा से बलवान् राक्षस मेरे समक्ष आये ॥ १५ ॥ अपने शरीर को रक्षा के लिये मैंने उनसे युद्ध किया। देवता तथा असुर भी अस्त्रपाश से मुझे नहीं बाँध सकते ॥ १६ ॥ ब्रह्मा के द्वारा मुझे भी यह ब्रह्मास्त्र का वर प्राप्त हुआ है। केवल राक्षसराज रावण के देखने की कामना से ही समर्थ होता हुआ भी मैं यहाँ बँधा हुआ आया हूँ ॥ १७ ॥ अस्त्रपाश से मुक्त होते हुए भी मुझे बँधा समझकर राक्षसवर्ग तुम्हारे समीप ले आया। वस्तुतः रामचन्द्र के किसी कार्य निमित्त से ही मैं तुम्हारे समीप आया हूँ ॥ १८ ॥ अमित पराक्रमी रामचन्द्र का मैं दूत हूँ। ऐसा समझते हुए हे महाराज! कल्याणकारी जो वचन मैं कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो ॥ १९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'प्रहस्त के द्वारा प्रश्न' विषयक पचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

हनुमदुपदेशः

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान् हरिसत्तमः । वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥
अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवालयम् । राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥
भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः । धर्मार्थोपहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् । पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥ ४ ॥
ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियकरः प्रभुः । पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया चापि भार्यया । रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ६ ॥
तस्य भार्या वने नष्टा सीता पतिमनुव्रता । वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
स मार्गमाणस्तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः । ऋश्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण समागतः ॥ ८ ॥
तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् । सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितम् ॥ ९ ॥
ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् । सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥१०॥
त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुंगवः । रामेण निहतः संख्ये शरेणैकेन वानरः ॥११॥
स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसंगरः । हरीन् संप्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥१२॥

इक्यावनवाँ सर्ग

हनुमान् का उपदेश

वीर वनवासी हनुमान् पराक्रमी तथा धैर्यवान् उस रावण को सामने देखकर सन्देहरहित अर्थपूर्ण ये वचन बोले ॥ १ ॥ मैं सम्राट् सुग्रीव के सन्देश से तुम्हारे समीप आया हूँ। हे राक्षसराज ! आपके बन्धु राजा सुग्रीव ने कुशल पूछी है ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ से युक्त तथा लोक परलोक के कल्याणकारी अपने भाई सम्राट् सुग्रीव के इस सन्देश को आप सुनिये ॥ ३ ॥ हाथी, रथ, घोड़ों से युक्त दशरथ नाम के सम्राट् पिता के समान प्रजामात्र के कल्याणकारी तथा इन्द्र के समान तेजस्वी तथा पराक्रमी हैं ॥ ४ ॥ विशाल भुजा वाले उनके ज्येष्ठ प्रिय पुत्र रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा से घर छोड़कर दण्डक वन में प्रवेश किया ॥ ५ ॥ अपने भाई लक्ष्मण तथा अपनी धर्मपत्नी सीता के साथ महातेजस्वी रामचन्द्र धर्ममार्ग का अवलम्बन करते हुए ॥ ६ ॥ विदेहराज महात्मा जनक की पुत्री तथा रामचन्द्र की भार्या जो सीता नाम से प्रसिद्ध है जनस्थान में खो गई ॥ ७ ॥ अपने भ्राता लक्ष्मण के साथ उस देवी का अन्वेषण करते हुए रामचन्द्र ऋश्य-मूक पर्वत पर आये । वहाँ सुग्रीव से मिले ॥ ८ ॥ उन्होंने सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा की । रामचन्द्र ने भी गये हुये राज्य को उन्हें समर्पित करने की प्रतिज्ञा की ॥ ९ ॥ पश्चात् संग्राम में रामचन्द्र ने बाली को मारकर वनवासियों के राजसिंहासन पर सुग्रीव का अभिषेक किया ॥ १० ॥ वनवासी वीर बाली को तुम पहले से ही जानते हो । उस महाबली बाली को रामचन्द्र ने एकबाण से समाप्त कर दिया ॥ ११ ॥ जानकी की खोज में चिन्तित सत्यप्रतिज्ञ सम्राट सुग्रीव ने सम्पूर्ण दिशाओं में वनवासी सैनिकों को भेजा ॥ १२ ॥

तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च । दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे ॥१३॥
वैनतेयसमाः केचित्केचित्तत्रानिलोपमाः । असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥१४॥
अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः । सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥१५॥
समुद्रं लङ्घयित्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः । भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥१६॥
तद्भवान् दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः । परदारान् महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥१७॥
न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु । मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥१८॥
कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् । शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥१९॥
न चापि त्रिषु लोकेषु राजन् विद्येत कश्चन । राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥२०॥
तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुबन्धि च । मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥२१॥
दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् । उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥२२॥
लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा । गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥२३॥
नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि । विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा ॥२४॥
तपःसंतापलब्धस्ते योऽयं धर्मपरिग्रहः । न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥२५॥
अवध्यतां तपोभिर्यां भवान् समनुपश्यति । आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥२६॥
सुग्रीवो न हि देवोऽयं नासुरो न च राक्षसः । न दानवो न गन्धर्वो न यक्षो न च पन्नगः ॥२७॥

वनवासी सैनिक हजारों लाखों की संख्या में नीचे ऊपर सब दिशाओं में सीता की खोज कर रहे हैं ॥ १३ ॥ उनमें कितने ही गरुड़ के समान गति वाले तथा कितने ही वायु के समान वेग वाले हैं । वे महाबली वनवासी वीर बिना किसी की सहायता के शीघ्रकारी तथा स्वयं कार्यकुशल हैं ॥ १४ ॥ मैं वायु का औरस पुत्र हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । जानकी के दर्शन के लिये सौ योजन लम्बे ॥ १५ ॥ समुद्र को पारकर आपके दर्शन की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ । इस नगरी में घूमते हुए मैंने तुम्हारे गृह में जानकी को देखा है ॥ १६ ॥ आप धर्म, अर्थ के जानकार तथा तपश्चर्या में आदर रखते हैं । इसलिये हे महाप्राज्ञ ! पराई स्त्री को हठात् रोकना आप जैसे व्यक्ति को उपयुक्त नहीं ॥ १७ ॥ आप जैसे बुद्धिमान् अनर्थकारी, मूल के नष्ट करने वाले, धर्मविरुद्ध कार्य में प्रवृत्त नहीं होते ॥ १८ ॥ राम के क्रोधानुगामी लक्ष्मण के छोड़े हुये बाणों के समक्ष खड़े होने की शक्ति देव तथा असुर किसी में भी नहीं है ॥ १९ ॥ हे राक्षसराज रावण ! इस त्रिलोकी में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो रामचन्द्र का विरोध करके सुख, शान्ति प्राप्त कर सके ॥ २० ॥ तीनों कालों में हितकारी, धर्म अर्थ के अनुकूल, मेरी इन बातों को मानकर नर केसरी रामचन्द्र को सीता दे दो ॥ २१ ॥ देवी जानकी को मैंने यहाँ देखा है जो मेरे जैसे व्यक्ति के लिये अत्यन्त दुर्लभ था । इसके पश्चात् जो शेष कर्तव्य है वह रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र पर निर्भर है ॥ २२ ॥ शोक परायण सीता को मैंने तुम्हारे घर में देखा है । पाँच मुख वाली सर्पिणी के समान सीता को तुम नहीं जान रहे हो ॥ २३ ॥ जिस प्रकार विषयुक्त अन्न जठराग्नि के बल पर नहीं पकाया जा सकता उसी प्रकार इस सीता को देव असुर कोई भी छिपा नहीं सकते ॥ २४ ॥ तपश्चर्या के द्वारा जो तुमने दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया है, इस प्रकार उसका नाश करना तुम्हारे जैसे व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं ॥ २५ ॥ असुर तथा देवों के द्वारा आप अपनी अवध्यता समझ रहे हैं । उसमें भी वक्ष्यमाण हेतु हैं ॥ २६ ॥ रामचन्द्र तथा सुग्रीव न देव हैं, न यक्ष हैं, न ही राक्षस हैं । हे राजन् ! रामचन्द्र मनुष्य हैं, तथा सुग्रीव भी वनवासी मनुष्यों के सम्राट हैं । उनसे आप अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर सकेंगे ॥ २७ ॥ अधर्मी लोगों को अपने उत्तम कार्यों का

ननु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम् । तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ॥२८॥
प्राप्तं धर्मफलं तावद्भवता नात्र संशयः । फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे ॥२९॥
जनस्थानवधं बुद्ध्वा बुद्ध्वा वालिवधं तथा । रामसुग्रीवसख्यं च बुध्यस्व हितमात्मनः ॥३०॥
कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम् । लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः ॥३१॥
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसंनिधौ । उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ॥३२॥
अपकुर्वन् हि रामस्य साक्षादपि पुरंदरः । न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ॥३३॥
यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते वशे । कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ॥३४॥
तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा । स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षममात्मनि चिन्त्यताम् ॥३५॥
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम् । दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम् ॥३६॥
स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातॄन्सुतान्हितान् । भोगान् दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय॥३७॥
सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम । रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥३८॥
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् । पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥३९॥
देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोगणेषु च । विद्याधरेषु सर्वेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ॥४०॥
सिद्धेषु किंनरेन्द्रेषु पतत्रिषु च सर्वतः । सर्वभूतेषु सर्वत्र सर्वकालेषु नास्ति सः ॥४१॥

फल भी नहीं मिलता । क्योंकि अधर्मियों के उत्तम कर्म भी पापरूप में परिणत हो जाते हैं । धर्मात्माओं का सामान्य कार्य भी धार्मिक हो जाता है ॥ २८ ॥ धन, पुत्र, पौत्र, कलत्रादि के रूप में आपने धर्म का फल प्राप्त कर लिया इसमें कोई सन्देह नहीं । अब इन अधर्मों का फल भी आप शीघ्र ही प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥ जनस्थान का विध्वंस और बाली का वध जानकर तथा राम सुग्रीव की मैत्री को देखते हुए अपने कल्याण मार्ग का चिन्तन करो ॥ ३० ॥ घोड़े, हाथी, रथ, चतुरङ्गिणी सेना के समेत इस लङ्का का मैं अकेला ही नाश कर सकता हूँ । किन्तु इस कार्य के लिये रामचन्द्र की आज्ञा नहीं है ॥ ३१ ॥ जानकी का हरण करके जिन राक्षसों ने उनका घोर अपमान किया है, वनवासी सैनिकों के समक्ष रामचन्द्र ने उनका नाश करने की प्रतिज्ञा की है ॥ ३२ ॥ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का अपकार करके साक्षात् इन्द्र भी सुख शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते, तुम्हारे जैसे पतित व्यक्तियों की तो बात क्या है ॥ ३३ ॥ जिसको तुम सीता समझ बैठे हो और जो तुम्हारे गृह में बैठी है, सम्पूर्ण लङ्का का नाश करने वाली उसे तुम कालरात्रि समझो ॥ ३४ ॥ स्वयं अपनी ग्रीवा में फाँसी डालने की तरह अपने कन्धे पर लाई गई सीतारूपी कालपाश में बँधना तुम्हें उचित नहीं । अतः अपने कल्याण की बात सोचो ॥ ३५ ॥ सीता के तेज से संदग्ध तथा राम के कोप से प्रचण्ड प्रज्वलित अट्टालिकाओं तथा गलियों के सहित जलती हुई इस लङ्का को तुम शीघ्र ही देखोगे ॥ ३६ ॥ अपने मन्त्रिवर्ग, ज्ञाति, भ्राता, पुत्र, हितैषी, भोग्य वस्तु तथा राजदाराओं के समेत इस लङ्का का नाश मत करो ॥ ३७ ॥ हे राक्षसराज रावण ! रामचन्द्र के दूत तथा दास विशेषकर मुझ वनवासी की सत्य तथा हितैषी इन बातों को सुनो ॥ ३८ ॥ चराचर प्राणियों के समेत सम्पूर्ण लोकों का नाश करके पुनः सृष्टि करने की शक्ति महायशस्वी रामचन्द्र में है ॥ ३९ ॥ देव, असुर, राजन्यवर्ग, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, गान्धर्व, पशुवर्ग, ॥ ४० ॥ सिद्ध, किंनर, पक्षी आदि सभी प्राणिवर्ग में तथा सब कालों में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है ॥ ४१ ॥ जो विष्णुतुल्यपराक्रमी रामचन्द्र के साथ युद्ध कर सके । सर्वलोकों के पालक नरकेसरी रामचन्द्र

यो रामं प्रतियुध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् । सर्वलोकेश्वरस्यैवं कृत्वा विप्रियमीदृशम् ॥४२॥
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्रगन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥४३॥
ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥४४॥
स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः समादिशत्तस्य वधं महाकपेः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमदुपदेशो नाम एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

दूतवधनिवारणम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः । आज्ञापयत्तस्य वधं रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ १ ॥
वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना । निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥

का इस प्रकार अप्रिय कार्य करके आपका जीवन अत्यन्त दुर्लभ हो जायगा ॥ ४२ ॥ हे राक्षसराज रावण ! देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग ये यक्ष सर्वजननायक रामचन्द्र के समक्ष संग्राम में नहीं ठहर सकते ॥ ४३ ॥ चारों वेदों के वक्ता स्वयं ब्रह्मा, त्रिकालज्ञ त्रिपुरान्तक शिव, सुरनायक महेन्द्र ये कोई भी संग्राम में राम के समक्ष नहीं ठहर सकते ॥ ४४ ॥ सुन्दर तथा निर्भीकता से बोलने वाले हनुमान् के अप्रिय वचन को सुनकर क्रोध से विस्फारित नेत्र वाले रावण ने हनुमान् के वध की आज्ञा दी ॥ ४५ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का उपदेश' विषयक इक्यावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवां सर्ग

दूत के वध का निषेध

महात्मा वनवासी हनुमान् की इन बातों को सुनकर क्रोधमूर्छित रावण ने उसके वध की आज्ञा दी ॥ १ ॥ महात्मा रावण के द्वारा हनुमान् के वध का आदेश देने पर जिन्होंने स्वयं अपने दूत होने की घोषणा की है ऐसे हनुमान् के वध का विभीषण ने अनुमोदन नहीं किया ॥ २ ॥ कर्तव्याकर्तव्य के निर्णायक

तं रक्षोऽधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम् । विदित्वा चिन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥
निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम् । उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मद्वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ॥ ५ ॥

राजधर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् । तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ६ ॥
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः । परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ॥ ७ ॥
गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विपश्चितः । ततः शास्त्रविपश्चित्त्वं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥
तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद । युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूते दण्डो विधीयताम् ॥ ९ ॥
विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । रोषेण महताविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १० ॥
न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन । तस्मादेनं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥ ११ ॥

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्तमनार्यजुष्टं वचनं निशम्य ।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ १२ ॥
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र धर्मार्थयुक्तं वचनं शृणुष्व ।
दूतानवध्यान् समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥
असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥ १४ ॥

विभीषण राक्षसपति रावण के क्रोध तथा हनुमान् के वध का आदेश इन दोनों पर दृष्टि रखते हुए विचार करने लगे ॥ ३ ॥ शत्रुविजयी, वाणीविशारद विभीषण कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करके ज्येष्ठ भ्राता रावण से नम्रतापूर्वक हितकारी ये वचन बोले ॥ ४ ॥ हे राक्षसेन्द्र ! क्रोध छोड़ दीजिये । प्रसन्नतापूर्वक मेरी इन बातों को सुनिये । पूर्वापर के जानने वाले, सज्जन राजा लोग दूत का वध नहीं करते ॥ ५ ॥ इस वनवासी को प्राणदण्ड देना राजधर्म के विरुद्ध, लोकाचार से निन्दित तथा आप जैसे वीर व्यक्ति के लिये अयोग्य है ॥ ६ ॥ आप धर्मात्मा, कृतज्ञ तथा राजधर्मनिष्णात हैं । हेय उपादेय के जानकार तथा तत्त्वदर्शी हैं ॥ ७ ॥ आप जैसे नीतिविशारद यदि क्रोध के वशीभूत हो जायं तो शास्त्र का पाण्डित्य केवल श्रममात्र हो जायगा ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशी अजेय राक्षसेन्द्र ! इसलिये आप प्रसन्न हो जाइये । हेय उपादेय का निश्चय करके आप दूत को दण्ड देवें ॥ ९ ॥ राक्षसराज रावण विभीषण की इन बातों को सुनकर क्रोधावेश में आकर यह वचन बोला ॥ १० ॥ पापियों के वध करने में कोई पाप नहीं । इसलिये हे शत्रुघ्न ! इस पापी वनवासी को मैं अवश्यमेव प्राणदण्ड दूँगा ॥ ११ ॥ अधर्ममूलक, अत्यन्त दोषपरिपूर्ण, नीचों के सेवन करने योग्य रावण की इन बातों को सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, धर्मतत्त्वज्ञ विभीषण ये वचन बोले ॥ १२ ॥ हे लङ्कापति राक्षसेन्द्र ! आप प्रसन्न हो जायं । धर्मार्थयुक्त मेरी इन बातों को सुनिये । दूत सर्वदा तथा सर्वत्र अवध्य माने जाते हैं, ऐसा सज्जनों का निर्णय है ॥ १३ ॥ निस्सन्देह यह शत्रु बहुत बढ़ा चढ़ा है, इसने अत्यन्त अप्रिय कार्य किया है । किन्तु सज्जन लोग दूत को दण्ड नहीं देते । प्राणदण्ड के अतिरिक्त दूतों के लिये और भी बहुत दण्ड हैं ॥ १४ ॥ अङ्गविच्छेद कर देना, कोड़ा लगाना, सिर मुंडवा देना, मस्तक आदि अङ्गों पर गरम लोहे से कोई चिह्न कर देना—विधानतः दूतों के लिये ये दण्ड माने गए हैं ।

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः ।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान् वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽपि ॥१५॥

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्कोपं नियच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥ १६ ॥

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु चापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्यस्त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

शूरेण वीरेण निशाचरेन्द्र सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया प्रगल्भाः सुरदैत्यसङ्घा युद्धेषु युद्धेष्वसकृन्नरेन्द्राः ॥ १८ ॥

इत्थंविधस्यामरदैत्यशत्रोः शूरस्य वीरस्य तवाजितस्य ।
कुर्वन्ति मूढा मनसो व्यलीकं प्राणैर्वियुक्ता ननु ये पुरा ते ॥ १९ ॥

न चाप्यस्य कपेर्घाते कंचित्पश्याम्यहं गुणम् । तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥२०॥
साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः । ब्रुवन् परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥२१॥
अपि चास्मिन् हते राजन्नान्यं पश्यामि खेचरम् । इह यः पुनरागच्छेत्परं पारं महोदधेः ॥२२॥
तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरंजय । भवान् सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥२३॥

अस्मिन् विनष्टे न हि दूतमन्यं पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।
युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीतावुद्योजयेद्दीर्घपथावरुद्धौ ॥२४॥

दूतों का वध दण्ड मैंने आज तक नहीं सुना ॥ १५ ॥ धर्मार्थ का जानने वाला, पूर्वापर का विचार करके निश्चय करने वाला आपके समान व्यक्ति क्रोध के वश में कैसे हो सकता है । वस्तुतः बलवान् लोग क्रोध के वशीभूत नहीं होते ॥ १६ ॥ हे वीर ! धर्मशास्त्र में, लोक व्यवहार में तथा शास्त्रानुकूल कार्य करने में आपके समान दूसरा कोई नहीं है । आप देव तथा असुरों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ १७ ॥ हे राक्षसेन्द्र ! दुर्जय, शूरवीर आपने सुर और असुरों में मानी देव, दैत्य राजाओं के समूह को प्रत्येक युद्ध में अनेकों बार पराजित किया है ॥ १८ ॥ अजेय शूरवीर आप जैसे देव, दैत्यों के शत्रु की वे ही मन्दबुद्धि मन से बुराई करते हैं जिन लोगों का आपने प्राणवध किया है ॥ १९ ॥ इस वनवासी के प्राणदण्ड में मुझे कोई विशेषता नहीं दिखाई देती । वस्तुतः यह प्राणदण्ड आप उन्हींको दीजिये, जिन्होंने इस वनवासी को भेजा है ॥ २० ॥ सज्जन हो या असज्जन, यह दूसरों के द्वारा भेजा गया है । दूसरों का विचार प्रकट करने वाला पराधीन दूत वध के योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस दूत के मारे जाने पर नभचर पक्षी के समान गति वाला दूसरा अन्य कोई व्यक्ति नहीं दिखाई देता है जो समुद्र के इस पार पुनः आ सके ॥ २२ ॥ हे शत्रुनगर-विजयी ! इसलिये इस दूत के वध का प्रयत्न आपको नहीं करना चाहिये । आप इन्द्र के सहित देवों को दण्ड देने का प्रयत्न करें ॥ २३ ॥ इस दूत के मारे जाने पर मैं किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा नहीं देखता जो युद्ध प्रेमी तथा दुर्विनीत इन दोनों राजकुमार राम, लक्ष्मण को युद्ध के लिये आपके समक्ष प्रेरित करे ॥ २४ ॥ पराक्रमी तथा उत्साही, मानी, देव दैत्यों से भी दुर्जय आपके मन को तथा राक्षसों को भी प्रिय लगने वाला

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां युद्धायतिर्नाशयितुं न युक्ता ॥२५॥
हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः कोपप्रशस्ताः सुभृताश्च योधाः ॥२६॥
तदेकदेशेन बलस्य तावत्केचित्तवादेशकृतोऽभियान्तु ।
तौ राजपुत्रौ विनिगृह्य मूढौ परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥२७॥
निशाचराणामधिपोऽनुजस्य विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम् ।
जग्राह बुद्धया सुरलोकशत्रुर्महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥२८॥
क्रोधं च जातं हृदये निरुध्य विभीषणोक्तं वचनं सुपूज्य ।
उवाच रक्षोऽधिपतिर्महात्मा विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दूतवधनिवारणं नाम द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

पावकशैत्यम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः । देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

जो युद्ध, उस युद्ध को प्रेरित करने वाले इस दूत का वध नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ हितैषी, वीर, सावधान रहने वाले, कुलीन, गुणवान्, मनस्वी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, समयोचित क्रोध करने वाले, सब प्रकार से रक्षित सैनिक ॥ २६ ॥ सेना के कुछ भाग के साथ आपकी आज्ञा से वहाँ जायँ । शत्रुओं पर आपका आतङ्क उत्पन्न करने के लिये मूर्ख उन दोनों राजकुमारों को बन्दी बना लेवें ॥ २७ ॥ देवसमाज के शत्रु, निशाचरों के स्वामी, राक्षसदल के मुख्य नेता, महाबली रावण ने अपने अनुज विभीषण की इन बातों को अन्तःकरण से स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥ हृदय में उत्पन्न हुए क्रोध को रोककर तथा विभीषण के वाक्यों का आदर करते हुए राक्षसों के स्वामी महात्मा रावण ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से यह कहा ॥ २९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'दूत के वध का निषेध' विषयक बावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ सर्ग

अग्नि की शीतलता

देशकाल के लिये हितकारी महात्मा विभीषण की इन बातों को सुनकर रावण ने यह उत्तर दिया ॥ १ ॥, आपने ठीक कहा है कि दूत प्रायः अवध्य होते हैं, किन्तु वध दण्ड के अतिरिक्त

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता । अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ २ ॥
कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् । तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ३ ॥
ततः पश्यन्त्विमं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् । समित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ४ ॥
आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् । लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः । वेष्टयन्ति स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासकैः पटैः ॥ ६ ॥
संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः । शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनः ॥ ७ ॥
तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रावपातयन् । लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानपातयत् ॥ ८ ॥
स तु रोषपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः । लाङ्गूलं संप्रदीप्तं तद्दृष्ट्वा तस्य हनूमतः ॥ ९ ॥
सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीता निशाचराः । स भूयः संगतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिसत्तमः ॥१०॥
निबद्धः कृतवान् वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् । कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः ॥११॥
छित्त्वा पाशान् समुत्पत्य हन्यामहमिमान् पुनः ॥

इसको कोई न कोई दण्ड अवश्य देना चाहिये ॥ २ ॥ वनवासिसम्राट् के इस वनवासी दूत को अपना लाङ्गूल * (राजध्वज, पताका) ही सब से इष्ट तथा उत्तम भूषण होता है, इसका वही जला दो । जले हुए ध्वज को लेकर यहाँ से जाय ॥ ३ ॥ इसके मित्र, ज्ञाति, भाई बन्धु तथा इसके प्रेमी सज्जन रूपसौन्दर्य से हीन दीन इस वनवासी को देखें ॥ ४ ॥ राक्षसराज रावण ने यह आज्ञा दी कि जलते हुए ध्वजदण्ड के साथ राक्षस लोग इसको लेकर सम्पूर्ण नगर तथा चौराहों पर घुमावें ॥ ५ ॥ रावण की आज्ञा पाकर क्रोधकर्कश वे राक्षस फटे, पुराने वस्त्र को उसके ध्वजदण्ड में लपेटने लगे ॥ ६ ॥ ध्वजदण्ड में वस्त्रादि के लपेटे जाने पर हनुमान् उसी प्रकार उत्साहित हुए जिस प्रकार शुष्क ईन्धन को पाकर दावानल प्रचण्ड होता है ॥ ७ ॥ तेल से सिञ्चित कर उन्होंने उसमें अग्नि लगा दी । जलते हुए ध्वजदण्ड से हनुमान् ने राक्षसों को मारना आरम्भ कर दिया ॥ ८ ॥ इस प्रकार हनुमान् के ध्वजदण्ड को जलते हुए देखकर, क्रोधाविष्ट, बालसूर्य के समान लाल मुख वाले ॥ ९ ॥ वे राक्षस-स्त्री, बालक, वृद्धों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हो गए । पश्चात् उन क्रूर राक्षसों ने संघटित होकर वनवासी वीर हनुमान् को पुनः ॥ १० ॥ बन्दी बना लिया । बंधे हुए हनुमान् उस समय विचार करने लगे । मेरे बांधे जाने पर भी वे राक्षस मुझको पराजित करने में असमर्थ हैं । मैं इस बन्धन को तोड़कर पुनः इन सभी को मार सकता हूँ ॥ ११ ॥ यदि उस स्वामी के कल्याण के लिये उनकी आज्ञा से

* लाङ्गूल शब्द से प्रायः टीकाकारों ने पूँछ अर्थ लिया है । अब यह विचार करना है कि हनुमान् सुग्रीव आदि किष्किन्धानिवासी मनुष्य थे या वानर । यदि वस्तुतः वे मनुष्य थे तो इनकी पूंछ का प्रश्न उठता ही नहीं । त्रेता और द्वापर के सन्धिकाल में राम-रावण का युद्ध हुआ था । उस काल में पूंछ वाले मनुष्य होते ही नहीं थे । यदि इनको वानर कहा जाय तो इसकी पुष्टि इनके क्रिया कलापों तथा व्यवहारों से नहीं होती । अपितु इसके विरुद्ध इनके मनुष्य होने का वर्णन अनेक स्थल पर इसी रामायण में आया है । मनुष्य ही नहीं, अपितु ये षडङ्ग वेदविशारद माने गए हैं । जिस समय ऋष्यमूक पर्वत पर राम, लक्ष्मण तथा हनुमान् का परस्पर मेल हुआ उस समय हनुमान् के वार्तालाप से प्रसन्न होकर हनुमान् का परिचय लक्ष्मण को रामचन्द्र स्वयं देते हैं—नानृग्वेदविनीतस्य० (वाल्मीकि-रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, तृतीय सर्ग श्लोक २८, २९) । इससे हनुमान् के मनुष्य तथा वेद के प्रकाण्ड पण्डित होने का परिचय रामचन्द्र के मुख से हो रहा है । ऐसी अवस्था में लाङ्गूल का अर्थ पूंछ न होकर ध्वज होना चाहिये । क्योंकि दूत दूसरे राष्ट्र में जाने पर अपने देश की पताका ले जाते हैं ।

यदि भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् । बध्नन्त्येते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ॥१२॥
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि । रामस्य किं तु प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ॥१३॥
लङ्का चारयितव्या वै पुनरेव भवेदिति । रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ॥१४॥
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये । कामं बन्धैश्च मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ॥१५॥
पीडां कुर्वन्तु रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः । ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ॥१६॥
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् । शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ॥१७॥
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् । अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिंदमः ॥१८॥
हनुमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् । अथापश्यद्विमानानि विचित्राणि महाकपिः ॥१९॥
संवृतान् भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् । वीथीश्च गृहसंबाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ॥२०॥
तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव च गृहान्तरान् । गृहांश्च मेघसंकाशान् ददर्श पवनात्मजः ॥ २१॥
चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥

घोषयन्ति कपिं सर्वे चार इत्येव राक्षसाः । स्त्रीबालवृद्धा निर्जग्मुस्तत्र तत्र कुतूहलात् ॥२२॥
तं प्रदीपितलाङ्गूलं हनुमन्तं दिदृक्षवः । दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ॥२३॥
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् । यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ॥२४॥
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते । श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥२५॥

ये दुरात्मा राक्षस मुझको बांधते हैं, तो बांधें । किन्तु मैंने जो इनकी हानि की है उसकी प्रतिक्रिया ये लोग नहीं कर सके ॥१२॥ सङ्ग्राम में सम्पूर्ण राक्षसों के मारने के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ । किन्तु रामचन्द्र के प्रीत्यर्थ मैं इस प्रकार का अपमान सह रहा हूँ ॥ १३ ॥ लङ्का में यदि ये मुझे घुमा रहे हैं तो यह मेरा दुबारा लङ्का का निरीक्षण हो जायगा। दुर्गरक्षाविधान के कारण रात को मैं लङ्का को अच्छी तरह नहीं देख सका ॥ १४ ॥ रात्रि के अवसान में मुझे लङ्का को पूर्णरूप से अवश्य देखना था (इनके प्रयत्न से मुझे पुनः लङ्का के देखने का अवसर मिल जायगा) । बन्धन के द्वारा तथा ध्वजदण्ड के जलाने के द्वारा ॥ १५ ॥ ये राक्षस लोग मुझे पीड़ा दे रहे हैं, किन्तु मुझे कुछ भी क्लेश नहीं है । छिपे हुए आकार प्रकार वाले, महाबली वनवासी हनुमान् को ॥ १६ ॥ पकड़कर प्रसन्न राक्षस लोग वहां से चल पड़े ! शङ्ख, भेरी आदि के द्वारा उनके कृत्यों की घोषणा करते हुए ॥ १७ ॥ क्रूरकर्मा राक्षसों के द्वारा हनुमान् उस नगरी में घुमाए जाने लगे । शत्रुनाशी हनुमान् भी सुखपूर्वक उनके साथ घूमने लगे ॥ १८ ॥ राक्षसों की लङ्कापुरी में घुमाए जाते हुए हनुमान् ने नाना प्रकार के विचित्र विमानों को देखा ॥ १९ ॥ सुरक्षित भूमि मार्गों को, पृथक् पृथक् चौराहों को, राजपथों (सड़क) को, सघन बने हुए गृहों को तथा गृह से बाहर आंगनों को ॥ २० ॥ छोटी बड़ी गलियों को तथा गुप्त निवासों को, मेघ के समान समुन्नत गृहों को घूमते हुए पवनपुत्र हनुमान् ने देखा। सम्पूर्ण राजमार्गों पर, चौक के चौराहे पर ॥२१॥ राक्षस लोग यह गुप्तचर है, इस बात की घोषणा करने लगे । प्रदीप्त लाङ्गूल (ध्वज दण्ड) को देखने के इच्छुक स्त्री, बालक, वृद्ध कुतूहलवश वहाँ आए। हनुमान् के लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) में इस प्रकार अग्नि प्रदीप्त होने पर ॥ २२,२३ ॥ विकराल मुख वाली राक्षसियों ने देवी जानकी के समीप इस अप्रिय संवाद को सुनाया । हे सीते ! लाल मुख वाला वह वनवासी जिसने तुम्हारे साथ वार्तालाप किया था ॥ २४ ॥ वह लाङ्गूल में आग लगाकर घुमाया जा रहा है । अपने हरण के समान दुःखदायी इस क्रूर समाचार को सुनकर ॥ २५ ॥ शोकसंतप्ता वैदेही ने

वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत् । मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ॥२६॥
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् । यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ॥२७॥
यदि वास्त्येकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः । यदि कश्चिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ॥२८॥
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः । यदि मां वृत्तसंपन्नां तत्समागमलालसाम् ॥२९॥
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः । यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसंगरः ॥३०॥
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः । ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ॥३१॥
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शिवं कपेः । हनुमज्जनकश्चापि पुच्छानलयुतोऽनिलः ॥३२॥
ववौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः ॥

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः । प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ॥३३॥
दृश्यते च महाज्वालो न करोति च मे रुजम् । शिशिरस्येव संपातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ॥३४॥
अथवा तदिदं व्यक्तं यद्दृष्टं प्लवता मया । रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ॥३५॥
यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः । रामार्थं संभ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ॥३६॥
सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च । पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ॥३७॥
भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः । कथमस्मद्विधस्येह बन्धनं राक्षसाधमैः ॥३८॥

अग्नि का ध्यान किया । उस समय जानकी हनुमान् की मङ्गलमयी कामना से युक्त थीं ॥ २६ ॥ विशालाक्षी जानकी ने अग्नि के विषय में इस प्रकार कामना की—यदि मैंने पति की सेवा की है और तपश्चर्या की है ॥ २७ ॥ यदि मैं ही राम की एक पत्नी रही हूं तो यह अग्नि हनुमान् के लिये शीतल हो जाए। यदि बुद्धिमान् रामचन्द्र की मुझ पर दया या कृपा है ॥ २८ ॥ और यदि मेरा कुछ भी भाग्य शेष बचा है तो उससे ही हे अग्निदेव ! तुम हनुमान् के लिये शीतल हो जाओ । यदि सदाचार संपन्न, अपने से मिलने की लालसा वाली ॥ २९ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र मुझे समझते हैं तो तुम हनुमान् के लिये शीतल हो जाओ। यदि सत्यप्रतिज्ञ आर्य सुग्रीव मुझे ॥ ३० ॥ इस दुःखरूपी समुद्र से पार कर देंगे तो हे अग्निदेव ! तुम हनुमान् के लिये शीतल हो जाओ। प्रज्वलित शिखा वाली अग्नि प्रदीप्त शिखा के द्वारा ॥ ३१ ॥ मृगनयनी सीता को शुभ सूचना देते हुए हनुमान् के लिये मङ्गलमय हो गई। हनुमान् के जनक जो लाङ्गूलगत अग्नि के साथ वायुरूप में थे वे सीता की शुभकामना से हिम के समान शीतल होकर बहने लगे ॥ ३२ ॥ लाङ्गूल (ध्वजा) के जलाए जाने पर हनुमान् यह चिन्ता करने लगे कि प्रज्वलित यह अग्नि मुझे सर्वतः क्यों नहीं जलाती ॥ ३३ ॥ अग्नि की महाज्वाला दिखाई देती है, किन्तु मुझको उससे कोई कष्ट नहीं हो रहा है । शिशिर ऋतु के समान मेरे ऊपर इसका प्रभाव पड़ रहा है ॥ ३४ ॥ अथवा समुद्र तैरने के समय मैंने यह स्पष्ट देखा कि राम के प्रभाव से समुद्र में पर्वत का ऊपर आना ॥ ३५ ॥ यदि समुद्रतट रक्षक तथा बुद्धिमान् मैनाक पर्वत वासी रामचन्द्र के लिये इस प्रकार प्रयत्न कर सकते हैं तो अग्नि के अधिष्ठातृदेव (सर्वव्यापक ईश्वर) रामचन्द्र की सहायता क्यों नहीं कर सकते ॥ ३६ ॥ सीता की कृपा से, रामचन्द्र के तेज से तथा मेरे पूज्य पिता के आशीर्वाद से यह आग मुझे दग्ध नहीं कर रही है ॥ ३७ ॥ महाबली हनुमान् थोड़ी देर तक पुनः यह चिन्ता करने लगे। मेरे जैसा पराक्रमी व्यक्ति इन राक्षसों के बन्धन में कैसे गया ॥ ३८ ॥ यदि मेरे अन्दर पराक्रम है तो इसका प्रतिकार करना चाहिये। ऐसा विचार कर वेगवान्

प्रतिक्रियाऽस्य युक्ता स्यात् सति मह्यं पराक्रमे । ततश्छित्वा च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः ॥३९॥
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः । पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥४०॥
विभक्तरक्षःसंबाधमाससादानिलात्मजः । स भूत्वा शैलसंकाशः क्षणेन पुनरात्मवान् ॥४१॥
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् । विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान् पुनः पर्वतसंनिभः ॥४२॥
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् । स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ॥४३॥
रक्षिणस्तान् पुनः सर्वान् सूदयामास मारुतिः ॥

स तान्निहत्वा रणचण्डविक्रमः समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली प्रकाशतादित्य इवार्चिमाली ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पावकशैत्यं नाम त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः

लङ्कादाहः

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः । वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥

वनवासी हनुमान् ने उस बन्धन को तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ अत्यन्त वेग से उछलते हुए उन्होंने भीषण गर्जन किया । पश्चात् पर्वत के समान विशाल उन्नत नगर के प्रधान द्वार पर आए ॥ ४० ॥ उस समय राक्षसों का समुदाय वहाँ से हट गया था । पवनपुत्र हनुमान् वहाँ पर पहुँचे । उस समय हनुमान् ने विशालकाय होते हुए भी अपने आत्मसंयम से ॥ ४१ ॥ अपने आकार को लघु बनाकर बन्धनों को दूर कर दिया । बन्धनों से मुक्त हो जाने पर हनुमान् पुनः विशालकाय हो गए ॥ ४२ ॥ इधर उधर देखने पर तोरण के समीप रखे हुए लोहे के परिघास्त्र को देखा । विशाल भुजा वाले हनुमान् ने काल के समान लोहमय उस परिघास्त्र को लेकर द्वाररक्षक राक्षसों को मार डाला ॥ ४३ ॥ उन राक्षसों को मार कर प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान् लङ्का का पुनः निरीक्षण करने लगे । ध्वजदण्ड के साथ ध्वज जलने पर एक ज्वाला माला सी बन गई जिससे हनुमान् अंशुमाली सूर्य के समान सुशोभित होने लगे ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'अग्नि की शीतलता'
विषयक तिरपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ सर्ग

लङ्का का दाह

लङ्का नगरी को देखते हुए सफल मनोरथ हनुमान् जिनका उत्साह उस समय वृद्धिङ्गत हो रहा था, अवशिष्ट कार्य के विषय में विचार करने लगे ॥ १ ॥ अब इस लङ्का में मेरा कौन सा काम अवशिष्ट रह

किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह सांप्रतम् । यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ २ ॥
वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः । बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥
दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम् । अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन् मम स्यात्सफलः श्रमः ॥ ४ ॥
यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः । अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥ ५ ॥
ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः । भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥ ६ ॥
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः । वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥
अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् । अग्निं तत्र स निक्षिप्य श्वसनेन समो बली ॥ ८ ॥
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् । मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥
वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः । शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः ॥१०॥
तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः । जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ॥११॥
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च । ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥१२॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः । विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥१३॥
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि । कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि ॥१४॥
यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च । नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य दुरात्मनः ॥१५॥
वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति । क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुंगवः ॥१६॥
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः । गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह स महाकपिः ॥१७॥

गया है, जिसके करने से राक्षसों का क्लेश और बढ़े ॥ २ ॥ प्रमदावन का मैंने विध्वंस कर दिया । चुने हुए पराक्रमी रक्षसों को मैंने मार दिया। सेना के एक विभाग को भी मैंने नष्ट कर दिया। अब केवल दुर्ग (गढ़) रह गया है ॥ ३ ॥ दुर्ग के नष्ट कर देने पर मेरा परिश्रम सार्थक हो जायगा । अब थोड़े ही परिश्रम से मेरा प्रयत्न सिद्ध होने वाला है ॥ ४ ॥ इस मेरे ध्वजदण्ड में जो आग प्रज्वलित हो रही है । इससे इस नगरी के उत्तम गृहों को दग्ध कर इसको सन्तुष्ट करना उचित होगा ॥ ५ ॥ विद्युत्परिपूर्ण मेघ के समान जलते हुए लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) से महावीर हनुमान् लङ्का के उत्तम भवनों पर विचरण करने लगे ॥ ६ ॥ राक्षसों के एक मकान से दूसरे मकान को तथा वाटिकाओं को जहाँ तहाँ देखते हुए वनवासी वीर हनुमान् निर्भय होकर महलों पर घूमने लगे ॥ ७ ॥ वेगवान् हनुमान् ने सेनापति प्रहस्त के गृह में प्रवेशकर उसको दग्ध कर दिया ॥ ८ ॥ पश्चात् पराक्रमी हनुमान् ने महापार्श्व के गृह में प्रवेश कर प्रलय काल के समान आग लगा दी ॥ ९ ॥ महाबली हनुमान् ने वज्रदंष्ट्र महातेजस्वी शुक तथा बुद्धिमान् सेनापति सारण के गृह को दग्ध किया ॥१०॥ तत्पश्चात् वनवासी सेनापति हनुमान् ने इन्द्रजित् के घर को जलाया। इसी प्रकार जम्बुमाली, सुमाली के गृह को भी दग्ध किया ॥ ११ ॥ रश्मिकेतु, सुर्यशत्रु के भवनों को जलाया। ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र तथा राक्षस रोमश के भवन को भी जलाया ॥ १२ ॥ युद्धोन्मत्त, मत्त, राक्षस ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, घोर तथा हस्तिमुख के भवनों को क्रम से जलाया ॥ १३ ॥ कराल, विशाल, शोणिताक्ष, मकराक्ष तथा कुम्भकर्ण आदि के भवनों को जलाया ॥ १४ ॥ नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु तथा ब्रह्मशत्रु के भवनों को जलाया ॥ १५ ॥ महातेजस्वी वनवासी वीर हनुमान् ने एक विभीषण के घर को छोड़कर क्रमशः घूम घूम कर राक्षसों के भवनों को जलाया ॥ १६ ॥ महायशस्वी बली हनुमान् ने उन उन विशाल धनिकों के भवनों में उनकी सम्पूर्ण मूल्यवान् मणि-मुक्तादि संपत्ति को जला दिया ॥१७॥

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान् । आससादाथ लक्ष्मीवान् रावणस्य निवेशनम् ॥१८॥
ततस्तस्मिन् गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते । मेरुमन्दरसंकाशे सर्वमङ्गलशोभिते ॥१९॥
प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम् । ननाद हनुमान् वीरो युगान्ते जलदो यथा ॥२०॥
श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः । कालाग्निरिव संदीप्तः प्रावर्धत हुताशनः ॥२१॥
प्रवृद्धमग्निं पवनस्तेषु वेश्मस्वचारयत् । तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ॥२२॥
भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च । तानि भग्नविमानानि निपेतुर्धरणीतले ॥२३॥
भवनानीव सिद्धानामम्बरात्पुण्यसंक्षये । संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् ॥२४॥
स्वगृहस्य परित्राणे भग्नोत्साहोर्जितश्रियाम् । नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति ॥२५॥
क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः स्तनंधयधराः स्त्रियः । काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्द्धजाः ॥२६॥
पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामिन्य इवाम्बरात् । वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहितान् ॥२७॥
विचित्रान् भवनाद्धातून् स्यन्दमानान् ददर्श सः । नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा ॥२८॥
हनूमान् राक्षसेन्द्राणां वधे किंचिन्न तृप्यति । न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुंधरा ॥२९॥
क्वचित्किंशुकसंकाशाः क्वचिच्छाल्मलिसंनिभाः । क्वचित्कुङ्कुमसंकाशाः शिखा वह्नेश्चकाशिरे ॥३०॥
हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना । लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥३१॥

पराक्रमी हनुमान् सब के मकानों पर आक्रमण करते हुए राक्षसराज रावण के भवन पर आए ॥ १८ ॥ लङ्कापति रावण के उस मुख्य महल में जो नाना प्रकार के रत्नों से अलङ्कृत हो रहा था, जो अनेकों प्रकार के मङ्गलमय द्रव्यों से सुशोभित हो रहा था तथा जो मेरु, मन्दर पर्वत के समान विशाल था ॥ १९ ॥ ऐसे रावण के महल को जलती हुई लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) की आग से जलाकर महाबली हनुमान् प्रलयकाल के मेघ के समान गर्जन करने लगे ॥ २० ॥ अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि अतिवेगवान् वायु के संयोग से प्रलयकाल की अग्नि के समान सब ओर फैल गई ॥ २१ ॥ जलती हुई अग्नि की ज्वाला को वायु ने और फैला दिया। स्वर्णजालियों से युक्त मुक्ता मणि वाले ॥ २२ ॥ तथा महान् रत्नों से जटित महल टूटने लगे। उन अग्निदग्ध टूटे फूटे भवनों की छतें टूट टूट कर भूमि पर गिरने लगीं ॥ २३ ॥ पुण्य की समाप्ति पर सिद्धों के भवनों की तरह वे भवन क्रमशः गिरने लगे। [ऐसी भीषण स्थिति में] राक्षसों के इधर उधर भागने से महान् शब्द होने लगा ॥ २४ ॥ अपने अपने गृहों की रक्षा में जो व्याकुल हो रहे हैं, जिनकी शोभा तथा उत्साह दोनों भङ्ग हो गए हैं। [वे लोग व्याकुल होकर कह रहे थे] अहो ! निश्चय ही वनवासी के रूप में यह अग्नि ही स्वयं आया है ॥ २५ ॥ इस प्रकार रुदन करती हुई, बच्चों को गोद में लिये हुए अग्निज्वाला से वेष्टित, जिन के केश खुले हुए हैं ऐसी स्त्रियाँ अटारियों से सहसा नीचे गिर पड़ीं ॥ २६ ॥ अट्टालिकाओं से गिरती हुई वे स्त्रियाँ मेघ से गिरती हुई विद्युत् के समान प्रतीत हो रही थीं। स्फटिक, विद्रुम, वैदूर्यमणि, मोती, चाँदी आदि ॥ २७ ॥ धातुओं को विचित्र भवनों से पिघल कर बहते हुए हनुमान् ने देखा। शुष्क काष्ठ तथा तृणों से जैसे अग्नि तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार ॥ २८ ॥ राक्षसों के वध से हनुमान् की भी तृप्ति नहीं हो रही थी। इसी प्रकार हनुमान् के द्वारा मारे जाने पर राक्षसों से पृथ्वी की तृप्ति नहीं होती थी ॥ २९ ॥ कहीं पलाश के फूल के समान, कहीं सेमर के फूल के समान और कहीं कुङ्कुम (रोली) के समान अग्नि की प्रज्वलित शिखा प्रकाशित हो रही थी ॥ ३० ॥ वेगवान् वनवासी महात्मा हनुमान् के द्वारा सम्पूर्ण लङ्कानगरी इस प्रकार जला दी गई जिस प्रकार महादेव के द्वारा त्रिपुर-दाह किया गया था ॥ ३१ ॥ वेगवान् हनुमान् के द्वारा लङ्कानगर के पर्वत शिखरों पर लगाई हुई भीषण

ततस्तु लङ्कापुरपर्वताग्रे समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो हनूमता वेगवता विसृष्टः ॥३२॥
युगान्तकालानलतुल्यवेगः समारुतोऽग्निर्ववृधे दिविस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ॥३३॥
आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररुढैर्भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ॥३४॥
तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः ।
निर्वाणधूमाकुलराजयश्च नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ॥३५॥
वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा साक्षाद्यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रुद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥३६॥
किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य सर्वस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानररूपधारी रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥३७॥
किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य रक्षोविनाशाय परं सुतेजः ।
अनन्तमव्यक्तमचिन्त्यमेकं स्वमायया सांप्रतमागतं वा ॥३८॥
इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे ।
सप्राणिसङ्घां सगृहां सवृक्षां दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥३९॥
ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा सराक्षसा साश्वरथा सनागा ।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ॥४०॥

आग अपनी ज्वाला को फैलाकर सबको दग्ध करने लगी ॥ ३२ ॥ प्रलयकाल की अग्नि के समान वह आग वायु के वेग से बढ़ कर अकाश को स्पर्श करने लगी। राक्षसों के भवनों में लगी हुई वह आग राक्षसों के शरीररूपी घृत से युक्त होकर घूमरहित हो रही थी ॥ ३३ ॥ समस्त लङ्का में फैली हुई वह आग अनेकों सूर्य के तेज के समान प्रतीत हो रही थी। वज्र के समान अनेकों प्रकार के जहाँ शब्द हो रहे थे इस प्रकार वह आग प्रलयकाल में ब्रह्माण्ड को तोड़ती हुई अग्निज्वाला के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ३४ ॥ आकाश को स्पर्श करने वाली बढ़ी हुई वह आग रूखी ज्वाला वाली, पलाशपुष्प के समान शिखा वाली, नील कमल के समान वर्ण वाली, धूमरहित मेघ के समान प्रतीत हो रही थी ॥ ३५ ॥ यह वज्रधारी महेन्द्र है क्या ? यह साक्षात् यमराज है या वायुदेव है क्या ? यह रुद्र या अग्नि है क्या ? सूर्य, कुबेर तथा चन्द्र है क्या ? यह साधारण वनवासी तो नहीं प्रतीत होता। वास्तव में यह साक्षात् काल प्रतीत हो रहा है ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण विश्व के पितामह, चतुर्वेद वेत्ता ब्रह्मा का क्रोध ही राक्षसों के संहार करने के लिये वनवासी का रूप धारण करके यहाँ आया है क्या ? ॥ ३७ ॥ क्या विष्णु का वह महान् तेज जो अचिन्त्य, अव्यक्त तथा एक होते हुए भी अपनी माया से अनन्त हो जाता है वही तेज वनवासी के रूप में राक्षसों के विनाश के लिये इस समय यहाँ आया है ॥३८॥ इस प्रकार प्राणियों के सहित वृक्ष तथा गृहों से युक्त सहसा उस लङ्कापुरी को दग्ध होते हुए देखकर प्रधान राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे आपस में इस प्रकार की बातें करने लगे ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राक्षसों, हाथी, घोड़े, रथों, पक्षी, पशु, वृक्षों के समेत वह संम्पूर्ण लङ्कानगरी दग्ध हो गई और उसके दीन अधिवासी आर्तनाद करते हुए रोने लगे ॥ ४० ॥ हा

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितं भोगयुतं सुपुण्यम् ।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः ॥४१॥
हुताशनज्वालसमावृता सा हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।
हनूमतः क्रोधबलाभिभूता बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥४२॥
स संभ्रमत्रस्तविषण्णराक्षसां समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्किताम् ।
ददर्श लङ्कां हनुमान् महामनाः स्वयंभुकोपोपहतामिवावनिम् ॥४३॥
भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे ।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं तस्थौ हनूमान् पवनात्मजः कपिः ॥४४॥
त्रिकूटशृङ्गाग्रतले विचित्रे प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली व्यराजतादित्य इवांशुमाली ॥४५॥
स राक्षसांस्तान् सुबहूंश्च हत्वा वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत् ।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा ॥४६॥
ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं महाबलं मारुततुल्यवेगम् ।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ॥४७॥
भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे । दग्ध्वा लङ्कापुरीं रम्यां रराज स महाकपिः ॥४८॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥४९॥

तात ! हा पुत्र ! हा कान्त मित्र ! हा परमप्रिय जीवितेश ! आज वे हमारे सभी पुण्य समाप्त हो गए। इस प्रकार डरे हुए राक्षसों ने अनेकों प्रकार के शब्द किये ॥ ४१ ॥ अग्नि की ज्वाला से घिरे हुए अनेक सैनिकों तथा योद्धाओं के मारे जाने पर हनुमान् के क्रोध तथा बल के द्वारा सर्वतः परिध्वस्त वह लङ्का नगरी शापग्रस्त के समान प्रतीत होने लगी ॥ ४२ ॥ उद्विग्न, त्रस्त तथा दुःखी राक्षसों से युक्त प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला माला से वेष्टित लङ्कानगरी को महामना हनुमान् ने प्रलयकाल के समय स्वयंभू भगवान् के रोष से उपहत भू मण्डल के समान देखा ॥ ४३ ॥ उत्तम वृक्षपङ्क्ति से युक्त वन को नष्ट करके सङ्ग्राम में राक्षसों को मारकर गृहरत्नरूपी मालाओं से युक्त लङ्कापुरी को जलाकर पवनपुत्र वनवासी हनुमान् विश्राम के लिये बैठ गए ॥ ४४ ॥ विचित्र, त्रिकूट पर्वत शिखरतल पर बैठे हुए वनवासी राजसिंह हनुमान् प्रज्वलित लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) ज्वालामाला से युक्त अंशुमाली सूर्य की तरह प्रतीत होने लगे ॥ ४५ ॥ बहुत से राक्षसों को मारकर अनेकों वृक्षों से युक्त वन को नष्ट कर राक्षसों के भवनों को जलाकर महात्मा हनुमान् मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र का स्मरण करने लगे ॥ ४६ ॥ तत्पश्चात् वायु के समान वेग वाले, वनवासी वीरों में मुख्य, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, महाबली हनुमान् की सम्पूर्ण देवगण प्रशंसा करने लगे ॥ ४७ ॥ महातेजस्वी, वनवासी वीर हनुमान् वन को नष्ट करके सङ्ग्राम में राक्षसों को मारकर, भयङ्कर, लङ्कापुरी को जलाकर अत्यन्त सुशोभित होने लगे ॥ ४८ ॥ गन्धर्व के सहित देवमण्डल, सिद्ध तथा ऋषिगण इस प्रकार सम्पूर्ण लङ्का को जली हुई देखकर अत्यन्त विस्मित हो गए ॥ ४९ ॥ वनवासिश्रेष्ठ महाबली उस हनुमान् को

तं दृष्ट्वा वानरश्रेष्ठं हनुमन्तं महाकपिम् । कालाग्निरिति संचिन्त्य सर्वभूतानि तत्रसुः ॥५०॥
देवाश्च सर्वे मुनिपुंगवाश्च गन्धर्वविद्याधरकिंनराश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे लङ्कादाहो नाम चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

हनूमद्विभ्रमः

लङ्कां समस्तां संदीप्य लाङ्गूलाग्निं महाबलः । निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिसत्तमः ॥ १ ॥
संदीप्यमानां विध्वस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् । अवेक्ष्य हनुमाल्लँङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥
तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत । लङ्कां प्रदहता कर्म किंस्वित्कृतमिदं मया ॥ ३ ॥
धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठा ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् । निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ४ ॥
क्रुद्धः पाप न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि । क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ५ ॥
वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् । नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ६ ॥

देखकर तथा प्रलयाग्नि के समान उनको समझते हुए सम्पूर्ण प्राणी भयत्रस्त हो गए ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण देव श्रेष्ठ मुनियों का वर्ग, गंधर्व, विद्याधर, नाग ये सम्पूर्ण मानव जाति के लोग महावीर हनुमान् के इस काम से अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'लङ्का का दाह' विषयक चौवनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवां सर्ग

हनुमान् की आशङ्का

वनवासियों में श्रेष्ठ महाबली हनुमान् ने संपूर्ण लङ्का को क्षुब्ध कर लाङ्गूल (ध्वजयष्टि) की अग्नि को समुद्र में बुझाया ॥ १ ॥ सब तरह से दग्ध तथा ध्वस्त लङ्कापुरी के भयभीत राक्षसगण को देखकर वनवासी वीर हनुमान् अत्यन्त चिन्तित हो गए ॥ २ ॥ उनको एक महान् भय उत्पन्न हो गया । वे मन ही मन अपनी निन्दा करने लगे । लङ्कानगरी को भस्म करते हुए मैंने यह क्या अनर्थ कर डाला ॥ ३ ॥ वे महात्मा लोग धन्य हैं जो अपने उठे हुए क्रोध को बुद्धि के द्वारा इस प्रकार शान्त कर देते हैं, जिस प्रकार जल के द्वारा प्रदीप्त अग्नि शान्त कर दी जाती है ॥ ४ ॥ क्रोधी मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर सकता ? क्रोधी मनुष्य अपने गुरुजनों का भी वध कर डालता है । क्रोधी मनुष्य अपने कठोर वचनों से सज्जनों का भी तिरस्कार कर सकता हैं ॥ ५ ॥ क्या कहना चाहिये क्या नहीं कहना चाहिये, क्रोधी मनुष्य यह कभी नहीं जान सकता । क्रुद्ध मनुष्य के लिये कुछ भी अवक्तव्य या अकर्तव्य शेष नहीं रह जाता ॥ ६ ॥ सर्प की जीर्ण त्वचा

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति । यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ७ ॥
धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् । अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥ ८ ॥
यदि दग्धा त्वियं लङ्का नूनमार्यापि जानकी । दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥ ९ ॥
यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् । मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥१०॥
ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः । तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥११॥
विनष्टा जानकी नूनं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते । लङ्कायां कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥१२॥
यदि तद्विहतं कार्यं मम प्रज्ञाविपर्ययात् । इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ॥१३॥
किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्वडवामुखे । शरीरमाहो सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् ॥१४॥
कथं हि जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः । तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥१५॥
मया खलु तदेवेदं रोषदोषात्प्रदर्शितम् । प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् ॥१६॥

(केंचुल) के समान अपने उठे हुए क्रोध को जो क्षमा के द्वारा दूर कर देता है वस्तुतः वही पुरुष कहलाता है ॥ ७ ॥ बिना विचारे सीता को अग्नि द्वारा जला देने वाले, स्वामिघातक, पापकारी, निर्लज्ज मुझ दुर्बुद्धि को धिक्कार है ॥ ८ ॥ यदि मैंने समस्त लङ्कानगरी को जला दिया तो निश्चय ही जानकी भी जल गई होगी। मैंने अपनी मूर्खता से स्वामी के समस्त कार्य को नष्ट कर दिया ॥ ९ ॥ जिसके लिये मेरा यह सब कुछ प्रयत्न था उसको मूलतः मैंने नष्ट कर दिया। क्योंकि लङ्कानगरी को भस्म करते समय जानकी की रक्षा नहीं की ॥ १० ॥ यह कार्य करके मैंने अपनी क्षुद्रता का परिचय दिया है, इसमें कोई संशय नहीं। क्रोधावेश में आकर मैंने उस महात्मा रामचन्द्र के कार्य को मूलतः नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ जानकी नष्ट हो गई है, अब यह बात स्पष्ट है। लङ्का का कोई स्थान ऐसा नहीं दीख पड़ता जो जला न हो। क्योंकि मैंने सम्पूर्ण लङ्का को जला डाला है ॥ १२ ॥ यदि विपरीत बुद्धि के कारण मैंने यह काम कर दिया (अर्थात् सीता को जला दिया है) तो मुझे भी यहीं प्राण त्याग कर देना उचित प्रतीत होता है ॥ १३ ॥ क्या मैं अग्नि में कूद जाऊँ ? अथवा वाडवाग्नि (संतप्त समुद्र की जलधारा) में कूद पड़ूँ ? अथवा समुद्र में रहने वाले नक्रादि जन्तुओं का मैं आहार बन जाऊँ ? ॥ १४ ॥ स्वामी के सम्पूर्ण कार्य को मूलतः नष्ट करने वाला मैं जीते जी वनवासिसम्राट् सुग्रीव के समक्ष कैसे जाऊँगा ? तथा नरकेसरी राम, लक्ष्मण के समीप किस प्रकार जा सकता हूँ ? ॥ १५ ॥ क्रोधजनित दोष के कारण मैंने उसी बात की आज पुष्टि कर दी है कि वनवासियों में वनवासीपन (जङ्गलीपन) या चित्त की चञ्चलता होती है जो त्रिलोकी* में प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥ अव्यवस्थित

* त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी । लोक शब्द से भुवन, जन (व्यक्ति) लिया जाता है। अमरकोष में—'लोको वै भुवने जने' कहा गया है। अर्थात् भुवन और जन दोनों अर्थों में लोक शब्द का व्यवहार होता है।

भुवन अर्थ में त्रिलोकी शब्द से द्युलोक, पृथिवी (मर्त्यलोक) पितृलोक (चन्द्रलोक) अर्थ लिया जाता है। द्युलोक से सूर्यादि लोक लिये जाते हैं। ये पूर्णतः आग्नेय तत्त्व प्रधान होते हैं। इनमें अग्नि शरीर वाले जीव निवास करते हैं। पितृलोक शीततत्त्व प्रधान ब्रह्माण्ड का नाम है। इसीलिए इसके अन्तर्गत चन्द्रादि लोक आते हैं। मर्त्यलोक में अनुष्णाशीत प्राणियों का निवास है। पृथिवी अन्दर से गर्म तथा ऊपर से ठण्डी है। इस पर रहने वाले प्राणी भी इसी तत्त्व से बने हैं। इन तीन भेदों से इनको त्रिलोकी कहा गया है।

जन अर्थ में मर्त्यलोक में ही वर्तमान देव, असुर तथा मनुष्य कोटि के प्राणी लिये जाते हैं। यह तीन भेद भी प्राणियों की भिन्न-भिन्न वृत्तियों के कारण किये गये हैं। इस प्रकार इस अर्थ में इन तीन वृत्तियों वाले प्राणी लिए गए हैं।

रामायण में इस शब्द से प्रकरणानुसार दोनों प्रकार के अर्थ किये गये हैं। यह पाठकों को ध्यान रखना चाहिये।

धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम् । ईश्वरेणापि यद्रागान्मया सीता न रक्षिता ॥१७॥
विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः । तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥१८॥
एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः । धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् ॥१९॥
इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम् । भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसंतापपीडिताः ॥२०॥
तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः । रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥२१॥
इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे । पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् ॥२२॥
अथवा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा । न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥२३॥
न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः । स्वचारित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥२४॥
नूनं रामप्रभावेण वैदेह्याः सुकृतेन च । यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः ॥२५॥
त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या । रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥२६॥
यद्वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रभुरव्ययः । न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति ॥२७॥
पुनश्चाचिन्तयत्तत्र हनुमान् विस्मितस्तदा । हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥२८॥
तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि । अपि सा निर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥२९॥
स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् । शुश्राव हनुमान् वाक्यं चारणानां महात्मनाम् ॥३०॥

तथा किसी भी कार्य करने में असमर्थ रजोगुण जनित भाव को धिक्कार है। क्योंकि समर्थ होता हुआ भी रजोगुणी भावों में आकर मैं सीता की रक्षा न कर सका ॥ १७ ॥ जानकी के नष्ट हो जाने पर निश्चय ही वे दोनों राजकुमार राम, लक्ष्मण भी नष्ट हो जायँगे और उन दोनों के नष्ट हो जाने पर बन्धु-बान्धव सहित अनुयायियों सहित राजा सुग्रीव भी नष्ट हो जाएँगे ॥१८॥ इन घटनाओं को सुनकर भ्रातृस्नेही धर्मात्मा भरत शत्रुघ्न के साथ किस प्रकार जीवित रह सकेंगे अर्थात् वे भी प्राण त्याग देंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार धार्मिक इक्ष्वाकु वंश के नष्ट हो जाने पर निश्चय ही सम्पूर्ण मानव प्रजा शोक सन्ताप से पीड़ित हो जायगी ॥ २० ॥ धर्मार्थ का लोप करने वाला, क्रोधजनित दोष से परिपूर्ण अभागा मैं स्पष्ट ही लोक विनाशक समझा जाऊँगा ॥ २१ ॥ हनुमान् के इस प्रकार विचार करते हुए कुछ ऐसे निमित्त (चिह्न) दिखलाई देने लगे जो उन्हें पहले भी साक्षात् दिखाई दिये थे। इन निमित्तों को देखकर हनुमान् पुनः विचार करने लगे ॥ २२ ॥ अथवा सर्वाङ्गसुन्दरी अपने ही तेज से स्वयं रक्षित होगी। उस कल्याणी जानकी का नाश कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आग को आग नहीं जलाती ॥ २३ ॥ अमित पराक्रमी धर्मात्मा रामचन्द्र की प्राणप्रिय भार्या जानकी को जो अपने चरित्र या शील से स्वयं रक्षित है, अग्नि स्पर्श नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ निश्चय ही रामचन्द्र के प्रभाव से और जानकी के पुण्यकर्म से जलाने वाली अग्नि की जिस ज्वाला ने मुझको नहीं जलाया [वह उसको भी नहीं जलाएगी] ॥ २५ ॥ भरतादि तीनों भाइयों की देवतामयी सीता तथा रामचन्द्र के लिये मनोऽभिरामा वह देवी कैसे नष्ट हो सकती है ॥ २६ ॥ दहनकर्मा यह अग्नि जो सब वस्तुओं को जलाने में समर्थ है तो भी मेरे लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) को नहीं जला सकी तो आर्या जानकी को कैसे जला सकती है ॥ २७ ॥ इस घटना से विस्मित होते हुए हनुमान् समुद्र के मध्य में मैनाक पर्वत-वासियों की घटना का तथा उनकी प्रार्थना आदि का चिन्तन करने लगे ॥ २८ ॥ तपश्चर्या, सत्य तथा पातिव्रत्य होने के कारण सीता स्वयं अग्नि को जला सकती है। अग्नि सीता को नहीं जला सकती ॥ २९ ॥ इस प्रकार जानकी के धार्मिक प्रभावों का विचार करते हुए हनुमान् ने महात्मा चारण लोगों की इन बातों को सुना ॥ ३० ॥ अहो ! हनुमान् ने यह कैसा अचिन्तनीय काम कर दिया, जो सम्पूर्ण राक्षसों के गृहों में

अहो खलु कृतं कर्म दुष्करं हि हनूमता । अग्निं विसृजताभीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ॥३१॥
प्रपलायितरक्षःस्त्रीबालवृद्धसमाकुला । जनकोलाहलाध्माता क्रन्दन्तीवाद्रिकन्दरे ॥३२॥
दग्धेयं नगरी सर्वा साट्टप्राकारतोरणा । जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥३३॥
इति शुश्राव हनुमान् वाचंताममृतोपमाम् । बभूव चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसंभवः ॥३४॥
स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः । ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत्प्रीतमानसः ॥३५॥
ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमद्विभ्रमो नाम पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

प्रतिप्रयाणोत्पतनम्

ततस्तां शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् । अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः । भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥ २ ॥

भयङ्कर आग लगा दी ॥ ३१ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध आतुर होकर जहाँ तहाँ भाग गये। जनता के कोलाहल तथा अत्यन्त क्रन्दन से लङ्का नगरी तथा पर्वत गुफाएँ परिपूर्ण हो गईं ॥ ३२ ॥ गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, चहारदीवारी तथा तोरण के साथ यह नगरी लङ्का दग्ध हो गई। किन्तु जनकनन्दिनी सीता नहीं जली। यह कितनी अद्भुत तथा विस्मयकारी बात है ॥ ३३ ॥ अमृत के समान चारणों की इन बातों को हनुमान् ने सुना। इन बातों को सुनकर उनके मन में उस समय अपार हर्ष हुआ ॥ ३४ ॥ शुभ निमित्तों के दिखाई देने से महागुण वाले अनेकों कार्यों से तथा चारणादि ऋषियों के वाक्यों से हनुमान् का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ३५ ॥ पश्चात् अपने आपको सफल मनोरथ समझकर, राजकुमारी जानकी सुरक्षित है, यह जानकर उसको पुनः प्रत्यक्ष देखकर तब इस लङ्का नगरी से प्रस्थान करना चाहिये, ऐसा हनुमान् ने विचार किया ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् की आशङ्का' विषयक पचपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

लङ्का से लौटने के लिये समुद्रलंघन

तदनन्तर हनुमान् शिंशपा वृक्ष की छाया में बैठी हुई जनकनन्दिनी सीता को प्रणाम करके यह बोले। सौभाग्य से कुशलपूर्वक तुम्हें मैं देख रहा हूँ ॥ १ ॥ हनुमान् को प्रस्थान करते हुए बार-बार देखकर पतिस्नेह परायणा जानकी हनुमान् से यह वचन बोली ॥ २ ॥ हे निष्पाप ! यदि तुम उचित समझो

यदि त्वं मन्यसे तात वसैकाहमिहानघ । क्वचित्सुसंवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर । शोकस्यास्याप्रमेयस्य मुहूर्तं स्यादपि क्षयः ॥ ४ ॥
गते हि हरिशार्दूल पुनः संप्राप्तये त्वयि । प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुंगव ॥ ५ ॥
अदर्शनं च ते वीर भूयो मां दारयिष्यति । दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तां दुर्मनःशोककर्शिताम् ॥ ६ ॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहत्सु सहायेषु हर्यृक्षेषु महाबलः ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं संतरिष्यति सागरम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा दशरथात्मजौ ॥ ८ ॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यापि लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ ९ ॥
तदत्र कार्यनिर्बन्धे समुत्पन्ने दुरासदे । किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥१०॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥ ११ ॥
शरैः सुसंकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥१२॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥१३॥
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् । निशम्य हनुमांस्तस्या वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १४॥
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः । सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥१५॥
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः । क्षिप्रमेष्यति वैदेहि सुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥१६॥
तौ च वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ । आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥१७॥
सगणं राक्षसं हत्वा न चिराद्रघुनन्दनः । त्वामादाय वरारोहे स्वां पुरीं प्रति यास्यति ॥१८॥

तो एक दिन यहाँ किसी गुप्त स्थान में निवास करो। कल पुनः विश्राम करके जाना ॥ ३ ॥ हे वनवासी वीर ! तुम्हारे एक दिन यहाँ रह जाने से मुझ भाग्यहीना को इन अप्रमेय विपत्तियों से थोड़ी देर के लिये छुटकारा मिल जाएगा ॥ ४ ॥ हे वनवासी वीर ! तुम्हारे जाने के पश्चात् पुनः मिलने तक मुझे अपने प्राणों का भी विश्वास नहीं, अर्थात् मैं तब तक जीवित भी रह सकूँगी या नहीं ॥ ५ ॥ हे वीर ! तुम्हारे अदर्शन से मुझ कठिन दुःख को पाने वाली तथा शोक से कृश को शोक अत्यन्त सन्ताप देगा ॥ ६ ॥ हे वीर ! तुम्हारी उपस्थिति में मेरा यह सन्देह तो स्थिर ही है। तुम्हारे सम्पूर्ण सहायक वनवासी सैनिक तथा उनके राजा सुग्रीव ॥ ७ ॥ उनकी विशाल सेना तथा वे दोनों राजकुमार राम, लक्ष्मण इस दुर्गम महान् समुद्र को किस प्रकार पार करेंगे ॥ ८ ॥ इस समय गरुड़ की, तुम्हारी और वायु की इन तीन प्रकार की शक्ति ही समुद्र पार जाने में समर्थ मानी जाती है ॥ ९ ॥ हे कर्तव्याकर्तव्य को जानने वालों में श्रेष्ठ ! दुर्गमनीय इस कार्य की सफलता के लिये तुम साधन को उचित समझते हो ॥ १० ॥ हे शत्रुघाती वीर हनुमान् ! इस कार्य की सफलता प्राप्त करने में आप ही समर्थ हैं। इससे तुम्हारे बल और यश की वृद्धि होगी ॥११॥ शत्रुओं के बल को खण्डित करने वाले रामचन्द्र यदि अपने शरों से सम्पूर्ण लङ्का को आतङ्कित करके मुझे ले जाँय तो यह उनके सदृश ही होगा ॥ १२ ॥ रणदुर्मद महात्मा रामचन्द्र का पराक्रम जिस प्रकार उनके स्वभाव के अनुरूप हो, वैसा ही तुम उपाय करो ॥ १३ ॥ सीता की अर्थ-परिपूर्ण, युक्तियुक्त तथा नम्र इन बातों को सुनकर हनुमान् उत्तर में ये वचन बोले ॥ १४ ॥ हे देवि ! वनवासी सेना के सम्राट्, सत्य-प्रतिज्ञ महाराज सुग्रीव ने निश्चयपूर्वक तुम्हारे प्रत्यागमन के लिये प्रतिज्ञा की है ॥ १५ ॥ हे वैदेहि ! सेनापति सुग्रीव हजारों तथा लाखों वनवासी सैनिकों के साथ शीघ्र ही इस लङ्का नगरी में आवेंगे ॥ १६ ॥ मानवश्रेष्ठ वे दोनों वीर राम, लक्ष्मण यहाँ आकर अपने तीक्ष्ण बाणों से लङ्का का विध्वंस कर देंगे ॥ १७ ॥ हे आर्य ! रघुकुल शिरोमणि रामचन्द्र सकुटुम्ब रावण को मारकर तथा तुमको लेकर अपनी पुरी अयोध्या

समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी । क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे ॥१९॥
निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे । त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥२०॥
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः । यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति॥२१॥
एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः । गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥२२॥
राक्षसान्प्रवरान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः। समाश्वास्य च वैदेहीं दर्शयित्वा परं बलम् ॥२३॥
नगरीमाकुलां कृत्वा वञ्चयित्वा च रावणम् । दर्शयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च ॥२४॥
प्रतिगन्तुं मनश्चक्रे पुनर्मध्येन सागरम् ॥
ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः । आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ॥२५॥
तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः । सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः ॥२६॥
बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः । उन्मिषन्तमिवोद्धूतैर्लोचनैरिव धातुभिः ॥२७॥
तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव सर्वतः । प्रगीतमिव विस्पष्टैर्नानाप्रस्रवणस्वनैः ॥२८॥
देवदारुभिरत्युच्चैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् । प्रपातजलनिर्घोषैः प्राक्रुष्टमिव सर्वतः ॥२९॥
वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्घनैः । वेणुभिर्मारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः ॥३०॥
निःश्वसन्तमिवामर्षाद्घोरैराशीविषोत्तमैः । नीहारकृतगम्भीरैर्ध्यायन्तमिव गह्वरैः ॥३१॥
मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः । जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रशालिभिः ॥३२॥

को प्रस्थान करेंगे ॥ १८ ॥ इसलिये हे देवि ! अब तुम धैर्य धारण करो । तुम्हारा कल्याण हो । तुम कुछ समय और प्रतीक्षा करो । तुम जल्दी ही रणभूमि में रामचन्द्र के द्वारा मारे गए रावण को देखोगी ॥ १९ ॥ पुत्र, अमात्य तथा बन्धु-बान्धवों के साथ राक्षसराज रावण के मारे जाने पर जैसे रोहिणी नक्षत्र चन्द्रमा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप रामचन्द्र को प्राप्त होंगी ॥ २० ॥ वनवासियों की विशाल सेना लेकर रामचन्द्र शीघ्र ही आवेंगे जो संग्राम में शत्रुओं को मारकर तुम्हारे शोक को दूर करेंगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार वायुपुत्र हनुमान् ने सीता को आश्वासन देकर लौटने का विचार करके वैदेही सीता को प्रणाम किया ॥ २२ ॥ मुख्य मुख्य राक्षसों को मारकर, अपने नाम की घोषणा कर, विदेह कुमारी जानकी को आश्वासन देकर, अपना अतुल पराक्रम दिखलाकर ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण लङ्का नगरी को ध्वस्त कर, बुद्धि कौशल से रावण को हराकर, अपने अप्रमेय बल का प्रदर्शन कर, मिथिलेश कुमारी जानकी को प्रणाम कर, वीर हनुमान् ने समुद्र के द्वारा पुनः लौट जाने का विचार किया ॥ २४ ॥ वनवासिसिंह हनुमान् रामचन्द्र के दर्शन की उत्सुकता से अरिमर्दन नामक पर्वतश्रेष्ठ पर चढ़ गए ॥ २५ ॥ जिस पर्वत के शिखर पर पद्मक वृक्ष तथा नीले वर्ण की वनपंक्तियाँ सुशोभित हो रहीं थीं । चादर की तरह जिस पर्वत की चोटियाँ घने मेघ से घिरी हुईं थीं ॥ २६ ॥ सूर्य की पवित्र किरणों से मानों वह पर्वत प्रेमपूर्वक जगाया जा रहा था । गैरिक आदि धातुरूपी लोचनों से मानों वह देख रहा था ॥ २७ ॥ जहाँ तहाँ नदीजल के प्रपात शब्दों से मानों वह अध्ययन में प्रवृत्त हो रहा था । नाना प्रकार के झरनों के शब्द से मानों वह स्पष्ट गान कर रहा था ॥२८॥ देवदारु के ऊँचे ऊँचे वृक्षों से मानों वह ऊर्ध्वहस्त खड़ा था । बड़े-बड़े जल प्रपात के शब्दों से मानों वह घोर गर्जन कर रहा था ॥ २९ ॥ झूमते हुए श्यामवर्ण वाले शरद्घन पंक्ति से मानों वह कांप रहा था । वायुपूरित बाँसों के शब्दों से मानों पक्षियों की तरह वह बोल रहा था ॥ ३० ॥ क्रोधाविष्ट सर्पों के फूत्कार से मानों वह लम्बी लम्बी साँस ले रहा था । हिमपरिपूरित गम्भीर गुफाओं से मानों वह ध्यानमग्न हो रहा था ॥ ३१ ॥ काले मेघ के समान अन्य छोटे पर्वतों से परिपूर्ण वह पर्वत मानों चलने के लिये समुद्यत हो रहा था । मेघों से घिरी हुई चोटियों के द्वारा मानों वह अंगड़ाई ले रहा था ॥ ३२ ॥ अपनी अनेक

कूटैश्च बहुधाकीर्णैः शोभितं बहुकन्दरैः । सालतालाश्वकर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम् ॥३३॥
लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलंकृतम् । नानामृगगणाकीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम् ॥३४॥
बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासंचयसंकटम् । महर्षियक्षगन्धर्वकिंनरोरगसेवितम् ॥३५॥
लतापादपसंबाधं सिंहाध्युषितकन्दरम् । व्याघ्रसङ्घसमाकीर्णं स्वादुमूलफलोदकम् ॥३६॥
तमारुरोह हनुमान् पर्वतं प्लवगोत्तमः । रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः ॥३७॥
तेन पादतलाक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु । सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः ॥३८॥
स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः । दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयल्लँवणाम्भसः ॥३९॥
अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः । ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम् ॥४०॥
स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसंभवः । प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥४१॥
स तदा पीडितस्तेन कपिना सर्वतोत्तमः । ररास सह तैर्भूतैः प्रविशन् वसुधातलम् ॥४२॥
कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ॥
तस्योरुवेगोन्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः । निपेतुर्भूतले रुग्णाः शक्रायुधहता इव ॥४३॥
कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् । सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन् हि शुश्रुवे ॥४४॥
स्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः । विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ॥४५॥
अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः । निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ॥४६॥

चोटियों तथा कन्दराओं से सुशोभित हो रहा था। साल, ताल, अश्वकर्ण तथा बांस के वृक्षों से परिपूर्ण था ॥ ३३ ॥ पुष्पित लता-प्रतानों से वह अलंकृत हो रहा था। नाना प्रकार के पशुओं से परिपूर्ण तथा धातुओं के पिघलकर बहने से वह सुशोभित हो रहा था ॥ ३४ ॥ अनेकों प्रकार के झरनों तथा पत्थर की चट्टानों से परिपूर्ण था। महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किंनर, नाग लोगों से सुशोभित था ॥ ३५ ॥ लतावृक्षों से सघन था, उसकी कन्दराओं में सिंह निवास कर रहे थे। व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से वह परिपूर्ण था। प्रचुर स्वादु मूल फल आदि वृक्षों से वह युक्त था ॥ ३६ ॥ इस प्रकार के पर्वत पर राम के दर्शन के लिये उत्सुक, अत्यन्त प्रहर्ष से प्रेरित वायुपुत्र महाबली हनुमान् चढ़ गए ॥३७॥ उस पर्वत की रमणीय चोटियों पर उनके पैर के आक्रमण से उस पर्वत की चट्टानें शब्द करती हुई टुकड़े-टुकड़े हो गई ॥ ३८ ॥ उस पर्वत पर चढ़कर महाबली हनुमान् ने अपने आकार प्रकार तथा उत्साह को बढ़ाया। उन्होंने समुद्र के दक्षिण से उस पार उत्तर की ओर जाने की इच्छा की ॥ ३९ ॥ पश्चात् पवनपुत्र वीर हनुमान् ने उस पर्वत पर चढ़कर मत्स्य, सर्प आदि प्राणियों से परिपूर्ण भयङ्कर समुद्र को देखा ॥ ४० ॥ वनवासी वीर वायुपुत्र हनुमान् गगन में वायु की तरह समुद्र के दक्षिण से उत्तर की तरफ चल पड़े ॥ ४१ ॥ विशालकाय हनुमान् के भार से पीड़ित उस पर्वत शिखर की चट्टानें टूटती हुई शब्द करने लगीं। जिसकी चोटियाँ काँप रही हैं, जहाँ के वृक्ष टूट टूट कर गिर रहे हैं उस पर्वत की चट्टानें नीचे फिसल गई ॥ ४२ ॥ हनुमान् की जङ्घाओं के द्वारा उन्मथित या कम्पायमान फूल फल वाले वे वृक्ष वज्र से आहत वृक्ष की तरह धराशायी हो गए ॥ ४३ ॥ उस पर्वत की कन्दराओं में रहने वाले बलवान् वे सिंह हनुमान् की कूद फाँद से आतङ्कित होकर भयङ्कर दहाड़ मारने लगे, जिनकी ध्वनि आकाश में चारों ओर फैल गई ॥ ४४ ॥ भय के मारे जिनके वस्त्र शिथिल हो गए हैं तथा जिनके आभूषण बिखर गए हैं, ऐसी विद्याधरों की स्त्रियाँ उस भूभाग से सहसा भाग गई ॥४५॥ अतिदीर्घकाय बलवान् विशाल जिह्वा वाले भयङ्कर विषधर सर्प सिर और गर्दन के पीड़ित होने से कुण्डलीभूत हो गए ॥ ४६ ॥ किंनर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर ये पर्वतीय मनुष्य उस पर्वत की चोटी को

किंनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तदा । पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ॥४७॥
स च भूमिधरः श्रीमान् बलिना तेन पीडितः । सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ॥४८॥
[दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः । धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ॥४९॥]
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम् । कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रतिप्रयाणोत्पतनं नाम षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

हनूमत्प्रत्यागमनम्

[सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् । तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवालशाद्वलम् ॥१॥
पुनर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् । ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलोलितम् ॥२॥

ध्वस्त देखकर उसे छोड़कर अन्य शिखर पर चले गए ॥ ४७ ॥ महाबली हनुमान् से पीड़ित उस पर्वत की चोटियाँ तथा वृक्ष सभी टूट-फूटकर धराशायी हो गए ॥ ४८ ॥ दस योजन लम्बा तथा तीस योजन ऊँचा पर्वत टूट-फूटकर पृथ्वी के बराबर हो गया †॥ ४९ ॥ जिसकी उद्वेलित लहरें तट का स्पर्श कर रही हैं ऐसे क्षार जल वाले उस समुद्र के पार जाने की इच्छा से महाबली हनुमान् समुद्र जल में कूद पड़े ॥ ५० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'लङ्का से लौटने के लिये समुद्रलंघन' विषयक छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

हनुमान् का लौटना

जहाँ पर चन्द्रमा ही रमणीय कमल के समान है, सूर्य कारण्ड पक्षी के समान है। तिष्य, श्रवण आदि नक्षत्र कलहंस माला के समान हैं। मेघ सेवाल तथा हरी घासों के समान हैं ॥ १ ॥ * पुनर्वसु नक्षत्र जहाँ मीन के समान है। मङ्गल ग्रह जहाँ ग्रह के समान है। ऐरावत नामक मेघ जहाँ पर हाथी के समान है। स्वाती नक्षत्र जहाँ हंस के समान है ॥ २ ॥ वायु का वेग जहाँ लहरों के समान है तथा चन्द्रमा की किरणें जहाँ शीतल जल के समान हैं।

† यह श्लोक प्रक्षिप्त है। सम्पूर्ण विश्व में इतना ऊँचा कोई पर्वत नहीं है। छोटे से लंका टापू में इतना ऊँचा पर्वत कैसे हो सकता है। इस प्रकार यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण, असम्भव तथा बुद्धि विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है। इस प्रकार के वर्णन पुराणों में हैं, वहीं से लाकर रख दिये गए हैं।

* हनुमान् का आकाश में उड़ना पौराणिक कल्पना है। वस्तुतः वे समुद्र तैर कर गए थे। सुन्दरकाण्ड प्रथम सर्ग, श्लोक ६६-६९ में स्पष्ट रूप से उनके तैरने का वर्णन किया गया है। इस प्रकार ये श्लोक पूर्वापरविरुद्ध होने से प्रक्षिप्त हैं।

वातसङ्घातजालोर्मिं चन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् । भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥३॥
हनुमान् मारुतगतिर्महानौरिव सागरम् । अपारमपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ॥४॥
ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन् । हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥५॥
मारुतस्यात्मजः श्रीमान् कपिर्व्योमचरो महान् । हनुमान् मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥६॥
पाण्डरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च । हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥७॥
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रामंश्च पुनः पुनः । प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते ॥८॥
विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः । दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तदा चन्द्रायतेऽम्बरे ॥९॥
तार्क्ष्यायमाणो गगने बभासे वायुनन्दनः । दारयन् मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥१०॥]
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । प्रवरान् राक्षसान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः॥११॥
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् । अर्दयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च ॥१२॥
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् । पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥१३॥
ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागतः । स किंचिदनुसंप्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥१४॥
महेन्द्रं मेघसंकाशं ननाद हरिपुंगवः । स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ॥ १५ ॥
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥ १६ ॥
ननाद हरिशार्दूलो लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् । तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णाचरिते पथि ॥ १७ ॥
फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम् । ये तु तत्रोत्तरे तीरे समुद्रस्य महाबलाः ॥ १८ ॥

भुजङ्ग, यक्ष, गन्धर्व ये जहाँ विकसित कमल के समान हैं ॥ ३ ॥ जैसे विशाल नौका समुद्र में जाती है उसी तरह वायु-गति के समान बिना थकावट के वे हनुमान् ऐसे अपार समुद्र रूपी गगन में उड़े ॥ ४ ॥ हनुमान् मानों आकाश को ग्रस रहे हैं। चन्द्रमा को मिटाते हुए सूर्य तथा नक्षत्रमण्डल के सहित आकाश को हरते हुए ॥ ५ ॥ वायु के पुत्र श्रीमान् हनुमान् आकाश में जाते हुए मेघ समूहों को खींचते हुए चले ॥ ६ ॥ धूसर तथा लालवर्ण वाले, मञ्जिष्ठ के समान लाल, नीले वर्ण वाले, हरित तथा लाल वर्ण वाले महामेघ आकाश में सुशोभित हो रहे थे ॥७॥ हनुमान् कभी मेघों में प्रवेश कर जाते थे कभी निकल जाते थे। इस प्रकार वे निर्गम, प्रवेश करते हुए चन्द्रमा के समान प्रतीत होते थे ॥ ८ ॥ विविध प्रकार के मेघ मार्गों में जाते हुए श्वेतवस्त्र के कारण हनुमान् कभी दिखाई देने वाले कभी न दिखाई देने वाले चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ९ ॥ मेघ मण्डल को फाड़कर हनुमान् बार बार निकल जाते थे। इसलिये वायुपुत्र हनुमान् आकाश में गरुड़ के समान आचरण करते हुए दिखाई देते थे ॥ १० ॥ मेघ के समान उस समय हनुमान् ने महान् गर्जन किया। चुने हुए श्रेष्ठ राक्षसों को मारकर, अपने नाम की घोषणा करके ॥ ११ ॥ लङ्का नगरी को ध्वस्त कर, रावण को व्यथित कर, बड़े बड़े वीरों का मान मर्दन कर वैदेही जानकी को प्रणाम करके॥ १२॥ महातेजस्वी हनुमान् तैरते हुए समुद्र के मध्य में आए। पराक्रमी हनुमान् ने समुद्र-गत सुनाभ (मैनाक) नामक पर्वत को देखा ॥ १३ ॥ हनुमान् उस विशाल पर्वत को समीप से देखकर प्रत्यञ्चा से छोड़े हुए बाण की तरह महावेग से आए ॥ १४ ॥ महावीर हनुमान् ने विद्युत्पूर्ण मेघ के समान महान् गर्जन किया। जिससे उन्होंने दसों दिशाओं को गुञ्जायमान कर दिया ॥ १५ ॥ महान् मेघ गर्जन के समान गर्जन करते हुए हनुमान् अपने साथियों के दर्शन की उत्सुकता से उस स्थान के समीप पहुँचे ॥ १६ ॥ उस समय हनुमान् ने महान् गर्जन किया तथा लाङ्गूल (ध्वजा) को ऊपर फहराया। उनके भयङ्कर घोर गर्जन से आकाश में ॥ १७ ॥ इस प्रकार का उनका शब्द हुआ मानों इनके गर्जन से सूर्यमण्डल के सहित आकाश फट रहा है। और जो समुद्र के उत्तर तट पर महाबली ॥ १८ ॥ वीर वायुपुत्र हनुमान् को देखने

पूर्वं संविष्ठिता शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः । महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव गर्जितम् ॥ १९ ॥
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः ॥
ते दीनवदनाः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः । वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २० ॥
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः । बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २१ ॥
जाम्बवांस्तु हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः । उपामन्त्र्य हरीन् सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः । न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥ २३ ॥
तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः । निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुस्ततस्ततः ॥ २४ ॥
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च । प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥ २५ ॥
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखाः सुपुष्पिताः । वासांसीव प्रशाखाश्च समाविध्यन्त वानराः ॥ २६ ॥
गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः । एवं जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मजः ॥ २७ ॥
तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम् । दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २८ ॥
ततस्तु वेगवांस्तस्य गिरेर्गिरिनिभः कपिः । निपपात महेन्द्रस्य शिखरे पादपाकुले ॥ २९ ॥
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे । छिन्नपक्ष इवाकाशात्पपात धरणीधरः ॥ ३० ॥
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुंगवाः । हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ३१ ॥
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः । प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमरोगमुपागतम् ॥ ३२ ॥
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च । विनेदुर्मुदिताः केचित् केचित्किलकिलां तथा ॥ ३३ ॥

के लिये पहले से ही अवस्थित थे, उन्होंने मेघ गर्जन के समान हनुमान् के महान् गर्जन शब्द को वायु के सहारे सुना ॥ १९ ॥ बादल के समान वनवासी हनुमान् के गर्जन को समुद्रतट पर रहने वाले दीन, दुःखी हनुमान् के साथी वनवासियों ने सुना ॥ २० ॥ हनुमान् के गरजते हुए महान् शब्द को सुनकर मित्र दर्शन की आकाङ्क्षा से उत्कण्ठित वे सभी अत्यन्त उत्सुक हो गए ॥ २१ ॥ वनवासियों में श्रेष्ठ जाम्बवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने सभी साथियों को एकत्र कर यह बोले ॥ २२ ॥ हनुमान् अपने कार्य को सफल करके आ रहे हैं। अब इसमें कोई सन्देह नहीं। कार्य में असफल होने पर उनका इस प्रकार का गर्जन नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ हनुमान् के बाहु आदि अङ्गों के प्रक्षेपण से तथा घोर गर्जन को सुनकर वे सभी वनवासी सैनिक अत्यन्त प्रसन्न होकर इधर उधर उछलने कूदने लगे ॥ २४ ॥ हनुमान् को देखने की इच्छा से वे सभी वनवासी सैनिक एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर तथा एक चोटी से दूसरी चोटी पर प्रसन्न होकर दौड़ने लगे ॥ २५ ॥ प्रसन्न होकर वे वनवासी सैनिक वृक्षों के ऊपर चढ़ गए तथा दिखाई देने वाले वस्त्रों को इधर उधर फहराने लगे ॥ २६ ॥ पर्वतीय गुफा में अवस्थित जिस प्रकार वायु या सिंह गरजता है इसी प्रकार पवनपुत्र बलवान् हनुमान् ने गर्जन किया ॥ २७ ॥ घने मेघ के समान महाबली हनुमान् को आते हुए देखकर वे सभी वनवासी करबद्ध खड़े हो गए ॥ २८ ॥ वेगवान् विशालकाय महावीर हनुमान् वृक्षों से परिपूर्ण महेन्द्र पर्वत के शिखर पर पहुँचे ॥ २९ ॥ आनन्द युक्त हनुमान् झरनों से युक्त उस पर्वत पर इस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार छिन्न भिन्न मेघ आकाश से पर्वतों पर पहुँचता है ॥ ३० ॥ प्रसन्नता से परिपूर्ण वे सभी वनवासी सैनिक आए हुए हनुमान् को चारों तरफ से घेरकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ प्रसन्नचित्त वाले वे सभी वीर आए हुए हनुमान् के पास आकर तथा उनको अपने मध्य में पाकर अति प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ वे सभी वनवासी सैनिक भेंट रूप में फल मूल आदि के द्वारा हनुमान् का सत्कार करने लगे ॥ ३३ ॥ प्रसन्न होकर कोई नाद करने लगे, कोई किल-किला शब्द करने

हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः । प्रत्यर्चयन् हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥ ३४ ॥
हनूमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा । कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥ ३५ ॥
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः । दृष्टा सीतेति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥ ३६ ॥
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् । रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥ ३७ ॥
हनुमानब्रवीद्धृष्टस्तदा तान् वानरर्षभान् । अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ॥३८॥
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता । एकवेणीधरा दीना महार्थममृतोपमम् ॥ ३९ ॥
उपवासपरिश्रान्ता जटिला मलिना कृशा । ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ॥ ४० ॥
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानरा भवन् । क्ष्वेलन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ॥४१॥
चक्रुः किलिकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे । केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ॥४२॥
अञ्चितायतदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः । अपरे च हनूमन्तं वानरा वारणोपमम् ॥ ४३ ॥
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेभ्यः संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः । उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तमथाब्रवीत् ॥ ४४ ॥
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् । सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित्समो वानर विद्यते ॥ ४५ ॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः । जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ॥ ४६ ॥
त्वत्प्रसादात्समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण तु । अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ॥ ४७ ॥

लगे तथा कोई वनवासी सैनिक प्रसन्न होकर वृक्षों की शाखा ले आए ॥ ३४ ॥ वयोवृद्ध श्रेष्ठ जाम्बवान् आदि महान् सेनापतियों तथा राजकुमार अङ्गद को महाबली हनुमान् ने प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ जाम्बवान्, अङ्गद तथा अन्य वनवासी सैनिकों से सत्कृत होने पर महाबली हनुमान् ने संक्षेप में यह कहा कि मैंने देवी जानकी को देखा है ॥ ३६ ॥ बालिपुत्र राजकुमार अङ्गद का हाथ पकड़कर महेन्द्र पर्वत के रमणीय स्थान पर हनुमान् बैठ गए ॥ ३७ ॥ उन सैनिकों के प्रश्न करने पर हनुमान् ने उनसे यह कहा कि मैंने अशोकवाटिका में बैठी हुई मिथिलेशकुमारी जानकी को देखा है ॥ ३८ ॥ एक वेणी को धारण करने वाली तथा रामचन्द्र के दर्शन के लिये उत्सुक अनिन्दिता जानकी की रक्षा वहाँ पर भयङ्कर राक्षसियाँ कर रही हैं ॥ ३९ ॥ इस समय उपवास से दुःखी, स्नानादि न करने से मलिन, अति दुर्बल तथा उनके केश जटा के रूप में हो गए हैं। पश्चात् 'मैंने दर्शन किया' अर्थ परिपूर्ण, अमृत के समान इस वचन को ॥ ४० ॥ हनुमान् के द्वारा सुनकर वे सभी वनवासी वीर आनन्द से गद्गद हो गए। कई वनवासी क्रीडा करने लगे, कुछ सैनिक अव्यक्त हुङ्कार करने लगे तथा कुछ महाबली सैनिक गर्जन करने लगे ॥ ४१ ॥ कोई किलकारियाँ भरने लगे। कुछ गर्जन करने वालों के स्पर्धारूप में गर्जन करने लगे। किसी वनवासी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने लाङ्गूल (ध्वजा) को ऊपर उठा लिया ॥ ४२ ॥ कोई अपने विशाल लाङ्गूल (ध्वजाओं) को कंपाने लगे, और कुछ वनवासी सैनिक श्रीमान् महावीर हनुमान् के ॥ ४३ ॥ पर्वतशिखर पर जाकर प्रसन्नतापूर्वक चरणस्पर्श करने लगे। जानकी को मैंने देखा इस प्रकार के कहने वाले हनुमान् से अङ्गद बोले ॥ ४४ ॥ सब वनवासी वीर सैनिकों के मध्य में अङ्गद ने यह उत्तम बात कही। हे वनवासी महावीर! बल तथा पराक्रम में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है ॥ ४५ ॥ विशाल समुद्र को पार कर तुम पुनः लौट आए हो। हे श्रेष्ठ महावीर! अब तो तुम्हीं हम लोगों के प्राणदाता हो ॥ ४६ ॥ आपकी कृपा से सिद्धमनोरथ होकर हम सभी लोग मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के पास जाएँगे। स्वामी रामचन्द्र के प्रति आपकी भक्ति, आपका पराक्रम अत्यन्त प्रशंसनीय है ॥ ४७ ॥ यह सौभाग्य है कि राम की यशस्विनी पत्नी सीता को आपने देखा है। सौभाग्य है कि सीता के वियोगजनित दुःख को रामचन्द्र शीघ्र

दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी। दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ॥
ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः। परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ॥ ४९ ॥
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ॥
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च। तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनुमद्वदनोन्मुखाः ॥ ५० ॥
तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान् वानरैर्बहुभिर्वृतः। उपास्यमानो विबुधैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥ ५१ ॥
हनूमता कीर्तिमता यशस्विना तथाङ्गदेनाङ्गदबद्धबाहुना।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महन्महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाभवत् ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्प्रत्यागमनं नाम सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

हनूमद्वृत्तानुकथनम्

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः। हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥
तं ततः प्रीतिसंहृष्टः प्रीतिमन्तं महाकपिम्। जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ॥ २ ॥

ही छोड़ेंगे ॥ ४८ ॥ पश्चात् हनुमान्, अङ्गद तथा जाम्बवान् को सभी प्रसन्न वनवासी सैनिक घेर कर समुद्र के पार जाने की कथा सुनने के लिये एक विशाल चट्टान पर बैठ गए ॥ ४९ ॥ लङ्का का दर्शन, सीता तथा रावण का दर्शन इन सब का विस्तृत समाचार सुनने के लिये वे सभी सैनिक हाथ जोड़कर हनुमान् के सम्मुख बैठ गए ॥ ५० ॥ उन वनवासी वीर सैनिकों से घिरे हुए राजकुमार अङ्गद इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे जैसे अमरावती में देवताओं से पूजित इन्द्र बैठे हों ॥ ५१ ॥ कीर्तिमान्, यशस्वी हनुमान् तथा अङ्गद नामक अलङ्कार के धारण करने वाले राजकुमार अङ्गद इन दोनों व्यक्तियों के प्रसन्नतापूर्वक वहाँ बैठने से उस पर्वत की समुन्नत चोटी अत्यन्त शोभायुक्त हो गई ॥ ५२ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् का लौटना' विषयक सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

हनुमान् के द्वारा वृत्तान्त कथन

महेन्द्र पर्वत के रमणीय शिखर पर बैठे हुए हनुमान् आदि प्रमुख वनवासी वीर इस सफलता से अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वयोवृद्ध जाम्बवान् ने सम्पूर्ण लङ्का के कार्य वृत्तान्त को पवनपुत्र हनुमान् को प्रसन्न करते हुए पूछा ॥ २ ॥ आपने जानकी देवी को कैसे देखा ?

कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते । तस्यां वा स कथंवृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ॥ ३ ॥
तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे । संमार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् । यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ॥ ५ ॥
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद्भवान् व्याकरोतु नः । स नियुक्तस्ततस्तेन संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६ ॥
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत । प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात्खमाप्लुतः ॥ ७ ॥
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः । गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् ॥ ८ ॥
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् । स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् ॥ ९ ॥
उपसङ्गम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगसत्तमम् । कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च ॥१०॥
[प्रहतं च मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः । शिखरं सूर्यसंकाशं व्यशीर्यत सहस्रधा ॥११॥
व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः । पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ॥१२॥
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः । मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ॥१३॥
पक्षवन्तः पुरा पुत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः । छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ॥१४॥
श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः । चिच्छेद भगवान् पक्षान् वज्रेणैषां सहस्रशः ॥१५॥
अहं तु मोक्षितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना । मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तोऽस्मि महार्णवे ॥१६॥

लङ्का में वह किस प्रकार निवास कर रही है ? क्रूरकर्मा रावण का सीता के प्रति कैसा व्यवहार है ? ॥ ३ ॥ हे महावीर ! इन सारे प्रश्नों का समाधान तुम समुचित रूप से करो । सीता का पता तुमने कैसे लगाया ? सीता की आपके साथ क्या बातें हुई ॥ ४ ॥ इन प्रश्नों का उत्तर सुनने के पश्चात् मैं पुनः कर्तव्य का निश्चय करूँगा । रामचन्द्र के समीप जाकर किस प्रकार का वार्तालाप करना होगा ॥ ५ ॥ जो बातें उस महात्मा के सम्मुख रखनी हैं उनको हम लोगों के समक्ष निश्चय कर लेवें । जाम्बवान् के इस प्रकार के प्रश्न करने पर हनुमान् रोमाञ्चित हो गए ॥ ६ ॥ सिर झुकाकर सीता को प्रणाम कर हनुमान् जाम्बवान् के प्रश्नों का उत्तर देने लगे । आप लोगों के समक्ष ही महेन्द्र पर्वत के शिखर से मैंने छलांग लगाई ॥ ७ ॥ सावधानी से समुद्र के दक्षिण तट पर जाते हुए घोर विघ्न के समान घटना घटी ॥ ८ ॥ मनोहारी काञ्चन के समान शिखरों वाले एक पर्वत को जल में देखा । अपने गमन मार्ग में ही अवरोधक होने के कारण मैंने उसको विघ्न ही समझा ॥ ९ ॥ उस काञ्चन के समान चमकते हुए शिखर वाले पर्वत के समीप जाकर मेरे मन में ऐसा विचार आया कि इसको मैं नष्ट कर डालूँ ॥ १० ॥ लाङ्गूल के द्वारा मेरे प्रहार करने पर उस पर्वत के सूर्य के समान देदीप्यमान शिखर छिन्न भिन्न होकर पृथिवी पर गिर पड़े* ॥ ११ ॥ मेरे इस पराक्रमपूर्ण उद्योग को जानकर उस पर्वत ने 'पुत्र' इस वाणी के द्वारा मेरे मन को आह्लादित करते हुए यह कहा ॥ १२ ॥ मुझे तुम अपना चाचा समझो । मैं तुम्हारे पिता वायु का मित्र हूँ । मैं इस समुद्र में निवास करता हूँ और मैनाक नाम से विख्यात हूँ ॥ १३ ॥ ये सभी उत्तम पर्वत पहले पंख वाले होते थे तथा सम्पूर्ण पृथिवी को कुचलते हुए स्वच्छन्द घूमा करते थे ॥ १४ ॥ पर्वतों के इस प्रकार के चरित्र को सुन कर पाकशासन इन्द्र ने सैकड़ों पर्वतों के पंख काट डाले ॥ १५ ॥ तुम्हारे पिता के द्वारा मैं इस सङ्कट से बचा लिया गया । हे वत्स ! उस समय तुम्हारे पिता वायुदेव ने मुझे उठाकर समुद्र में फेंक दिया ॥ १६ ॥ इसलिये हे शत्रुमर्दन ! मुझे भी रामचन्द्र की सहायता के लिये सदा तत्पर रहना

* पर्वत के बातचीत आदि की कल्पना असंभव तथा बुद्धि विरुद्ध है । इस कथा को यहाँ जोड़ना सर्वथा असङ्गत है । इसलिये यह प्रकरण प्रक्षिप्त है ।

रामस्य च मया साह्यं वर्तितव्यमरिंदम । रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ॥१७॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मैनाकस्य महात्मनः । कार्यमावेद्य तु गिरेरुद्यतं च मनो मम ॥१८॥
तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना । स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता ॥१९॥
शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ । उत्तमं जवमास्थाय शेषं पन्थानमास्थितः ॥२०॥]
ततोऽहं सुचिरं कालं वेगेनाभ्यगमं पथि । ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् ॥२१॥
समुद्रमध्ये सा देवी वचनं मामभाषत । मम भक्षः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ॥२२॥
अतस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं चिरस्य मे । एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥२३॥
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदैरयम् । रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥२४॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परंतपः । तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥२५॥
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् । कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्यं विषये सति ॥२६॥
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् । आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिश्रृणोमि ते ॥२७॥
[एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी । अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ॥२८॥
एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः । ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ॥२९॥
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया । तद्‌दृष्ट्वा व्यादितं चास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं वपुः ॥३०॥
तस्मिन् मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः । अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ॥३१॥]

चाहिये । रामचन्द्र धर्मधारी महात्माओं में श्रेष्ठ हैं तथा महेन्द्र के समान पराक्रमी हैं ॥ १७ ॥ महात्मा मैनाक की इन बातों को सुनकर मैंने अपना कार्य-क्रम बतलाया तथा मेरा मन जाने के लिये उत्साहित हो गया ॥ १८ ॥ उस महात्मा मैनाक से आज्ञा पाकर मैं चल पड़ा । वह पर्वत मनुष्य के शरीर से तिरोहित हो गया ॥ १९ ॥ किन्तु पर्वत के शरीर से वह वहीं उपस्थित रहा । अपने वेग तथा उत्तम गति से मैं अपने समुद्रीय मार्ग को तय करने लगा ॥ २० ॥ उस मार्ग में चिरकाल तक अति वेग से मैं चलता रहा । पश्चात् नागों की माता देवी सुरसा को मैंने वहाँ देखा ॥ २१ ॥ समुद्र के मध्य में अवस्थित वह देवी सुरसा यह वचन बोली । हे वनवासी श्रेष्ठ ! देवताओं ने तुमको भक्षण करने के लिये मुझे आदेश दिया है ॥ २२ ॥ इस लिये मैं तुम्हारा भक्षण करूँगी । देवताओं ने मुझको बहुत समय से ऐसा ही आदेश दिया है। सुरसा के ऐसा कहने पर मैं उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥ मेरे मुख की कान्ति जाती रही और मैं इस प्रकार उससे बोला । दशरथ के पुत्र श्रीमान् रामचन्द्र ने दण्डक बन में प्रवेश किया है ॥ २४ ॥ उनके साथ उनके भाई लक्ष्मण तथा उनकी धर्मपत्नी जानकी ने भी वन में प्रवेश किया । वहाँ पर उनकी धर्मपत्नी को दुरात्मा रावण ने हर लिया ॥ २५ ॥ राम की आज्ञा से मैं दूत बनकर सीता के समीप जा रहा हूँ । रामचन्द्र के देश में रहने के कारण तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये ॥ २६ ॥ अथवा मैथिली सीता तथा उत्तम कर्म करने वाले रामचन्द्र से मिलकर मैं तुम्हारे समीप आ जाऊँगा । यह मैं बिलकुल सत्य कह रहा हूँ ॥ २७ ॥ मेरे ऐसा कहने पर वह कामरूपिणी (स्वेच्छा से रूप बदलने वाली) सुरसा यह बोली कि इस मेरे कथन में परिवर्तन नहीं हो सकता । मेरा यही निश्चय है ॥ २८ ॥ सुरसा के इस प्रकार कथन के समय मेरा शरीर जो दस योजन लम्बा था उसे उसी क्षण मैंने पाँच योजन का बना लिया ॥ २९ ॥ उसने उस समय मेरे प्रमाण से अधिक अपने मुख को फैलाया । उसको देखकर मैंने अपने शरीर को अत्यन्त लघु कर लिया ॥ ३० ॥ उस समय अपने शरीर को अङ्गुष्ठमात्र बनाकर शीघ्रतापूर्वक उसके मुख में प्रवेश कर तत्क्षण पुनः बाहर निकल आया ॥ ३१ ॥ उस समय देवी सुरसा अपने वास्तविक स्वरूप में पुनः मुझसे बोली—हे सौम्य वन-

अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः । अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥३२॥
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना । सुखी भव महाबाहो प्रीतास्मि तव वानर ॥३३॥
ततोऽहं साधु साध्विति सर्वभूतैः प्रशंसितः । ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ॥३४॥
छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किंचन । सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ॥३५॥
न किंचित्तत्र पश्यामि येन मेऽपहृता गतिः । ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना किं नाम गगने मम ॥३६॥
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपं यत्र न दृश्यते । अधोभागेन मे दृष्टिः शोचता पातिता मया ॥३७॥
ततोऽद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम् । प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया ॥३८॥
अवस्थितमसंभ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ॥
क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः । भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ॥३९॥
बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः । आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥४०॥
तस्याश्चास्यं महद्भीमं वर्धते मम भक्षणे । न च मां सा तु बुबुधे मम वा निकृतं कृतम् ॥४१॥
ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात् । तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभःस्थलम् ॥४२॥
सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि । मया पर्वतसंकाशा निकृत्तहृदया सती ॥४३॥
शृणोमि खगतानां च सिद्धानां चारणैः सह । राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ॥४४॥
तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन् । गत्वा चाहं महाध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ॥४५॥

वासी वीर हनुमान्! तुम अपनी कार्यसिद्धि के लिये सुखपूर्वक जाओ ॥ ३२ ॥ महात्मा रामचन्द्र के साथ सीता का सम्मिलन कराओ। हे विशाल भुजा वाले वनवासी वीर! तुम सुखी हो, तुम्हारे कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ३३ ॥ उस समय सभी लोगों ने 'बहुत ठीक बहुत ठीक' ऐसा कहकर मेरी प्रशंसा की। पश्चात् आकाश में गरुड़ पक्षी की तरह मैं तैरता हुआ जा रहा था ॥ ३४ ॥ उस समय छायाग्राही किसी व्यक्ति के द्वारा मैं पकड़ लिया गया। किन्तु पकड़ने वाले को मैंने नहीं देखा। अवरुद्ध वेग के कारण मैं दसों दिशाओं में इधर उधर देखने लगा ॥ ३५ ॥ किन्तु गति को रोकने वाले किसी व्यक्ति या वस्तु को मैंने वहाँ नहीं देखा। उस समय मुझे ऐसा विचार आया कि मेरे जाने में यह क्या ॥ ३६ ॥ ऐसा विघ्न उत्पन्न हो गया। किन्तु मुझे यहाँ कोई आकार भी नहीं दिखाई दे रहा है। विचार करते हुए मेरी दृष्टि जल के नीचे भाग में पड़ी ॥ ३७ ॥ वहाँ पर जल के अन्दर एक विशालकाय राक्षसी को देखा। हँसकर उस भयङ्कर राक्षसी ने भयङ्कर गर्जन किया तथा निर्भ्रान्त रूप में खड़े हुए मुझसे अभद्र बात कही ॥ ३८ ॥ हे महाकाय वीर! तुम कहाँ जाओगे? मुझ भूखी के लिये तुम पर्याप्त हो। चिरकाल से मुझ भूखी के इस शरीर को भक्ष्यरूप में होकर प्रसन्न करो ॥ ३९ ॥ 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर मैंने उसकी बात को स्वीकार किया। मैंने उसके मुखाकार से अपने शरीर को बड़ा कर लिया ॥ ४० ॥ उसने अपने भयङ्कर मुख को मेरे खाने के लिये बढ़ाया। मेरी विशाल आकृति को देखकर भी वह मेरी शक्ति को न जान सकी ॥ ४१ ॥ पश्चात् मैं अपने विशाल शरीर को थोड़े ही समय में लघु बनाकर उसके हृदय को विदारण कर जल में आगे बढ़ गया ॥ ४२ ॥ विशालकाय मेरे द्वारा उसके हृदय के नष्ट हो जाने पर वह खारे पानी वाले समुद्र के अन्दर गिर पड़ी ॥ ४३ ॥ गगनचारी चारणों के साथ सिद्ध महात्माओं की यह मनोहारी वाणी सुनी— भयङ्कर सिंहिका नामक राक्षसी को हनुमान् ने शीघ्र ही मार डाला ॥ ४४ ॥ उसको मारकर अपने भविष्य कार्य का स्मरण करते हुए (आगे बढ़ा)। बहुत दूर तक जाकर पर्वतमाला से युक्त ॥ ४५ ॥ समुद्र के दक्षिणतट को देखा, जहाँ पर लङ्का नगरी अवस्थित थी। सूर्य के अस्त हो जाने पर मैंने राक्षसों के

दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र च सा पुरी । अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरम् ॥४६॥
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः । तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसंनिभा ॥४७॥
अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काप्युत्थिता पुरः । जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम् ॥४८॥
सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम् । प्रदोषकाले प्रविशं भीतयाहं तयोदितः ॥४९॥
अहं लङ्कापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते । यस्मात्तस्माद्विजेतासि सर्वरक्षांस्यशेषतः ॥५०॥
तत्राहं सर्वरात्रं तु विचिन्वञ्जनकात्मजाम् । रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥५१॥
ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने । शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥५२॥
शोचता च मया दृष्टं प्राकारेण समावृतम् । काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥५३॥
सप्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम् । अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान् ॥५४॥
तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम् । अदूरे शिंशपावृक्षात्पश्यामि वरवर्णिनीम् ॥५५॥
श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम् । तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ॥५६॥
शोकसंतापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम् । राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ॥५७॥
मांसशोणितभक्षाभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीमिव । सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥५८॥
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा । भूमिशय्याविवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥५९॥

निवासस्थल लङ्कापुरी में ॥ ४६ ॥ भयङ्कर राक्षसों से छिपकर प्रवेश किया । वहाँ मेरे प्रवेश करते ही प्रलय-काल के मेघ के समान ॥ ४७ ॥ अट्टहास करती हुई कोई नारी मेरे समक्ष उपस्थित हुई । जलती हुई अग्निज्वाला के समान जिसके सिर के बाल थे, वह मुझे मारना ही चाहती थी ॥ ४८ ॥ मैंने अपने बाईं मुष्टि के प्रहार से इस भयङ्कर राक्षसी को पराजित कर दिया । रात्रि के समय लङ्कानगरी में मैंने प्रवेश किया तथा प्रवेश करते समय डरी हुई इस नारी ने मुझसे कहा ॥ ४९ ॥ हे वीर ! मैं लङ्का नाम वाली इस नगरी की रक्षिका हूँ । स्वयं मेरा नाम ही लङ्का है । आपके पराक्रम से मैं पराजित हो गई हूँ । इसलिये आप समस्त राक्षसों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५० ॥ वहाँ मैं सम्पूर्ण रात्रि भर रावण की नगरी लङ्कापुरी में जानकी की खोज करता रहा । किन्तु जानकी का दर्शन न कर सका ॥ ५१ ॥ इस रावण के निवासस्थान में सती सीता को न देखकर मैं शोक समुद्र में इस प्रकार डूब गया कि पार जाने का मुझे कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया ॥ ५२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए काञ्चननिर्मित चहारदीवारी से घिरी हुई गृहों से युक्त एक उत्तम वाटिका को देखा ॥ ५३ ॥ उस चहारदीवारी को लाँघकर अनेकों प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण उस अशोकवाटिका के मध्य में एक महान् शिंशपा वृक्ष देखा ॥ ५४ ॥ उस वृक्ष पर चढ़कर मैंने काञ्चनवर्ण वाले कदलीवन को देखा । शिंशपा वृक्ष के समीप ही उत्तमाङ्गी सती सीता को देखा ॥ ५५ ॥ जो युवावस्था में पदार्पण कर चुकी है, कमल के समान नेत्रों वाली, उपवास के कारण अत्यन्त दुर्बल, एक वस्त्र को धारण करने वाली, धूल-धूसरित केशों वाली ॥ ५६ ॥ जो शोकसन्ताप से अत्यन्त दुःखी हो रही थी तथा पति की हितचिन्ता में जो मग्न हो रही थी, क्रूर विकराल राक्षसियों से जो सर्वतः घिरी हुई थी ॥ ५७ ॥ माँस, रक्त का भक्षण करने वाली राक्षसियों के बीच में वह इस प्रकार घिरी थी जिस प्रकार व्याघ्री से हिरनी घिरी हो । इस प्रकार राक्षसियों से धमकाई जाती हुई उन्हीं क्रूर राक्षसियों के मध्य में जानकी को देखा ॥ ५८ ॥ पतिवियोग से चिन्तामग्न सीता उस समय एक वेणी को धारण किये हुए थी । भूमि पर शयन करने से जिसका वर्ण मलिन तथा शरीर इस प्रकार कृश हो रहा था जैसे शीतकाल में कमलिनी ॥ ५९ ॥ रावण के द्वारा जिसके सम्पूर्ण मनोरथ ध्वस्त हो गए हैं और जिसने निराश होकर मरने का निश्चय कर लिया है

रावणाद्विनिवृत्तार्या मर्तव्यकृतनिश्चया । कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ॥६०॥
तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम् । तत्रैव शिंशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥६१॥
ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् । शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥६२॥
ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रतिसंहरन् । अहं तु शिंशपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥६३॥
ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः । तं देशं समनुप्राप्ता यत्र सीताभवत्स्थिता ॥६४॥
तद्दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् । संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥६५॥
वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्षमाणां ततस्ततः । त्राणं किंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ॥६६॥
तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् । अवाक्शिराः प्रपतितो बहु मन्यस्व भामिनि ॥६७॥
यदि चेत्त्वं तु दर्पान्मां नाभिनन्दसि गर्विते । द्वौ मासावन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥६८॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः । उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥६९॥
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः । इक्ष्वाकुकुलनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ॥७०॥
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव । किंस्विद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ ॥७१॥
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना । न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥७२॥
अजेयः सत्यवादी च रणश्लाघी च राघवः । जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः ॥७३॥
जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः । विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणाम् ॥७४॥

ऐसी मृगशावाक्षी जानकी को मैंने किसी प्रकार प्राप्त किया ॥ ६० ॥ इस प्रकार रामचन्द्र की यशस्विनी धर्मपत्नी उस देवी को वहाँ देखकर उसी शिंशपा वृक्ष पर बैठा हुआ मैं उन्हें देखता रहा ॥ ६१ ॥ उसी समय काञ्ची (करधनी), नूपुर (बिछिया) शब्द से युक्त अत्यन्त गम्भीर हलहला घोष रावण के गृह में मैंने सुना ॥ ६२ ॥ तत्पश्चात् अत्यन्त घबराया हुआ अपने आकार प्रकार को छोटा करके मैं उसी शिंशपा वृक्ष के घने पत्तों में पक्षी के समान छिप गया ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् महाबली रावण तथा उसकी स्त्रियाँ जहाँ पर जानकी बैठी थी, वहाँ आईं ॥ ६४ ॥ राक्षसराज रावण को देखकर शोभनाङ्गी सीता अपनी जांघों तथा वक्षः-स्थल को अपनी दोनों भुजाओं से छिपाकर वहीं बैठ गई ॥ ६५ ॥ अत्यन्त घबराई तथा डरी हुई रक्षार्थ इधर उधर दृष्टिपात करती हुई तथा किसी को अपना रक्षक न देखती हुई काँपती हुई उस ॥ ६६ ॥ परमदुःखिता सीता के समक्ष नतमस्तक होकर उससे रावण यह बोला—तुम मेरा अधिक सम्मान करो ॥६७॥ हे मानगर्विते सीते ! यदि अभिमान के कारण मेरा सम्मान न करोगी तथा मेरी प्रार्थना को न स्वीकार करोगी तो दो मास के पश्चात् मैं तुम्हारे रक्त का पान करूँगा ॥ ६८ ॥ दुरात्मा रावण की इन बातों को सुनकर क्रुद्ध हुई जानकी यह उत्तम वचन बोली ॥ ६९ ॥ हे राक्षसाधम ! अमित पराक्रमी रामचन्द्र की भार्या इक्ष्वाकुवंशावतंस सम्राट् राजा दशरथ की पुत्रवधू मुझसे ॥ ७० ॥ इस प्रकार अभद्र बातें करते हुए तुम्हारी जिह्वा क्यों नहीं गिर गई। हे अनार्य ! तुम्हारा क्या पराक्रम है ? जो मेरे पति की अनुपस्थिति में मुझको ॥ ७१ ॥ उनसे छिपकर अपहृत किया। तुम राम की बराबरी नहीं कर सकते। तुम रामचन्द्र के दास होने में भी असमर्थ हो ॥ ७२ ॥ रामचन्द्र अजेय, सत्यवादी, वीर तथा संग्राम में प्रशंसनीय कर्म करने वाले हैं। रावण जानकी की इन कठोर बातों को सुनकर ॥ ७३ ॥ चिता की अग्नि की तरह सहसा क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। अपनी क्रूर आँखों से जानकी को घूरते हुए दक्षिण मुष्टि को उठाकर ॥ ७४ ॥ सीता को मारने के लिये तत्पर हो गया। उस समय स्त्रियों में हाहाकार मच गया। उन स्त्रियों के मध्य से उठकर

मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा । स्त्रीणां मध्यात्समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ॥७५॥
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः । उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ॥७६॥
सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम । मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी ॥७७॥
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च । सार्धं प्रभो रमस्वेह सीतया किं करिष्यसि ॥७८॥
ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः । प्रसाद्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ॥७९॥
याते तस्मिन् दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः । सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ॥८०॥
तृणवद्भाषितं तासां गणयामास जानकी । तर्जितं च तदा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ॥८१॥
वृथा गर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः । रावणाय शशंसुस्ताः सीताध्यवसितं महत् ॥८२॥
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः । परिक्षिप्य समन्तात्ता निद्रावशमुपागताः ॥८३॥
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता । विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ॥८४॥
तासां मध्यात्समुत्थाय त्रिजटा वाक्यमब्रवीत् । आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीता विनशिष्यति ॥८५॥
जनकस्यात्मजा साध्वी स्नुषा दशरथस्य च । स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ॥८६॥
रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च । अलमस्मान् परित्रातुं राघवाद्राक्षसीगणम् ॥८७॥
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते । तस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ॥८८॥
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् । प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ॥८९॥

उस दुरात्मा रावण की धर्मपत्नी ॥ ७५ ॥ मन्दोदरी ने उस रावण को रोका तथा उस कामी रावण से यह मधुर वाणी बोली ॥ ७६ ॥ हे इन्द्र के समान पराक्रमी ! सीता से आपका क्या प्रयोजन ? तुम मुझसे प्रेम करो । मुझसे विशेषता सीता में नहीं है ॥ ७७ ॥ देव, गन्धर्व, यक्ष कन्याओं के साथ तुम प्रेम करो । सीता से आपका क्या प्रयोजन ॥ ७८ ॥ पश्चात् वे समस्त स्त्रियां रावण को समझा बुझाकर अपने साथ महल में ले गईं ॥ ७९ ॥ राक्षसराज रावण के चले जाने पर विकराल मुख वाली वे राक्षसियाँ कठोर वाक्यों से जानकी को डांटने फटकारने लगीं ॥ ८० ॥ उनके तर्जन गर्जन को जानकी ने तृण के समान समझा । उन सबका तर्जन गर्जन सीता के सामने निरर्थक हो गया ॥ ८१ ॥ अपने गर्जन तर्जन को असफल देखकर मांसभक्षण करने वाली उन राक्षसियों ने रावण के समीप जाकर सीता की सम्पूर्ण गतिविधि को सुनाया ॥ ८२ ॥ पश्चात् हताश होकर दुःखी होती हुई राक्षसियों ने अपने उद्यम को छोड़ दिया और निद्रा के वशीभूत हो गईं ॥ ८३ ॥ उन सभी राक्षसियों के सो जाने पर पतिव्रता जानकी अत्यन्त दयनीय विलाप करते हुए चिन्तामग्न हो गई ॥ ८४ ॥ उन राक्षसियों के बीच से उठकर त्रिजटा नामक राक्षसी बोली—तुम सभी अपने आपको खाओ, सीता कभी नष्ट नहीं होगी ॥ ८५ ॥ क्योंकि यह साध्वी राजा जनक की पुत्री है तथा चक्रवर्ती सम्राट् राजा दशरथ की पुत्रवधू है। आज मैंने एक रोमाञ्चकारी अत्यन्त दारुण स्वप्न देखा है ॥ ८६ ॥ जो राक्षसों के विनाश तथा इसके पति रामचन्द्र की जय का सूचक है। क्रुद्ध हुए रामचन्द्र से हम लोगों को बचाने में यह जानकी समर्थ है ॥ ८७ ॥ इसलिये हम लोग सीता से रक्षा की प्रार्थना करें, मुझे यही रुचिकर प्रतीत होता है। यदि किसी दुःखिनी स्त्री को इस प्रकार स्वप्न दिखाई पड़े ॥ ८८ ॥ तो वह अनेक प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर उत्तम सुख को प्राप्त करती है । मिथिलेशकुमारी जानकी प्रणाम करने से अवश्य प्रसन्न हो जाती है ॥ ८९ ॥ अपने पति की विजय की बात को सुनने से

ततः सा ह्रीमती वाला भर्तुर्विजयहर्षिता । अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥९०॥
तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् । चिन्तयामास विक्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः ॥९१॥
संभाषणार्थं च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः । इक्ष्वाकूणां हि वंशस्तु ततो मम पुरस्कृतः ॥९२॥
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणपूजिताम् । प्रत्यभाषत मां देवी वाष्पैः पिहितलोचना ॥९३॥
कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुंगव । का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि ॥९४॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहमप्यब्रवं वचः । देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः ॥९५॥
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महावलः । तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनुमन्तमिहागतम् ॥९६॥
भर्त्राहं प्रेषितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा । इदं च पुरुषव्याघ्रः श्रीमान् दाशरथिः स्वयम् ॥९७॥
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात्तुभ्यं यशस्विनि । तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् ॥९८॥
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥
एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी । आह रावणमुत्साद्य राघवो मां नयत्विति ॥ ९९ ॥
प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् । राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥१००॥
अथ मामब्रवीत्सीता गृह्यतामयमुत्तमः । मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते ॥१०१॥
इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमद्भुतम् । प्रायच्छत्परमोद्विग्ना वाचा मां संदिदेश ह ॥१०२॥
ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः । प्रदक्षिणं परिक्रामन्निहाभ्युद्गतमानसः ॥१०३॥

हर्षित लज्जित हुई वह जानकी यह बोली कि यदि यह तुम्हारी बात सत्य हुई तो मैं तुम लोगों की हर प्रकार से रक्षा करूँगी ॥ ९० ॥ सीता की अत्यन्त दयनीय दारुण दशा को देखकर मैं शान्तिपूर्वक विचार करने लगा । किन्तु मेरा मन शान्त नहीं हुआ ॥ ९१ ॥ जानकी से सम्भाषण करने का उपाय मैंने निकाल लिया । जानकी के सामने मैंने इक्ष्वाकुवंश की प्रशंसा की ॥ ९२ ॥ राजर्षियों से प्रशंसित मेरी इन बातों को सुनकर आँखों में आँसू भर कर सीता मुझसे बोली ॥ ९३ ॥ तुम कौन हो ? किसके भेजे हो ? तथा हे वनवासी वीर ! तुम यहाँ किस प्रकार आए हो ? रामचन्द्र के साथ तुम्हें कैसे प्रीति हुई ? यह सम्पूर्ण बात तुम मुझसे कहो ॥ ९४ ॥ उसकी इन बातों को सुनकर मैंने यह उत्तर दिया। हे देवि ! तुम्हारे पति रामचन्द्र के सहायक अतुलपराक्रमी ॥ ९५ ॥ वनवासियों के राजा महाबली सुग्रीव हैं । मैं उनका भृत्य हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । यहाँ आए हुए मुझको ऐसा समझें ॥ ९६ ॥ शोभनकारी तुम्हारे पति रामचन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । नरकेसरी दशरथकुमार रामचन्द्र ने स्वयम् यह ॥ ९७ ॥ अंगूठी हे यशस्विनी ! अभिज्ञान (चिह्न) के लिये तुम्हारे पास भेजी है । हे देवी ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे लिये मैं क्या करूँ । राम लक्ष्मण के पास तुम्हारा क्या सन्देश ले जाऊँ ॥ ९८ ॥ जनकनन्दिनी सीता इस बात को सुनकर तथा सोच समझ कर बोली—रावण को समूल नष्ट कर रामचन्द्र मुझे यहाँ से ले जाएँ ॥९९॥ सर्वगुणसंपन्न आर्या देवी सीता को सिर झुका कर प्रणाम करके रामचन्द्र के मन को आह्लादित करने के लिये मैंने कोई चिह्न माँगा ॥ १०० ॥ पश्चात् सीता ने मुझसे यह कहा कि इस उत्तम मणि को लो, इस मणि को देखकर विशाल भुजावाले रामचन्द्र को मेरे दर्शन का पूर्ण विश्वास हो जायगा ॥ १०१ ॥ इस प्रकार कह कर सुन्दरी सीता ने उत्तम मणि को मुझे प्रदान किया तथा शीघ्रता पूर्वक मुझसे यह सन्देश कहा ॥ १०२ ॥ पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर सावधानी से मैंने राजकुमारी सीता को प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा की । यहाँ आने के लिये मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा था ॥ १०३ ॥ तत्पश्चात् जानकी ने कुछ

उक्तोऽहं पुनरेवेदं निश्चित्य मनसा तया । हनुमन् मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥१०४॥
यथा श्रुत्वैव न चिरात्तावुभौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥१०५॥
यद्यन्यथा भवेदेतद्द्वौ मासौ जीवितं मम । न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् ॥१०६॥
तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत । उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥१०७॥
ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसंनिभः । युद्धकाङ्क्षी वनं तच्च विनाशयितुमारभे ॥१०८॥
तद्भग्नं वनषण्डं तु भ्रान्तत्रस्तमृगद्विजम् । प्रतिबुद्धा निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः ॥१०९॥
मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन् समागम्य ततस्ततः । ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ॥११०॥
राजन् वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना । वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ॥१११॥
दुर्बुद्धेस्तस्य राजेन्द्र तव विप्रियकारिणः । वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ विलयं व्रजेत् ॥११२॥
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा भृशदुर्जयाः । राक्षसाः किंकरा नाम रावणस्य मनोऽनुगाः ॥११३॥
तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् । मया तस्मिन् वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥११४॥
तेषां तु हतशेषा ये ते गत्वा लघुविक्रमाः । निहतं च महत्सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥११५॥
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमाक्रमम् । तत्रस्थान् हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ॥११६॥
ललामभूतो लङ्कायाः स च विध्वंसितो मया । ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥११७॥

सोचकर पुनः कहा—हे हनुमान् ! मेरा सम्पूर्ण वृत्तान्त पुरुषोत्तम रामचन्द्र से कह देना ॥ १०४ ॥ जिन बातों को सुनकर अतिशीघ्र सम्राट् सुग्रीव के साथ राम, लक्ष्मण शीघ्र ही यहाँ आएँ वह उपाय करना ॥ १०५ ॥ यदि इसके कुछ विपरीत हुआ तो रामचन्द्र मुझे देख न सकेंगे तथा मैं अनाथों की तरह मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगी, क्योंकि मेरे जीवन के लिये दो महीने की अवधि दी गई है ॥ १०६ ॥ जानकी की करुणामय इन बातों को सुनकर मुझे अत्यन्त क्रोध आ गया। शेष कार्यों पर मैं विचार करने लगा ॥ १०७ ॥ उस समय मेरा शरीर बढ़कर विशाल हो गया । राक्षसों के साथ युद्ध करने की इच्छा से मैंने उस वन को नष्ट करना आरम्भ कर दिया ॥ १०८ ॥ उस वन के ध्वस्त हो जाने पर वहाँ के पशु पक्षी अत्यन्त व्याकुल हो गए तथा विकराल मुख वाली राक्षसियाँ जाग कर मुझे देखने लगीं ॥ १०९ ॥ उस प्रमदावन में मुझको देखकर इधर उधर से आई हुई राक्षसियों ने रावण के समीप जाकर यह निवेदन किया ॥ ११० ॥ हे महाबली राजन् ! आपके बल पराक्रम को न जानते हुए उस दुरात्मा वनवासी ने आपके उस दुर्गम वन को सर्वथा नष्ट कर दिया ॥ १११ ॥ वस्तुतः यह उसकी दुर्बुद्धिता है । हे राजन् ! आपका इस प्रकार का अप्रियाचरण करने वाला शत्रु है, उसको अवश्य वध दण्ड की आज्ञा दीजिये जिससे वह जीते जी यहाँ से लौटने न पाए ॥ ११२ ॥ राक्षसियों की इन बातों को सुनकर राक्षसराज रावण ने समरदुर्जय अनेक किङ्कर राक्षस सैनिकों को भेजा, जो रावण के सर्वथा आज्ञाकारी थे ॥ ११३ ॥ शूल, मुद्गर आदि शस्त्रधारी आए हुए उन अस्सी हजार राक्षस सैनिकों को मैंने उस वन में परिघ से मार डाला ॥ ११४ ॥ उन सैनिकों में जो दुर्बल या भीरु बच गए थे उन लोगों ने मेरे द्वारा सैनिकों के मारे जाने का समाचार रावण को जाकर सुनाया ॥ ११५ ॥ तत्पश्चात् यह निश्चय करके सौ खम्भोंवाली उनकी यज्ञशाला पर मैंने आक्रमण किया । वहाँ पर रहनेवाले राक्षसों को मारा तथा यज्ञशाला को नष्ट कर दिया ॥ ११६ ॥ उस लङ्का में सबसे रमणीय भवन को मैंने क्रोध में आकर नष्ट कर दिया । पश्चात् सेनापति प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को रावण ने आदेश दिया ॥११७॥

राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः । तमहं बलसंपन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥११८॥
परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् । तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान् महाबलान् ॥११९॥
पदातिबलसंपन्नान् प्रेषयामास रावणः । परिघेणैव तान् सर्वान्नयामि यमसादनम् ॥१२०॥
मन्त्रिपुत्रान् हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् । पञ्च सेनाग्रगाञ्शूरान् प्रेषयामास रावणः ॥१२१॥
तानहं सहसैन्यान् वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् । ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ॥१२२॥
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास रावणः । तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥१२३॥
सहसा खं समुत्क्रान्तं पादयोश्च गृहीतवान् । तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥१२४॥
तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः । तत इन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥१२५॥
व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् । तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुंगवम् ॥१२६॥
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागमम् । महता हि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ॥१२७॥
प्रेषितो रावणेनैव सह वीरैर्मदोत्कटैः । सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वसैन्यं चावमर्दितम् ॥१२८॥
ब्राह्मेणास्त्रेण स तु मां प्राबध्नाचातिवेगितः । रज्जुभिश्चाभिबध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥१२९॥
रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपानयन् । दृष्ट्वा संभाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥१३०॥
पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम् । तत्सर्वं च मया तत्र सीतार्थमिति जल्पितम् ॥१३१॥
तस्यास्तु दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो । मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् ॥१३२॥

विकराल रूप वाले, भयानक अनेकों राक्षसों के साथ अत्यन्त बलवान् रणविशारद उस जम्बुमाली राक्षस को ॥ ११८ ॥ मैंने घोर परिघास्त्र से मार डाला। जम्बुमाली की मृत्यु का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण ने मन्त्रियों के पुत्रों को ॥ ११९ ॥ पैदल विशाल सेना के साथ भेजा। परिघास्त्र से सबको ही मैंने यमपुरी में भेज दिया ॥ १२० ॥ संग्राम में मन्त्रिपुत्रों के मारे जाने का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण ने उस समय शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करने वाले पाँच सेनापतियों को भेजा ॥ १२१ ॥ उन सभी आए हुए पाँच सेनापतियों को उनके अनुयायियों के साथ मैंने शीघ्र ही मार डाला। पश्चात् रावण ने महाबली अपने पुत्र अक्ष को ॥ १२२ ॥ बहुत से अनुयायी राक्षसों के साथ संग्राम में भेजा। रणपण्डित मन्दोदरी के पुत्र कुमार अक्ष के ॥ १२३ ॥ उछलते हुए आकाश में उसके पैर को मैंने पकड़ लिया। पुनः उसको सैकड़ों बार घुमाकर मार डाला ॥ १२४ ॥ अक्ष कुमार के मारे जाने का समाचार सुनकर संक्रुद्ध रावण ने अपने द्वितीय पुत्र इन्द्रजित् को ॥ १२५ ॥ जो अत्यन्त बलवान् तथा रणदुर्मद था उसे संग्राम में जाने की आज्ञा दी। मैं सेना के समेत उस राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित् का ॥ १२६ ॥ संग्राम में ओज नष्ट कर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुआ। उस महाबली विशाल भुजा वाले इन्द्रजित् को बड़े विश्वास से ॥ १२७ ॥ मदोन्मत्त पराक्रमी सैनिकों के साथ रावण ने भेजा था। उसने मुझे अपराजित जानकर तथा अपनी सम्पूर्ण सेना को पराजित देखकर ॥ १२८ ॥ शीघ्रतापूर्वक ब्रह्मास्त्र से मुझको बाँध दिया, तत्पश्चात् अन्य राक्षसों ने मुझे रस्सियों से बाँध दिया ॥ १२९ ॥ मुझको लेकर वे सभी राक्षसराज रावण के समीप गए। मुझको देखकर दुरात्मा रावण ने मेरे साथ वार्तालाप आरम्भ किया ॥ १३० ॥ उसने लङ्का में आने तथा राक्षसों के वध का कारण पूछा। लङ्का में आना, राक्षसों का वध इन सबका कारण जानकी है, ऐसा मैंने कहा ॥ १३१ ॥ हे महाराज ! मैं उस जानकी के दर्शन की आकांक्षा से इस लङ्का में आया हूँ। वायु का मैं औरस पुत्र हूँ। जातितः मैं वनवासी हूँ, मेरा नाम हनुमान् है ॥ १३२ ॥ मुझे रामचन्द्र का दूत समझो, वनवासी राजा सुग्रीव का मैं सचिव

रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् । सोऽहं दूत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः ॥१३३॥
शृणु चापि समादेशं यदहं प्रब्रवीमि ते । राक्षसेश हरीशस्त्वां वाक्यमाह समाहितम् ॥१३४॥
सुग्रीवश्च महातेजाः स त्वां कुशलमब्रवीत् । धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच च ॥१३५॥
वसतो ऋश्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे । राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः ॥१३६॥
तेन मे कथितं राज्ञा भार्या मे रक्षसा हृता । तत्र साहाय्यमस्माकं कार्यं सर्वात्मना त्वया ॥१३७॥
मया च कथितं तस्मै वालिनश्च वधं प्रति । तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि ॥१३८॥
वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः । चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः ॥१३९॥
तेन वालिनमुत्पाट्य शरेणैकेन संयुगे । वानराणां महाराजः कृतः स प्लवतां प्रभुः ॥१४०॥
तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह । तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥१४१॥
क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवाय च । यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥१४२॥
वानराणां प्रभावो हि न केन विदितः पुरा । देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥१४३॥
इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया । मामैक्षत ततः क्रुद्धश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥१४४॥
तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा । मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना ॥१४५॥
ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः । तेन राक्षसराजोऽसौ याचितो मम कारणात् ॥१४६॥
नैवं राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः । राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संसेव्यते त्वया ॥१४७॥

हूँ। उसी रामचन्द्र का दूत बनकर मैं तुम्हारे समीप आया हूँ ॥ १३३ ॥ हे राक्षसराज रावण! वनवासिसम्राट् सुग्रीव ने जो तुम्हारे लिये हितकारी वचन कहा है, उसको मैं कहता हूँ, ध्यान से सुनो ॥ १३४ ॥ सबसे पूर्व महातेजस्वी सुग्रीव ने तुम्हारी कुशल पूछी है। पश्चात् धर्म, अर्थ, काम से परिपूर्ण ये हितकारी वचन कहे हैं ॥ १३५ ॥ नाना प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण ऋश्यमूक पर्वत पर निवास करते समय समरश्लाघी रामचन्द्र से मेरी मित्रता हो गई है ॥ १३६ ॥ उन्होंने मुझसे कहा है कि मेरी धर्मपत्नी राक्षस द्वारा हर ली गई है। उस विषय में सब प्रकार से आप मेरी सहायता करें ॥ १३७ ॥ मैंने भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा बाली के वध के विषय में उनसे कहा। उस कार्य में मेरी सहायता के लिये आप प्रतीज्ञा करें ॥ १३८ ॥ जिसका राज्य बाली ने अपहृत कर लिया है, उस राजा सुग्रीव के साथ अग्नि की साक्षी देकर राम, लक्ष्मण ने मैत्री की ॥ १३९ ॥ संग्राम में एक ही बाण से बाली को मारकर सम्पूर्ण वनवासियों के सम्राट् वनवासी वीर सुग्रीव को मित्र बनाया ॥१४०॥ इसलिये उस रामचन्द्र का भी कार्य सब प्रकार से हम लोगों को करना चाहिये। ऐसा निश्चय कर राजा सुग्रीव ने मुझे दूत बनाकर तुम्हारे समीप भेजा है ॥ १४१ ॥ जब तक सुग्रीव के वनवासी वीर लङ्का का विध्वंस नहीं करते उसके पूर्व तुम जानकी को ले आओ और उसे रामचन्द्र को समर्पित कर दो ॥ १४२ ॥ वनवासियों के इस अतुल प्रभाव को पूर्व से कोई जानता नहीं। संग्राम में देवताओं की सहायता के लिये भी ये उनके समीप जाते हैं ॥ १४३ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव ने तुम्हारे पास यह सन्देश भेजा है। ऐसा मैंने रावण से कह दिया। मेरे ऐसा कहने पर रोषभरे नेत्रों से मुझे देखा ॥ १४४ ॥ मेरे प्रभाव को न जानते हुए क्रूर दुरात्मा रावण ने मेरे वध दण्ड की आज्ञा दी ॥ १४५ ॥ उस समय उसके भाई महामति विभीषण ने मेरे दण्ड के विषय में रावण से प्रार्थना की ॥ १४६ ॥ हे राक्षसों के शिरोमणि! इस प्रकार का दण्ड उचित नहीं। इस निश्चय को आप छोड़ देवें। आपके द्वारा निर्धारित यह दण्ड राजनीतिशास्त्र के सर्वथा विरुद्ध है ॥ १४७ ॥ हे राक्षसराज

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस । दूतेन वेदितव्यं च यथार्थं हितवादिना ॥१४८॥
सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम । विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्तीह शास्त्रतः ॥१४९॥
विभीषणेनैवमुक्तो रावणः संदिदेश तान् । राक्षसानेतदेवास्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥१५०॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः । वेष्टितं शणवल्कैश्च जीर्णैः कार्पासजैः पटैः ॥१५१॥
राक्षसाः सिद्धसंनाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः । तदादहन्त मे पुच्छं निघ्नन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥१५२॥
बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः । न मे पीडा भवेत्काचिद्दिदृक्षोर्नगरीं दिवा ॥१५३॥
ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् । अघोषयन् राजमार्गे नगरद्वारमागताः ॥१५४॥
ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः । विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः ॥१५५॥
आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् । ततस्तन्नगरद्वारं वेगेनाप्लुतवानहम् ॥१५६॥
पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् । दहाम्यहमसंभ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ॥१५७॥
विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते । लङ्कायां कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥१५८॥
दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः । रामस्य हि महत्कार्यं मयेदं वितथीकृतम् ॥१५९॥
इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः । अथाहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ॥१६०॥
जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम् । ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ॥१६१॥

राजनीतिशास्त्र में दूतों के वधदण्ड को नहीं देखा गया है। अपने स्वामी के यथार्थ सन्देश को कहने का अधिकार दूतों को है ॥ १४८ ॥ हे अतुल पराक्रमी राजन्! महान् अपराध होने पर भी विरूपकरणादि शारीरिक दण्ड ही दूतों के लिये कहा गया है। शास्त्र की दृष्टि से उनका वध नहीं कहा गया है ॥ १४९ ॥ अपने भाई विभीषण के ऐसा कहने पर रावण ने उन राक्षसों को यही आदेश दिया कि इसके लाङ्गूल (राष्ट्रध्वज) को जला दो ॥ १५० ॥ पश्चात् रावण की बात सुनकर मेरे लाङ्गूल (दुण्ड सहित ध्वजा) को सब ओर से शण, वल्कल वसन, रेशमी तथा सूती वस्त्रों से लपेट दिया ॥ १५१ ॥ प्रबल विक्रमी राक्षसों ने मुझे दृढ़तापूर्वक बाँधकर मेरे राष्ट्रीय ध्वज में आग लगा दी और मुझे कठोर घूँसों से मारने लगे ॥ १५२ ॥ अनेक प्रकार का कष्ट देने पर भी मुझे कोई पीड़ा नहीं हुई, उनके द्वारा बाँधा जाना तथा राक्षसों के द्वारा उस नगरी को दिन में भी देखने की प्रबल इच्छा के कारण ॥ १५३ ॥ पश्चात् वे शूरवीर राक्षस मुझको बाँधकर तथा अग्नि को दीप्त कर राजमार्ग (सड़क) पर घोषणापूर्वक घुमाते हुए नगर के प्रधान द्वार पर आए ॥ १५४ ॥ उस अवस्था में मैंने अपने विशाल रूप को लघु बनाकर उस बन्धन से अपने को मुक्त कर लिया तथा स्वस्थ होकर वहाँ बैठ गया ॥ १५५ ॥ पश्चात् विशाल लोहे के परिघ को लेकर अपने पीछे आने वाले उन सभी राक्षसों को मार दिया। पुनः उस नगर के प्रधान द्वार पर मैं कूद कर चढ़ गया ॥ १५६ ॥ उस प्रज्वलित ध्वजदण्ड के द्वारा अट्टालिकाओं तथा नगरद्वार के साथ उस सम्पूर्ण लङ्का नगरी को बिना उद्वेग के मैंने इस तरह दग्ध कर दिया जैसे प्रलयाग्नि चराचर जगत् को भस्म करती है ॥ १५७ ॥ जानकी निश्चय ही नष्ट हो गई, लङ्का का कोई ऐसा स्थान अवशिष्ट नहीं रह गया जो जला न हो। क्योंकि सम्पूर्ण लङ्कानगरी भस्म हो चुकी है ॥ १५८ ॥ लङ्का को जलाते हुए मैंने जानकी को भी जला दिया अब इसमें सन्देह नहीं। रामचन्द्र के इस महान् कार्य को मैंने नष्ट कर दिया ॥ १५९ ॥ इस प्रकार की चिन्ता करते हुए मुझे अत्यन्त शोक सन्ताप हुआ। उसी क्षण चारणों के मुख से शुभाक्षरयुक्त इन वचनों को सुना ॥ १६० ॥ वे विस्मित होकर यह कह रहे थे कि जानकी नहीं जली। उनकी इन अद्भुत बातों को सुनकर मेरी ऐसी धारणा बन गई— ॥ १६१ ॥ लक्षणों से तो यही मालूम पड़ता है कि जानकी नहीं जली।

अदग्धा जानकीत्येव निमित्तैश्चोपलक्षिता । दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः ॥१६२॥
हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः । तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ॥१६३॥
ऋषिवाक्यैश्च सिद्धार्थैरभवं हृष्टमानसः । पुनर्दृष्ट्वा च वैदेहीं विसृष्टश्च तया पुनः ॥१६४॥
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः । प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥१६५॥
ततः पवनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम् । पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह ॥१६६॥
राघवस्य प्रभावेण भवतां चैव तेजसा । सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥१६७॥
एतत्सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् । अत्र यन्न कृतं शेषं तत्सर्वं क्रियतामिति ॥१६८

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमद्वृत्तानुकथनं नाम अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

अनन्तरकार्यप्ररोचनम्

एतदाख्याय तत्सर्वं हनुमान् मारुतात्मजः । भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥
सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च संभ्रमः । शीलमासाद्य सीताया मम च प्रवणं मनः ॥ २ ॥

क्योंकि सम्पूर्ण लाङ्गूल के प्रज्वलित होने पर भी अग्नि का प्रभाव मुझ पर नहीं हुआ ॥ १६२ ॥ मेरा अन्तःकरण प्रसन्न है। वायु भी सुगन्धयुक्त है। सफल देखे हुए इन निमित्तों के कारण तथा अन्य अनेकों शुभगुणों के कारण ॥ १६३ ॥ तथा ऋषियों के अनुभूत, अमोघ वाक्यों के कारण मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया और पुनः जानकी को जाकर देखा तथा उनकी आज्ञा से मैंने लौटने का विचार किया ॥ १६४ ॥ आप लोगों के दर्शन की आकांक्षा से उस अरिष्ट पर्वत पर चढ़कर लौटने का विचार किया ॥ १६५ ॥ तत्पश्चात् वायु, चन्द्र, सूर्य, सिद्ध, गन्धर्व आदि के मार्ग का अनुसरण करते हुए मैंने आप लोगों को यहाँ देखा ॥ १६६ ॥ रामचन्द्र की कृपा से आप लोगों के तेज तथा आशीर्वाद से सुग्रीव के इस महान् कार्य को मैंने संपादित किया ॥ १६७ ॥ अब तक जो कुछ मैंने काम किया था वह यथार्थ रूप से आप लोगों को बतला दिया। अब जो कार्य मुझसे शेष रह गया है उसको आप लोग करें ॥ १६८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् के द्वारा वृत्तान्त कथन' विषयक अट्ठावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ सर्ग

शेष कार्य के लिये प्रोत्साहित करना

पवनसुत हनुमान् इन सब बातों को कहकर भावी विचारणीय बातों को कहने लगे ॥ १ ॥ रामचन्द्र का उद्योग सफल हुआ, सोत्साह सुग्रीव का पराक्रम भी सफल हुआ। जानकी के शुद्धाचरण को देखकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया ॥ २ ॥ आर्या जानकी के समान जिसका शील (पवित्राचरण) हो वह

आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः । तपसा धारयेल्लोकान् क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ॥ ३ ॥
सर्वथातिप्रवृद्धोऽसौ रावणो राक्षसाधिपः । तस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥
न तदग्निशिखा कुर्यात्संस्पृष्टा पाणिना सती । जनकस्यात्मजा कुर्याद्यत्क्रोधकलुषीकृता ॥ ५ ॥
जाम्बवत्प्रमुखान् सर्वाननुज्ञाप्य महाहरीन् । अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ॥ ६ ॥
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ ॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् । तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ॥ ७ ॥
किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः । कृतास्त्रैः प्लवगैः शूरैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥ ८ ॥
अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् । सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥ ९ ॥
ब्राह्ममैन्द्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा । यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्षाणि संयुगे ॥१०॥
तान्यहं विधमिष्यामि निहनिष्यामि राक्षसान् । भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम् ॥११॥
मयातुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा । देवानपि रणे हन्यात्किं पुनस्तान्निशाचरान् ॥१२॥
सागरोऽप्यतियाद्वेलां मन्दरः प्रचलेदपि । न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥ १३ ॥
सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वकाः । अलमेको विनाशाय वीरो वालिसुतः कपिः ॥ १४ ॥
पनसस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः । मन्दरोऽपि विशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥१५॥

अपने तपोबल से लोकों को जीवित रख सकती है तथा क्रुद्ध होने पर भस्मीभूत कर सकती है ॥ ३ ॥ इस अर्थ में राक्षसराज रावण अत्यन्त भाग्यवान् है तथा उसकी तपश्चर्या उसका साथ दे रही है, जो सीता का स्पर्श करता हुआ भी नष्ट नहीं हुआ ॥ ४ ॥ हाथ के द्वारा स्पर्श करने पर अग्नि की ज्वाला वह काम नहीं कर सकती जो काम क्रोध करने पर जनकनन्दिनी जानकी कर सकती है ॥५॥ इस प्रकार यह कार्य होने पर तथा आप लोगों से निवेदन कर देने पर जाम्बवान् आदि मुख्य वनवासी वीरों की आज्ञा से हम लोगों के लिये यही उपयुक्त होगा कि जानकी को साथ लेकर हम लोग रामचन्द्र का दर्शन करें ॥ ६ ॥ मैं एक ही इस कार्य के लिये पर्याप्त हूँ कि राक्षसों के साथ रावण की सम्पूर्ण प्राणियों के साथ इस लङ्का को शीघ्र ही नष्ट कर दूँ ॥ ७ ॥ विजय की कामना रखने वाले शस्त्रास्त्रयुक्त पराक्रमी बलवान् आप जैसे शक्ति-शालियों की यदि सहायता मिल जाय तो फिर कहना ही क्या ? ॥ ८ ॥ मैं संग्राम में पुत्र और सहोदर बन्धुओं के साथ तथा अनुयायी सैनिकों के साथ रावण का वध करूँगा ॥ ९ ॥ यद्यपि ब्राह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, वायव्य तथा वारुणास्त्र ये सभी इन्द्रजित् के अस्त्र संग्राम में दुर्निरीक्ष्य अर्थात् देखने में अति भयङ्कर हैं ॥ १० ॥ तो भी मैं इन सभी अस्त्रों को नष्ट करूँगा तथा सभी राक्षसों का विध्वंस करूँगा। आप लोगों की आज्ञा से तथा अपने पराक्रम से रावण की सारी शक्ति को कुण्ठित कर दूँगा ॥ ११ ॥ मेरे द्वारा अतुल निरन्तर की गई पाषाण की वर्षा संग्राम में देवों को भी नष्ट कर सकती हैं, पुनः राक्षसों की तो बात ही क्या ? ॥ १२ ॥ समुद्र अपनी तटमर्यादा को छोड़ सकता है, मन्दराचल अपने स्थान से चल सकता है (उखड़ सकता है)। किन्तु संग्राम में शत्रु सेना सेनापति जाम्बवंन्त को विचलित नहीं कर सकती ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण राक्षस सैनिकों में जो मूर्धन्य कोटि के राक्षसवीर हैं, वीर बालिपुत्र अङ्गद अकेले ही उनके नाश के लिये पर्याप्त हैं ॥ १४ ॥ महात्मा नील तथा पनस के प्रबल प्रहार से मन्दराचल भी ध्वस्त हो सकता है, पुनः संग्राम में राक्षसों की तो बात ही क्या ? ॥ १५ ॥ आप ही लोग बतलाइये कि देव, असुर, यक्ष, गन्धर्व,

सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु । मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥१६॥
अश्विपुत्रौ महाभागावेतौ प्लवगसत्तमौ । एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे ॥१७॥
[पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ । अमृतप्राशिनावेतौ सर्ववानरसत्तमौ ॥१८॥
अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः । सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान् पुरा ॥१९॥
वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् । सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ प्लवङ्गमौ ॥२०॥]
एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् । लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥२१॥
मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुनः । राजमार्गेषु सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥२२॥
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥२३॥
अहं कोसलराजस्य दासः पवनसंभवः । हनुमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥२४॥
अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः । अधस्ताच्छिंशपावृक्षे साध्वी करुणमास्थिता ॥२५॥
राक्षसीभिः परिवृता शोकसंतापकर्शिता । मेघलेखापरिवृता चन्द्रलेखेव निष्प्रभा ॥२६॥
अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् । पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥२७॥
अनुरक्ता हि वैदेही रामं सर्वात्मना शुभा । अनन्यचित्ता रामे च पौलोमीव पुरंदरे ॥२८॥

नाग जाति वाले मनुष्यों में ऐसा कौन है जो संग्राम में सेनापति मैन्द तथा द्विविद का सामना कर सके ॥ १६ ॥ महावेग वाले वनवासी वीर अश्विपुत्र (युगल या जुड़वें) इन मैन्द तथा द्विविद के साथ संग्राम करने वाले किसी वीर को मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ १७ ॥ पितामह ब्रह्मा के वरदान पाने से वे दोनों अति अहङ्कारी हो गए । सम्पूर्ण वनवासियों में श्रेष्ठ वे दोनों अमृतपान की इच्छा रखते थे ॥ १८ ॥ इन दोनों अश्विकुमारों को प्रसन्न करने के लिये ब्रह्मा ने सब प्राणियों से अवध्य होने का वरदान दिया ॥ १९ ॥ वरदान के अहङ्कार से मदावलिप्त होकर उन दोनों ने महावीर, सम्पूर्ण सेना को परास्त कर देवताओं का अमृत पान कर लिया[1] ॥ २० ॥ सभी वनवासी वीर यहीं पर रह जायँ। संक्रुद्ध हुए केवल यही दो महावीर घोड़े, हाथी, रथ से परिपूर्ण सम्पूर्ण लङ्का नगरी का नाश करने में समर्थ हैं ॥ २१ ॥ मैंने अकेले ही नगर रक्षिका लङ्का नामक राक्षसी को मारा और सम्पूर्ण नगरी का भस्मीभूत किया । लङ्कानगरी की प्रधान सड़कों पर अपने नाम के साथ यह उद्घोष किया ॥ २२ ॥ अतुलपराक्रमी रामचन्द्र की जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो तथा रामचन्द्र से पालित राजा सुग्रीव की जय हो ॥ २३ ॥ मैं कोसलाधीश रामचन्द्र का दास हूँ। पवन का पुत्र हूं, मेरा नाम हनुमान् है। इसकी घोषणा मैंने सर्वत्र की ॥ २४ ॥ दुरात्मा रावण की अशोकवाटिका के मध्य में शिंशपावृक्ष के नीचे दुःखी, साध्वी जानकी बैठी है ॥ २५ ॥ वह मेघमाला से घिरी हुई चन्द्रकला की तरह प्रभाहीन तथा शोक-सन्ताप से अतिकृश, राक्षसियों से घिरी हुई है ॥ २६ ॥ राक्षसियों से घिरी होने पर भी सुन्दरी, पतिव्रता वह जानकी बलदर्पित रावण को कुछ भी नहीं गिनती ॥२७॥ शची (इन्द्राणी) जैसे इन्द्र में अनुराग रखती है उसी प्रकार जानकी रामचन्द्र में सब प्रकार से अनुरक्त है। रामचन्द्र के अतिरिक्त उसको अन्य किसी की चिन्ता नहीं ॥ २८ ॥ जो एक वस्त्र को धारण किये हुए थी, जिसका सम्पूर्ण शरीर

---

१. देवलोक में अमृतपान करना ये कथाएँ पुराणों में कई बार वृत्रासुर आदि के लिये आई हैं। यहाँ मैन्द और द्विविद का पद पाकर स्वर्गलोक में जाना इत्यादि भी पौराणिक कथा है। यह भी असंभव तथा पौराणिक प्रकरण होने के नाते प्रक्षिप्त है।

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च । शोकसंतापदीनाङ्गी सीता भर्तृहिते रता ॥२९॥
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः । राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने ॥३०॥
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा । अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥३१॥
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया । कथंचिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता ॥३२॥
ततः संभाषिता चैव सर्वमर्थं च दर्शिता । रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ॥३३॥
नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा । यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः ॥३४॥
निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति । सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता ॥३५॥
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता । एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा ॥३६॥
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्सर्वमुपपाद्यताम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अनन्तरकार्यप्ररोचनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः

अङ्गदजाम्बवत्संवादः

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत । अयुक्तं तु विना देवीं दृष्टवद्भिश्च वानराः ॥ १ ॥

धूल-धूसरित हो रहा था, अत्यन्त शोक से सन्तप्त अवसाद अङ्ग वाली, अपने पति के दर्शन के लिये उत्सुक ॥ २९ ॥ जो विकराल राक्षसियों के बीच में उनके द्वारा बार-बार धमकाई जा रही थी ऐसी सीता को मैंने प्रमदावन में देखा ॥ ३० ॥ जो एक वेणी को धारण किये हुए थी, जो अत्यन्त दीन तथा पतिचिन्ता में निमग्न थी, हिमकाल की कमलिनी की तरह निरन्तर भूमि पर बैठने के कारण जो कान्तिहीन हो रही थी ॥ ३१ ॥ रावण के द्वारा अवरुद्ध होने पर असफलमनोरथ होने के कारण जिसने मरने का निश्चय कर लिया है, इस प्रकार मृगनयनी जानकी को किसी प्रकार विश्वास दिलाया ॥ ३२ ॥ उसके साथ संभाषण किया तथा सम्पूर्ण अभिप्राय को उससे निवेदित किया। राम तथा सुग्रीव की परस्पर मैत्री का संवाद सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो गई ॥ ३३ ॥ सीता का सदाचार उसी प्रकार सुरक्षित तथा अखण्डित है तथा पति के प्रति उनकी वैसी ही उत्तम भक्ति है। इतना होने पर भी जानकी जो रावण का वध नहीं करती उसमें हेतु महात्मा रावण ही है अर्थात् उनकी तपश्चर्या है ॥ ३४ ॥ वस्तुतः रावण के वध में हेतु तो राम ही होंगे। स्वभाव से वह कृशाङ्गी अपने पति के वियोग से और कृश हो गई है ॥३५॥ जैसे प्रतिपत् तिथि में पढ़ने वाले छात्र की विद्या क्षीण हो जाती है। इस प्रकार महाभागा वह सीता अत्यन्त शोक से दुःखी है। ऐसी स्थिति में आप लोगों का जो कर्तव्य है उसे कीजिये ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'शेष कार्य के लिये प्रोत्साहित करना' विषयक उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

साठवां सर्ग

अङ्गद और जाम्बवान् का संवाद

पवनसुत हनुमान् की इन बातों को सुनकर बालिकुमार अङ्गद बोले। हे वनवासी वीरो ! जानकी को देख तो लिया किन्तु उस देवी के बिना ॥ १ ॥ महात्मा रामचन्द्र के समीप हम लोगों का जाना सर्वथा

समीपं गन्तुमस्माभी राघवस्य महात्मनः । अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ॥ २ ॥
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् । किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ॥ ३ ॥
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः । वायुसूनोर्बलेनैव दग्धा लङ्केति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदनम् । अयुक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातविक्रमैः ॥ ५ ॥
न हि नः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे । तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ॥ ६ ॥
जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे । सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः ॥ ७ ॥
तेष्वेवं हतवीरेषु राक्षसेषु हनूमता । किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥ ८ ॥
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये न्यस्याम जनकात्मजाम् । किं व्यलीकैस्तु तान् सर्वान् वानरान् वानरर्षभान् ॥ ९ ॥
वयमेव हि गत्वा तान् हत्वा राक्षसपुंगवान् । राघवं द्रष्टुमर्हामः सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ॥ १० ॥
तमेवं कृतसंकल्पं जाम्बवान् हरिसत्तमः । उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित् ॥ ११ ॥
नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद्ब्रवीषि महाकपे । विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम् ॥ १२ ॥
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता । कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् ॥ १३ ॥
राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन् स्वकम् । प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः ॥ १४ ॥
सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति । विफलं कर्म च कृतं भवेत्तुष्टिर्न तस्य च ॥ १५ ॥

अनुचित होगा । मैं भी अकेला राक्षसगणों से परिपूर्ण लङ्कापुरी को ॥ २ ॥ तथा महाबली रावण को मारने में समर्थ हूं । आप लोगों जैसे बलवान् वशी, शस्त्रास्त्रकुशल, विजय की कामना करने वाले, समर्थ वीर सैनिक साथ में हों तो कहना ही क्या । वायुपुत्र हनुमान् ने अकेले ही लङ्कापुरी को जला दिया, यह हम लोगों ने सुना ॥ ३-४ ॥ जनकनन्दिनी जानकी को देखा, पर उन्हें लाये नहीं, रामचन्द्र के समक्ष इस प्रकार निवेदन करना आप जैसे अतुलपराक्रमी वीरों के लिये मैं उपयुक्त नहीं समझता ॥ ५ ॥ हे वनवासी वीरो ! तुम लोगों के समान कूदने में तथा अतुल पराक्रम में देव, दैत्यमण्डल में कोई नहीं दिखाई देता ॥ ६ ॥ हम लोग सम्पूर्ण राक्षसमण्डल के साथ लङ्का को जीतकर, संग्राम में रावण को मारकर तथा जानकी को साथ लेकर सफल मनोरथ प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्र के पास चलेंगे ॥ ७ ॥ हनुमान् के द्वारा इस प्रकार राक्षसों के मारे जाने पर थोड़े से ही तो शेष बचे हैं । अब वहाँ काम ही क्या है ? केवल सीता को लेकर लौट आना है ॥ ८ ॥ राम तथा लक्ष्मण के मध्य में जानकी को हम लोग उपस्थित करेंगे । जानकी के बिना इन वनवासी वीरों का राम के समीप व्यर्थ में जाना, इससे क्या लाभ ? ॥ ९ ॥ हमी लोग उस लङ्का में जाकर उन वीर राक्षसों को मारकर लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र तथा सुग्रीव का दर्शन करें ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्ता जाम्बवान् राजकुमार अङ्गद के इस निश्चय से अति प्रसन्न हो गए तथा उनसे बोले ॥ ११ ॥ हे महाबुद्धिमान् वनवासी वीर ! आपका यह कथन मुझे बुद्धिपूर्वक नहीं प्रतीत हो रहा है । हम लोगों को केवल इस उत्तम दक्षिण दिशा में जानकी के अन्वेषण की ही आज्ञा मिली है ॥ १२ ॥ सीता को लाने की आज्ञा बुद्धिमान् रामचन्द्र तथा वनवासी राजा सुग्रीव किसी ने भी नहीं दी है । हम लोग लङ्का पर विजय प्राप्त कर यदि सीता को ले जायं और रामचन्द्र इसका न पसन्द करें तो ऐसी अवस्था में क्या होगा ? ॥ १३ ॥ नरकेसरी रामचन्द्र ने अपने वंश का उल्लेख करते हुए (यदि मैं रघुवंशी हूँ तो सकुटुम्ब रावण को मारकर सीता को लाऊँगा) सभी प्रधान वनवासियों के समक्ष रावण को जीतकर सीता को लाने की प्रतिज्ञा की है ॥ १४ ॥ सभी वनवासी वीरों के समक्ष की हुई इस प्रतिज्ञा को रामचन्द्र मिथ्या कैसे करेंगे ? हम लोगों का किया हुआ काम व्यर्थ होगा । इससे रामचन्द्र को सन्तोष न होगा ॥ १५ ॥ हे वनवासी वीरों !

वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद्वानरपुंगवाः । तस्माद्गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥१६॥
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥
न तावदेषा मतिरक्षमा नो यथा भवान् पश्यति राजपुत्र ।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा तथा भवान् पश्यतु कार्यसिद्धम् ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अङ्गदजम्बवत्संवादो नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः

मधुवनप्रवेशः

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः । अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥ १ ॥
प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः । महेन्द्राग्रं परित्यज्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ २ ॥
मेरुमन्दरसंकाशा मत्ता इव महागजाः । छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥
सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् । हनुमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥
राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः । समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥ ५ ॥

ऐसी अवस्था में हम लोगों का पराक्रम दिखलाना व्यर्थ होगा। इसलिये इस सम्पूर्ण घटना को निवेदन करने के लिये हम सभी लोग महातेजस्वी रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा सुग्रीव के पास चलें ॥ १६ ॥ हे राजकुमार ! आपने जैसा विचार व्यक्त किया है वह हम लोगों के लिये कोई कठिन नहीं है। किन्तु इस समाचार को सुनकर रामचन्द्र का जैसा आदेश है, उसी के अनुसार हम लोगों को काम करना चाहिये ॥ १७ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'अङ्गद और जाम्बवान् का संवाद'
विषयक साठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ सर्ग

मधुवन में प्रवेश

महामति जाम्बवान् के इस प्रकार कहने पर अङ्गदादि प्रमुख वनवासी वीर तथा महाबली हनुमान् ने उनकी बातों को स्वीकार किया ॥ १ ॥ वे सभी वनवासी वीर प्रसन्नचित्त होकर वायुपुत्र हनुमान् के सहित महेन्द्र पर्वत की चोटी से उतर कर चल पड़े ॥ २ ॥ मेरु, मन्दर पर्वत तथा मदोन्मत्त गजराज के समान विशालकाय, महाबली वे सभी वनवासी वीर वेगवती गति से इस प्रकार चल पड़े मानो आकाश मण्डल को आच्छादित कर रहे हैं ॥ ३ ॥ सभी ऋषि, मुनि, सिद्धादियों से पूजित महावेग वाले जितेन्द्रिय हनुमान् को प्रेम तथा आदर दृष्टि से देखते हुए वे सभी वनवासी वीर चले ॥ ४ ॥ कार्य की सिद्धि से जिनका उत्साह बढ़ा हुआ है, मनोरथ तथा यश की प्राप्ति से प्रसन्न वे सभी वनवासी वीर सावधान होकर राम के समीप चले ॥ ५ ॥ रामचन्द्र को प्रिय सन्देश सुनाने के लिये सभी उत्सुक हो रहे थे। वे सभी युद्ध प्रेमी

प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः । सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥ ६ ॥
प्लवमानाः खमुत्पत्य ततस्ते काननौकसः । नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम् ॥ ७ ॥
यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् । अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥ ८ ॥
यद्रक्षति महावीर्यः सदा दधिमुखः कपिः । मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः । वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्ततमं महत् ॥१०॥
ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् । कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥११॥
ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान् कपीन् । अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥१२॥
ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना । हरयः समपद्यन्त द्रुमान्मधुकराकुलान् ॥१३॥
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च । जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥१४॥
ततश्चानुमताः सर्वे संप्रहृष्टा वनौकसः । मुदिताः प्रेरिताश्चापि प्रनृत्यन्तोऽभवंस्ततः ॥१५॥

गायन्ति केचित्प्रणमन्ति केचिन्नृत्यन्ति केचित्प्रहसन्ति केचित् ।
पतन्ति केचिद्विचरन्ति केचित्प्लवन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ॥ १६ ॥
परस्परं केचिदुपाश्रयन्ते परस्परं केचिदुपाक्रमन्ते ।
द्रुमाद् द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ॥ १७ ॥
महीतलात्केचिदुदीर्णवेगा महाद्रुमाग्राण्यभिसंपतन्ति ।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति हसन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति ॥ १८ ॥

रामचन्द्र का उपकार करने के लिये उत्कण्ठित हो रहे थे ॥६॥ वे सभी वनवासी कूदते हुए अनेकों प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण नन्दन वन के समान सुशोभित उस वन में गए ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के लिये अत्यन्त मनोहर तथा सबके लिये दुष्प्रवेश्य सुग्रीव से रक्षित राजकीय 'मधुवन' नामक वह वन था ॥ ८ ॥ जिसकी सदा रक्षा दधिमुख नाम का एक वनवासी वीर करता था तथा जो वनवासी वीर राजा सुग्रीव का मामा था ॥ ९ ॥ वनवासी राजा सुग्रीव के अत्यन्त मनोहर उस महावन में जाकर वे सभी वनवासी महावीर (कार्यसिद्धि के कारण) उद्धत हो गए ॥ १० ॥ मधु के समान पीत (गौर) अङ्ग वाले वे सभी वनवासी वीर उस विशाल मधुवन को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गए तथा राजकुमार अङ्गद से मधु पीने की आज्ञा मांगी ॥ ११ ॥ पश्चात् राजकुमार अङ्गद ने जाम्बवान् आदि प्रधान वनवासी वीरों से सम्मति लेकर उन सभी को मधु पीने की आज्ञा दे दी ॥ १२ ॥ बुद्धिमान् बालिपुत्र राजकुमार अङ्गद से आज्ञा पाने पर वे सभी वनवासी वीर मधु छत्तों से परिपूर्ण उन वृक्षों पर पहुँचे ॥ १३ ॥ सुगन्धियुक्त मूल, फल खाते हुए अत्यन्त हर्ष में आकर सभी मदोन्मत्त हो गए ॥ १४ ॥ पश्चात् वे सभी प्रसन्न वनवासी वीर अङ्गद के अनुमोदन करने पर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्हीं के समक्ष जहाँ तहाँ नाचने लगे ॥ १५ ॥ कोई गाने लगे, कोई हंसने लगे, कोई नाचने लगे, कोई एक दूसरे को प्रणाम करने लगे, कोई भूमि पर गिरने लगे, कोई इधर उधर घूमने लगे, कोई कूदने लगे, कोई जोर-जोर से चिल्लाने लगे ॥ १६ ॥ कोई आपस में एक दूसरे से मिलते हैं, कोई एक दूसरे से विवाद करते हैं, कोई एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदते हैं, कोई वृक्षों से नीचे गिरते हैं ॥ १७ ॥ कोई-कोई वनवासी पृथिवी से अत्यन्त वेग पूर्वक विशाल वृक्षों पर चढ़ जाते हैं। गान करने वाले के समीप कोई हंसते हुए जाते हैं या कहीं हंसते हुए के पास रोते हुए जाते हैं ॥ १८ ॥ किसी दुःखी होते हुए के पास कोई गर्जन करता हुआ जाता है। इस प्रकार वह सम्पूर्ण

रुदन्तसन्यः प्रणुदन्नुपैति समाकुलं तत्कपिसैन्यमासीत् ।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो न चात्र कश्चिन्न बभूव तृप्तः ॥ १९ ॥
ततो वनं तैः परिभक्ष्यमाणं द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान् ।
समीक्ष्य कोपाद्दधिवक्त्र-नामा निवारयामास कपिः कपींस्तान् ॥ २० ॥
स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो वनस्य गोप्ता हरिवीरवृद्धः ।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥ २१ ॥
उवाच कांश्चित्परुषाणि धृष्टमसक्तमन्यांश्च तलैर्जघान ।
समेत्य कैश्चित्कलहं चकार तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥ २२ ॥
स तैर्मदात्संपरिवार्य वाक्यैर्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः ।
प्रधर्षितस्त्यक्तभयैः समेत्य प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥ २३ ॥
नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तस्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः ।
मदात्कपिं तं कपयः समग्रा महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे मधुवनप्रवेशो नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः

दधिमुखखिलीकारः

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनुमान् वानरर्षभः । अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥ १ ॥

सैन्यवर्ग अव्यवस्थित तथा अस्त व्यस्त हो रहा था । उस सेना में अब ऐसा कोई व्यक्ति शेष न रहा जो मदोन्मत्त तथा अहङ्कार से परिपूर्ण न हो गया हो ॥ १९ ॥ पश्चात् हर प्रकार से सुरक्षित उस वन के पत्र पुष्पों से हीन उन वृक्षों को देखकर दधिमुख नामक वनरक्षक ने उन सभी वनवासी सैनिकों को रोका ॥ २० ॥ उमङ्ग में आए हुए वे वनवासी सैनिक वनरक्षक वयोवृद्ध दधिमुख को डराने धमकाने लगे । उग्र विचार वाला वनरक्षक दधिमुख वनरक्षा का उपाय करने लगा ॥ २१ ॥ उस वनरक्षक ने किन्हीं को निर्भय होकर कठोर शब्द कहा तथा किन्हीं को तमाचे से मारा । कुछ लोगों के साथ वह कलह करने लगा और किन्हीं को वह समझाने लगा ॥ २२ ॥ अत्यन्त मदोद्धत होने के कारण दधिमुख के द्वारा रोके जाने पर भी वे नहीं रुके । भय को छोड़कर वे सभी उसको कष्ट देने लगे । राजदण्ड से निर्भय होकर कोई उसको खींचने लगे ॥ २३ ॥ नखों के द्वारा खरोंचते हुए, दाँतों से काटते हुए, तमाचे तथा पैर के प्रहार से उस दधिमुख वनरक्षक को मृतक के समान बनाते हुए उन वनवासी सैनिकों ने सब तरफ से उस वन को फल फूल से रहित कर दिया ॥ २४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'मधुवन में प्रवेश' विषयक इकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

बासठवाँ सर्ग

दधिमुख की दुर्गति

वनवासी वीर हनुमान् उन सभी वनवासी सैनिकों से बोले—हे वनवासी सैनिकों ! तुम लोग निर्भय होकर मधु सेवन करो ॥ १ ॥ आप लोगों के कार्य में बाधा डालने वाले विरोधियों को मैं स्वयं रोकूँगा ।

अहमावारयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः । श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २ ॥
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु । अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ॥ ३ ॥
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम् । अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ॥ ४ ॥
साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन् । पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ॥ ५ ॥
जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेगा इव द्रुतम् । ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य वीर्यतः ॥ ६ ॥
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम् । पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ॥ ७ ॥
उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान् समागतान् । ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान् मधुवने तदा ॥ ८ ॥
मधूनि द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते । पिबन्ति सहिताः सर्वे निघ्नन्ति स्म तथापरे ॥ ९ ॥
केचित्पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः । मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः ॥१०॥
अपरे वृक्षमूले तु शाखां गृह्य व्यवस्थिताः । अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते ॥११॥
उन्मत्तभूताः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् । क्षिपन्ति च तदान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे ॥१२॥
केचित्क्ष्वेलां प्रकुर्वन्ति केचित्कूजन्ति हृष्टवत् । हरयो मधुना मत्ताः केचित्सुप्ता महीतले ॥१३॥
कृत्वा किंचिद्धसन्त्यन्ये केचित्कुर्वन्ति चेतरत् । कृत्वा किंचिद्वदन्त्यन्ये केचिद्बुध्यन्ति चेतरत् ॥१४॥
येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु । तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः ॥१५॥
जानुभिस्तु प्रकृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः । अब्रुवन् परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः ॥१६॥

हनुमान् की इस बात को सुनकर वनवासियों में श्रेष्ठ अङ्गद ॥ २ ॥ प्रसन्नचित्त होकर यह बोले—सभी वनवासी सैनिक मधुपान करें। सफलमनोरथ हनुमान् के अनुचित वाक्य का भी मैं अनुमोदन करता हूँ। फिर इस उचित बात का तो कहना ही क्या। वे सभी वनवासी सैनिक अङ्गद के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर ॥ ३–४ ॥ साधु-साधु (बहुत ठीक बहुत ठीक) कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। वनवासि-श्रेष्ठ अङ्गद की इस प्रकार प्रशंसा करके वे सभी सैनिक ॥ ५ ॥ नदी वेग के समान अतिशीघ्र उस वन में पहुँचे। अपनी शक्ति से वन रक्षकों को दबा कर मधुवन में प्रवेश कर गए ॥ ६ ॥ मैथिली के दर्शन और उनके वृत्तान्त को सुनने से तथा राजकुमार अङ्गद की आज्ञा मिलने से अत्यन्त धृष्ट उन सभी सैनिकों ने स्वादु मधु का पान किया तथा रसवाले फलों को खाया ॥ ७ ॥ मधु पीने वाले तथा फल खाने वाले उन वनवासियों को रोकने के लिये आए हुए वनरक्षकों को उछल-उछल कर मारने लगे ॥ ८ ॥ दलबद्ध कुछ सैनिक अपने बाहुबल से द्रोणमात्र मधु को इकट्ठा करके पान करने लगे और कुछ वनरक्षकों को मारने लगे ॥ ९ ॥ मधु के समान पीतवर्ण वाले कुछ सैनिक मधु पीकर शेष को इधर-उधर फेंकने लगे। कोई उन्मत्त होकर पान से बचे हुए मधु को एक दूसरे पर फेंकने लगे ॥ १० ॥ कुछ वृक्षों की शाखाओं को पकड़कर बैठ गए तथा कुछ वनवासी सैनिक अत्यन्त मद की ग्लानि से पत्तों को बिछाकर सो गए ॥ ११ ॥ तथा कुछ मधुपान से उन्मत्त सैनिक प्रसन्नतापूर्वक परस्पर एक दूसरे को उठाकर फेंकने लगे तथा कुछ चलते हुए लड़खड़ाने लगे ॥ १२ ॥ कुछ उन्मत्तों के समान क्रीडा करने लगे तथा कुछ प्रसन्न होकर कुछ शब्द करने लगे। कुछ वनवासी मधुपान से मत्त होकर पृथिवी पर सो गए ॥ १३ ॥ कोई निर्भय होकर हँसने लगे तथा कोई रोने लगे। कोई काम करके बोलने लगे, कोई उस काम को और ही समझने लगे ॥ १४ ॥ जो कोई भी मधु का रक्षा करने वाले दधिमुख के भृत्य थे वे भी भयंकर वनवासियों से भर्त्सना-पूर्वक रोके जाने पर दसों दिशाओं में भाग गए ॥ १५ ॥ और कुछ घुटनों को पकड़कर इधर-उधर फेंक दिये गए। पश्चात् वे अपने स्वामी दधिमुख के पास जाकर उद्विग्न हुए यह बोले ॥ १६ ॥ हनुमान् की

हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् । वयं च जानुभिः कृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः ॥१७॥
ततो दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः । हतं मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान् हरीन् ॥१८॥
इहागच्छत गच्छामो वानरान् बलदर्पितान् । बलेन वारयिष्यामो मधु भक्षयतो वयम् ॥१९॥
श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः । पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥२०॥
मध्ये चैषां दधिमुखः प्रगृह्य तरसा तरुम् । समभ्यधावद्वेगेन ते च सर्वे प्लवङ्गमाः ॥२१॥
ते शिलाः पादपांश्चापि पर्वतांश्चापि वानराः । गृहीत्वाभ्यगमन् क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥२२॥
ते स्वामिवचनं वीरा हृदयेष्ववसज्य तत् । त्वरया ह्यभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥२३॥
वृक्षस्थांश्च तलस्थांश्च वानरान् बलदर्पितान् । अभ्यक्रामंस्ततो वीराः पालास्तत्र सहस्रशः ॥२४॥
अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुंगवाः । अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखास्तदा ॥२५॥
तं सवृक्षं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् । आर्यकं प्राहरत्तत्र बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥२६॥
मदान्धश्च न वेदैनमार्यकोऽयं ममेति सः । अथैनं निष्पिपेषाशु वेगवद्वसुधातले ॥२७॥
स भग्नबाहूरुभुजो विह्वलः शोणितोक्षितः । मुमोह सहसा वीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥२८॥
स कथंचिद्विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः । उवाचैकान्तमाश्रित्य भृत्यान् स्वान् समुपागतान् ॥२९॥
एते तिष्ठन्तु गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः । सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥३०॥

आज्ञा से उन सैनिकों ने सम्पूर्ण मधुवन को नष्ट कर डाला, और हम लोगों को घुटने पकड़कर इधर-उधर फेंक दिया ॥ १७ ॥ मधुवन का रक्षक दधिमुख वनवासी वन को नष्ट हुआ देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और आए हुए अपने भृत्यों को उसने आश्वासन दिया ॥ १८ ॥ आओ, हम लोग चलें। इस उत्तम मधु के पान करने वाले अतिगर्वित वनवासी सैनिकों को बलपूर्वक रोकें ॥ १९ ॥ अपने स्वामी दधिमुख की इन बातों को सुनकर वे वनरक्षक उसके साथ पुनः उस मधुवन में गए ॥ २० ॥ उन वनरक्षकों के बीच में एक विशाल वृक्ष को लेकर तथा उनके भृत्य फल खाने वाले सैनिकों पर टूट पड़े ॥ २१ ॥ वे सभी पत्थर की चट्टानों, वृक्ष और पाषाणखंडों को लेकर वहाँ पहुँच गये जहाँ पर हनुमान्, अङ्गद आदि अपने सैनिकों के साथ उपस्थित थे ॥ २२ ॥ वे वनरक्षक अपने स्वामी दधिमुख के वचनों को हृदय में रखते हुए साल, ताल तथा शिलारूपी आयुधों को लेकर शीघ्रतापूर्वक दौड़ पड़े ॥ २३ ॥ बल से दर्पित वृक्षों पर, भूमितल पर बैठे हुए उन सैनिकों पर हजारों वीर वनपाल टूट पड़े ॥ २४ ॥ दधिमुख को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर हनुमान् प्रभृति श्रेष्ठ वनवासी सैनिक अत्यन्त क्रोध करके उसकी ओर दौड़े ॥ २५ ॥ विशाल भुजा वाले महाबली दधिमुख को हाथ में वृक्ष लेकर आते हुए देखकर कुपित राजकुमार अङ्गद ने उन पर प्रहार किया ॥ २६ ॥ मदान्ध राजकुमार अङ्गद ने यह दधिमुख मेरा आदरणीय व्यक्ति है, ऐसा न समझ कर कृपा नहीं की। वह वेगपूर्वक उनको भूमि पर घसीटने लगा ॥ २७ ॥ घसीटने पर जिसके बाहु और मुख छिल गए हैं तथा जिसके शरीर से रक्त स्रवित हो रहा है, इस प्रकार का वनवासी महावीर वह वनपाल दधिमुख विह्वल होता हुआ थोड़ी देर के लिये मूर्छित हो गया ॥ २८ ॥ वह वनवासी वीर दधिमुख उन वनवासी सैनिकों से किसी प्रकार मुक्त होकर एकान्त में आए हुए अपने सहायक सेवकों से यह बोला ॥ २९ ॥ आओ हम सब लोग वहाँ चलें, जहाँ रामचन्द्र के साथ हमारे स्वामी वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव हैं ॥ ३० ॥ वन के ध्वंस का सभी दोष अङ्गद पर डालते हुए राजा

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्यामि पार्थिवे। अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥३१॥
इष्टं मधुवनं ह्येतत्सुग्रीवस्य महात्मनः। पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥३२॥
स वानरानिमान् सर्वान् मधुलुब्धान् गतायुषः। घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ॥३३॥
वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिभाविनः। अमर्षप्रभवो रोषः सफलो नो भविष्यति ॥३४॥
एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान् महाबलः। जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥३५॥
निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः। सहस्रांशुसुतो धीमान् सुग्रीवो यत्र वानरः ॥३६॥
रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च। समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥३७॥
संनिपत्य महावीर्यः सर्वैस्तैः परिवारितः। हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥३८॥
स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्। सुग्रीवस्य शुभौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दधिमुखखिलीकारो नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः

सुग्रीवहर्षः

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः। दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

सुग्रीव को सुनावेंगे। अत्यन्त अमर्षी राजा हम लोगों की बातों को सुनकर सभी वनवासी सैनिकों को दण्डित करेंगे ॥ ३१ ॥ यह मधुवन महात्मा सुग्रीव को अत्यन्त प्रिय है। उनके पिता-पितामह के समय से ही चला आ रहा है। देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्गमनीय है ॥ ३२ ॥ शुभचिन्तक तथा मित्रों के साथ आयुक्षीण तथा मधु के लोभी इन सभी वनवासी सैनिकों को राजा सुग्रीव घोर दण्ड देंगे ॥ ३३ ॥ राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाले दुरात्मा वे सभी वनवासी सैनिक बाँधकर दण्डित होंगे। उस समय अमर्ष के द्वारा उत्पन्न हुआ हम लोगों का क्रोध शान्त होगा ॥ ३४ ॥ महाबली दधिमुख अपने सहायक वनपालों से इस प्रकार कहकर उनको साथ लेते हुए सहसा सुग्रीव के समीप चल पड़े ॥ ३५ ॥ अल्पकाल में ही वे सभी वनपाल वहाँ पहुँच गए जहाँ वनवासी बुद्धिमान् सूर्यपुत्र सुग्रीव रहते थे ॥ ३६ ॥ राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को देखकर गगनचुम्बी पर्वत शिखर से समतल भूमि पर उतरे ॥ ३७ ॥ वनपालों के स्वामी महावीर वनवासी दधिमुख ने अपने सम्पूर्ण मण्डल से घिरे हुए नीचे उतरकर ॥ ३८ ॥ अत्यन्त दीनवदन हाथ जोड़कर सुग्रीव के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'दधिमुख की दुर्गति' विषयक बासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

सुग्रीव की प्रसन्नता

सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए वनवासी दधिमुख को देखकर उद्विग्न हृदय वनवासी सुग्रीव यह बोले ॥ १ ॥ उठो, उठो। किस कारण तुम चरणों में झुके हो। तुम्हें अभय प्रदान करता हूँ। जो बात सत्य

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात्त्वं पादयोः पतितो मम। अभयं ते भयं वीर सर्वमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥
स तु विश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना। उत्थाय सुमहाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
नैवर्क्षरजसा राजन्न त्वया नापि वालिना। वनं निसृष्टपूर्वं हि भक्षितं तच्च वानरैः ॥ ४ ॥
एभिः प्रधर्षिताश्चैव वानरा वनरक्षिभिः। मधून्यचिन्तयित्वेमान् भक्षयन्ति पिबन्ति च ॥ ५ ॥
शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे। निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुकुटिं दर्शयन्ति हि ॥ ६ ॥
इमे हि संरब्धतरास्तथा तैः संप्रधर्षिताः। वारयन्तो वनात्तस्मात्क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः ॥ ७ ॥
ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभ। संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः प्रविचालिताः ॥ ८ ॥
पाणिभिर्निहताः केचित्केचिज्जानुभिराहताः। प्रकृष्टाश्च यथाकामं देवमार्गं च दर्शिताः ॥ ९ ॥
एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि। कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैः प्रभक्ष्यते ॥१०॥
एवं विज्ञाप्यमानं तु सुग्रीवं वानरर्षभम्। अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥११॥
किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः। कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना। लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥१३॥
आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः। अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥१४॥
विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः। नैषामकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ॥१५॥
आगतैश्च प्रमथितं यथा मधुवनं हि तैः। धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं च वानरैः ॥१६॥

है उसको कहो ॥ २ ॥ महात्मा सुग्रीव से इस प्रकार आश्वासित होने पर महाबुद्धिमान् वह दधिमुख इस प्रकार बोला ॥ ३ ॥ ऋक्षराज के दिये हुए हुए उस वन को बाली तथा आपने सुरक्षित रखा था। आज उसी वन को वनवासी सैनिकों ने नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥ वनवासियों को नाना प्रकार से मना करने पर भी इनकी बातों को अनसुनी करते हुए वन के फल खा गए तथा मधु पी गए ॥ ५ ॥ उनके खाने पीने से जो अवशिष्ट रहता है उसको भी वे फेंक देते हैं। मना करने पर वे आँखें दिखलाते हैं ॥ ६ ॥ हमारे वनपाल रक्षक प्रयत्नशील होकर उन सैनिकों को रोकने के लिये समझाने तथा धमकाने लगे किन्तु क्रोध में आकर उन्होंने मेरे वनरक्षकों को मधुवन से निकाल दिया ॥ ७ ॥ अनेकों लाल नेत्र वाले वनवासी सैनिकों के द्वारा मेरे सभी वनवासी धमकाए गए ॥ ८ ॥ किसी को हाथों से मारा, किसी को घुटनों से मारा। कई वनरक्षकों को जमीन पर घसीटा गया तथा बहुतों को उठाकर इधर उधर फेंक दिया ॥ ९ ॥ इस प्रकार आप जैसे स्वामी के होते हुए मेरे सभी वनपाल मारे गए, पीटे गए। सम्पूर्ण मधुवन के फल और मधु को वे लोग स्वच्छन्द होकर खा गए और पी गए ॥ १० ॥ वनवासियों के राजा सुग्रीव के समीप उसके इस प्रकार निवेदन करने पर शत्रुघाती वीर लक्ष्मण ने उनसे पूछा ॥ ११ ॥ हे राजन्! यह वनरक्षक वनवासी किस निमित्त से यहाँ आया है? किस कार्य को लक्ष्य कर यह दुःखित होते हुए आपसे निवेदन कर रहा है ॥ १२ ॥ महात्मा लक्ष्मण के ऐसा पूछने पर वाक्यविशारद राजा सुग्रीव उनसे यह बोले ॥ १३ ॥ हे आर्य लक्ष्मण! वनपाल दधिमुख ने ये बातें कही हैं कि अङ्गदादि प्रमुख वनवासी सैनिकों ने मधुवन के मधु को पी लिया है ॥ १४ ॥ प्रतीत होता है कि दक्षिणदिशा को खोजकर वे वनवासी सैनिक आ गए हैं। असफल मनोरथ सैनिकों का इस प्रकार दुस्साहस नहीं हो सकता ॥ १५ ॥ यदि सफलमनोरथ होकर उन लोगों ने इस सम्पूर्ण मधुवन को उजाड़ा है, तो यह उनके लिये उपयुक्त है ॥ १६ ॥ इस प्रकार उन लोगों ने मधुवन को जो नष्ट किया है, इससे यह

वनं यदभिपन्नं तैः साधितं कर्म वानरैः। दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥१७॥
न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः। कार्यसिद्धिर्मतिश्चैव तस्मिन् वानरपुङ्गवे ॥१८॥
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्। जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः ॥१९॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा। अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल ॥२०॥
वारयन्तश्च सहितास्तथा जानुभिराहताः। एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह ॥२१॥
नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः। दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः ॥२२॥
अभिगम्य तथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः। न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ ॥२३॥
वनं दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः। ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः ॥२४॥
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम्। प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥२५॥
श्रुत्वा दधिमुखस्येदं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च। वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥२६॥
प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः। मर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ॥२७॥
गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि। शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान्हनुमत्प्रमुखान्कपीन् ॥२८॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधानाञ्शाखामृगांस्तान् मृगराजदर्पान्।
द्रष्टुं कृतार्थान् सह राघवाभ्यां श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥ २९ ॥

प्रतीत होता है कि इन लोगों ने कार्य को सिद्ध कर लिया है। देवी जानकी को हनुमान् ने ही देखा होगा, और किसी ने नहीं। यह निस्सन्देह है ॥ १७ ॥ हनुमान् को छोड़कर इस कार्यसिद्धि की क्षमता और किसी में नहीं है। इस प्रकार कार्यसिद्धि की क्षमता वीर हनुमान् में ही है ॥ १८ ॥ इस प्रकार का उद्योग, पराक्रम तथा शास्त्रज्ञान भी हनुमान् में ही है। जिस दल के नेता जाम्बवान् तथा महाबली अङ्गद हों ॥ १९ ॥ और हनुमान जैसे व्यक्ति जहाँ संमतिदाता हों वहाँ कार्यसिद्धि के अतिरिक्त और कोई गति ही नहीं। अङ्गदादि प्रमुख वीरों ने मेरे मधुवन को नष्ट कर दिया है ॥ २० ॥ वनरक्षकों के निषेध करने पर संघटित होकर उन सैनिकों ने घुटने मुष्टिकादि के द्वारा उनको मारा है। इसलिये यह मधुर संवाद सुनाने के लिये यहाँ आया है ॥ २१ ॥ यह दधिमुख नाम का मेरा रक्षक विख्यात प्रबलपराक्रमी है। हे विशाल भुजा वाले लक्ष्मण! इन लोगों ने जानकी को अवश्य देख लिया है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार इन वनवासी सैनिकों ने मधुपान किया है बिना जानकी के देखे, हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ॥ २३ ॥ हमारे द्वारा रक्षित इस श्रेष्ठवन को इस प्रकार उजाड़ नहीं सकते। इस प्रकार सुग्रीव के मुख से निकली हुई कर्णसुखावह इस वाणी को सुनकर लक्ष्मण के सहित धर्मात्मा रामचन्द्र प्रसन्न हो गए। महायशस्वी रामचन्द्र तथा लक्ष्मण अति प्रसन्न हुए ॥ २४-२५ ॥ दधिमुख के द्वारा इन बातों को सुनकर अति प्रसन्न होते हुए राजा सुग्रीव उस वनरक्षक से पुनः इस प्रकार बोले ॥ २६ ॥ सफलमनोरथ जिन लोगों ने इस प्रकार वन के मधु और फल को खाया पिया है, इससे मैं अति प्रसन्न हूँ। कार्यसिद्धि करने वाले लोगों की धृष्टतापूर्वक चेष्टा को मैंने क्षमा कर दिया ॥ २७ ॥ तुम शीघ्रतापूर्वक यहाँ से लौट जाओ और पूर्ववत् तुम्हीं वन की रक्षा करो और हनुमान् आदि मुख्य सैनिकों को शीघ्र भेज दो ॥ २८ ॥ राम, लक्ष्मण के साथ सफलमनोरथ उन वनवासी वीरों से सीता के विषय में जानकारी करने के लिये तथा जानकी के उद्धार सम्बन्धी वार्तालाप करने के लिये सिंह के समान दर्पित हनुमान् आदि वीर वनवासी सैनिकों को मैं शीघ्र देखना चाहता हूँ ॥ २९ ॥

प्रीतिस्फीताक्षौ संप्रहृष्टौ कुमारौ दृष्ट्वा सिद्धार्थौ वानराणां च राजा ।
अङ्गैः संहृष्टैः कर्मसिद्धिं विदित्वा बाह्वोरासन्नां सोऽतिमात्रं ननन्द ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सुग्रीवहर्षो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः

हनूमदाद्यागमनम्

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः । राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥ १ ॥
स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ । वानरैः सहितः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥ २ ॥
स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः । निपत्य गगनाद्भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥
स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान् । विमदानुत्थितान् सर्वान् मेहमानान् मधूदकम् ॥ ४ ॥
स तानुपागमद्वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम् । उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥ ५ ॥

वनवासियों के सम्राट् सुग्रीव विक्षिप्त नेत्र अत्यन्त प्रसन्न सिद्धमनोरथ के समान उन दोनों राजकुमारों को देखकर काम की सफलता अपनी मुट्ठी में आ गई है इस बात को जानकर रोमाञ्चित अङ्गों से अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ३० ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'सुग्रीव की प्रसन्नता'
विषयक तिरसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ सर्ग

हनुमान् आदि का आगमन

राजा सुग्रीव के इस प्रकार कहने पर दधिमुख वनपाल अत्यन्त प्रसन्न हो गया । पश्चात् रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को उसने प्रणाम किया ॥ १ ॥ महाबली राम, लक्ष्मण तथा राजा सुग्रीव को प्रणाम करके अपने सहायक वीर वनपालों के साथ उसने मधुवन को प्रस्थान किया ॥ २ ॥ जिस प्रकार वह पहले आया था उसी प्रकार वह शीघ्र लौट गया । गगनचुम्बी ऋश्यमूक पर्वत से उतरकर उस वन में प्रवेश किया ॥ ३ ॥ उस दधिमुख ने उस वन में प्रवेश करके जिनका मद उतर गया है, जो अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गए हैं तथा मधुपान के पश्चात् जो मूत्रादि कर चुके हैं ऐसे वनवासी सेनापतियों को देखा ॥ ४ ॥ हाथ जोड़कर वह दधिमुख उन वीर सैनिकों के समक्ष गया तथा मधुर, हर्षित करने वाला वाक्य अङ्गद से कहा ॥ ५ ॥ हे सौम्य ! इन रक्षकों ने अज्ञान के वश में होकर

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिरभिवारितः । अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥ ६ ॥
युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल । मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो दोषस्तं भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥
यथैव हि पिता तेऽभूत्पूर्वं हरिगणेश्वरः । तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम ॥ ८ ॥
आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ । इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम् ॥ ९ ॥
स त्वदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्हरियूथपैः । प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम् ॥१०॥
प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः । शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः ॥११॥
श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः । अब्रवीत्तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥१२॥
शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः । तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परंतपाः ॥१३॥
पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः । किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र मे गुरुः ॥१४॥
सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरियूथपाः । तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥१५॥
नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि । अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं मया ॥१६॥
ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमव्ययम् । प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः ॥१७॥
एवं वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् वानरर्षभः । ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥१८॥
तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित् । संनतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम् ॥१९॥

फल खाने तथा मधुपान करने से आप लोगों को रोका है, उसके लिये आप क्रोध न करें ॥ ६ ॥ हे महाबली ! आप युवराज तथा इस वन के स्वामी हैं। मूर्खतापूर्ण हम लोगों ने जो क्रोध किया है, उसको आप क्षमा करें ॥ ७ ॥ जैसे वनवासियों के राजा तुम्हारे पिता इस वन के स्वामी थे उसी प्रकार हे वनवासी वीर ! आप तथा राजा सुग्रीव ही इस वन के स्वामी हैं ॥ ८ ॥ हे अनघ ! तुम्हारे चाचा के समीप जाकर मैंने तुम लोगों के आगमन का (तथा वन उजाड़ने का) समाचार सुनाया ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण वनचारियों के साथ आप लोगों के यहाँ आने का तथा वन के उजाड़ने का समाचार सुनकर वे प्रसन्न ही हुए, क्रुद्ध नहीं हुए। ॥ १० ॥ वनवासियों के राजा सुग्रीव तुम्हारे चाचा ने प्रसन्न होकर मुझसे यह कहा कि उन सभी लोगों को शीघ्र यहाँ भेजो ॥ ११ ॥ वाणीविशारद वनवासिश्रेष्ठ अङ्गद दधिमुख के इस प्रकार मधुर वचन को सुनकर उन वनवासी सैनिकों से यह बोले ॥ १२ ॥ हे वीर सेनापतियों ! ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोगों के आगमन का समाचार रामचन्द्र ने सुन लिया है। इसलिये हे अरिमर्दन वीरों ! कार्य सिद्ध हो जाने पर अधिक देर तक यहाँ रहना उचित नहीं ॥ १३ ॥ पराक्रमी वनवासी सैनिकों ने यथेष्ट मधुपान कर लिया है। अब यहाँ हम लोगों का काम ही क्या शेष रहा है। जहाँ पर सुग्रीव हम लोगों के स्वामी हैं वहाँ चलना चाहिये ॥ १४ ॥ आप सभी वनवासी वीर जो निश्चय करके मुझसे कहेंगे, मैं वही करूँगा। क्योंकि कर्तव्यकार्य करने में मैं आप लोगों के पराधीन हूँ ॥ १५ ॥ युवराज होते हुए भी मैं इस समय आप लोगों को आज्ञा नहीं दे सकता। क्योंकि सफल मनोरथ आप लोगों का अनादर करना मेरे लिये उपयुक्त नहीं ॥ १६ ॥ अङ्गद की उत्तम इन बातों को सुनकर प्रसन्नचित्त वे वनवासी सैनिक इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥ हे राजन् ! आपको छोड़कर समर्थ होता हुआ भी कौन ऐसा स्वामी इस प्रकार की मधुर बातें कहेगा। प्रायः ऐश्वर्य तथा अधिकार से मदमत्त व्यक्ति 'मैं सब कुछ हूँ' ऐसा अपने को मानते हैं ॥ १८ ॥ आपके मधुर वाक्यों के समान और किसी का वचन नहीं हो सकता। आपकी इस प्रकार प्रशंसित अति नम्रता भविष्य में उन्नति की सूचक है ॥ १९ ॥ हम लोग भी प्रोत्साहित होकर

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः । स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः ॥२०॥
त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात्पदम् । क्वचिद्गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते ॥२१॥
एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत । बाढं गच्छाम इत्युक्त्वा उत्पपात महीतलात् ॥२२॥
उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः । कृत्वाकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवाचलाः ॥२३॥
तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः । विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा ॥२४॥
अङ्गदे ह्यननुप्राप्ते सुग्रीवो वानराधिपः । उवाच शोकोपहतं रामं कमललोचनम् ॥२५॥
समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः । नागन्तुमिह शक्यं तैरतीते समये हि नः ॥२६॥
न मत्सकाशमागच्छेत्कृत्ये हि विनिपातिते । युवराजो महाबाहुः प्लवतां प्रवरोऽङ्गदः ॥२७॥
यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः । भवेत्स दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥२८॥
पितृपैतामहं चैतत्पूर्वकैरभिरक्षितम् । न मे मधुवनं हन्याददृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥२९॥
कौसल्या सुप्रजा राज समाश्वसिहि सुव्रत । दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥३०॥
न ह्यन्यः कर्मणो हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः । हनूमति हि सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥३१॥
व्यवसायश्च वीर्यं च सूर्ये तेज इव ध्रुवम् । जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च बलेश्वरः ॥३२॥
हनुमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा । मा भूश्चिन्तासमायुक्तः संप्रत्यमितविक्रमः ॥३३॥

वहाँ जाने के लिये कृतसङ्कल्प हैं जहाँ पर वनवासियों के सम्राट् राजा सुग्रीव प्रसन्नचित उपस्थित हैं ॥ २० ॥ हे वनवासिकुलभूषण ! आपकी बिना आज्ञा से कोई भी सैनिक कहीं भी जाने के लिये एक पग भी उठा नहीं सकता । आपके समक्ष ये बातें हम लोग सत्य कह रहे हैं ॥ २१ ॥ इस प्रकार उन वनवासी सैनिकों के कहने पर राजकुमार अङ्गद बोले । ठीक है, अब हम लोग चलें । ऐसा कहकर उन्होंने वहाँ से प्रस्थान कर दिया ॥ २२ ॥ यन्त्र के द्वारा पत्थर के टुकड़ों की तरह अङ्गद के प्रस्थान करने पर वे सभी वनवासी सैनिक उनके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ २३ ॥ वेगवान् वे वनवासी सैनिक सहसा वहाँ से प्रस्थान करते हुए वायुप्रेरित मेघ की तरह गर्जन करने लगे ॥ २४ ॥ राजकुमार अङ्गद के इस प्रकार पहुँचने पर वनवासिसम्राट् सुग्रीव शोक से सन्तप्त कमलनयन रामचन्द्र से इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥ आप धैर्य का अवलम्बन करें, आपका सब प्रकार से कल्याण हो । देवी जानकी का निश्चित रूप से पता लग गया, अब इसमें सन्देह नहीं । समय के अतिक्रमण करने वाले ये वनवासी सैनिक असफल मनोरथ होने पर यहाँ कभी न आते ॥ २६ ॥ हे महाबाहु रामचन्द्र ! असफल मनोरथ युवराज अङ्गद मेरे पास लौट कर न आते ॥ २७ ॥ क्योंकि असफल-मनोरथ वाले व्यक्ति का आकार प्रकार इस प्रकार होता है—उसके मुख का वर्ण फीका होता है, वह घबराया होता है तथा उसका मन चञ्चल होता है ॥ २८ ॥ बिना जानकी के देखे हुए मेरे पूर्वज पिता-पितामह से रक्षित इस मधुवन को ये लोग न उजाड़ते ॥ २९ ॥ कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न होकर उनको पुत्रवती करने वाले हे व्रती रामचन्द्र ! आप धैर्य धारण करें । देवी जनकनन्दिनी सीता को निस्सन्देह हनुमान् ने ही देखा है, और किसी ने नहीं ॥ ३० ॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! हनुमान् के अतिरिक्त इस कार्य की सिद्धि के लिये औरों के पास साधन नहीं । क्योंकि कार्यसिद्धि के लिये हनुमान् में बुद्धि, पराक्रम आदि सभी गुण उपस्थित हैं ॥ ३१ ॥ हनुमान् में उद्योग, वीरता तथा ज्ञान ये तीनों गुण पूर्णरूपेण उपस्थित हैं । जाम्बवान् जिसके नेता हों, राजकुमार अङ्गद जिसके सञ्चालक हों ॥ ३२ ॥ तथा हनुमान् जिसके अधिष्ठाता हों वहाँ कार्यसिद्धि के अतिरिक्त और कोई बात हो ही नहीं सकती । इसलिये हे अमितपराक्रमी रामचन्द्र ! इस समय आप चिन्ता न करें ॥ ३३ ॥ संघटित होकर ये वनवासी जो

यदा हि दर्पितोदग्राः संगताः काननौकसः। नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्यादुपक्रमः ॥३४॥
वनभङ्गेन जानामि मधूनां भक्षणेन च। ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ॥३५॥
हनुमत्कर्मदृप्तानां नर्दतां काननौकसाम्। किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ॥३६॥
ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः। आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ॥३७॥
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः। अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ॥३८॥
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः। निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥३९॥
हनुमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः। नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ॥४०॥
दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम्। आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ॥४१॥
निश्चितार्थस्ततस्तस्मिन् सुग्रीवः पवनात्मजे। लक्ष्मणः प्रीतिमान् प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥४२॥
प्रीत्या च रममाणोऽथ राघवः परवीरहा। बहुमानेन महता हनुमन्तमवैक्षत ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमदाद्यागमनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

अहङ्कार से अमर्यादित हो रहे हैं, बिना सफलमनोरथ के इनके क्रियाकलाप इस प्रकार के नहीं हो सकते ॥ ३४ ॥ वन के उजाड़ने से तथा मधुभक्षण से भी यही बात प्रमाणित हो रही है। उसी समय आकाश में किलकिला शब्द सुनाई देने लगा ॥ ३५ ॥ हनुमान् के सफल कार्य से प्रमत्त किष्किन्धा में आने वाले वनवासियों का यह गर्जन कार्यसिद्धि की सूचना दे रहा है ॥ ३६ ॥ वनवासी सैनिकों के इस गर्जन को सुनकर अपने लाङ्गूल (ध्वजदण्ड) को उठाये हुये राजा सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥ ३७ ॥ रामचन्द्र के दर्शन की आकांक्षा से वे वनवासी सैनिक हनुमान् तथा राजकुमार अङ्गद को आगे करके वहाँ आए ॥ ३८ ॥ कार्य के हर्षातिरेक से मदोन्मत्त अङ्गदादि वे महावीर रामचन्द्र तथा राजा सुग्रीव के समीप पहुँचे ॥ ३९ ॥ विशाल भुजावाले वीर हनुमान् ने नतमस्तक रामचन्द्र को प्रणाम करके उनसे यह कहा—पातिव्रत्य का पालन करने वाली जानकी कुशलपूर्वक है ॥ ४० ॥ 'देवी सीता को मैंने देखा है' हनुमान् के मुख से इस अमृतमय वचन को सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों वीर प्रसन्नता से अत्यन्त गद्‌गद हो गए ॥ ४१ ॥ हनुमान् की सफलता पर पूर्ण विश्वास करने वाले राजा सुग्रीव को हर्षयुक्त लक्ष्मण ने महान् आदर से देखा ॥ ४२ ॥ अत्यन्त हर्ष से गद्‌गद होकर शत्रुहन्ता रामचन्द्र ने महान् आदर की दृष्टि से देखा ॥ ४३ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् आदि का आगमन' विषयक चौंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः

चूडामणिप्रदानम्

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् । प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥
युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च । प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ २ ॥
रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् । रामे समनुरागं च यश्चायं समयः कृतः ॥ ३ ॥
एतदाख्यान्ति ते सर्वे हरयो रामसंनिधौ । वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ॥ ४ ॥
क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते । एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥ ५ ॥
रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ । चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनुमान् मारुतात्मजः । प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ७ ॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा । तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ८ ॥
दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् । समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ॥ ९ ॥
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया । तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥१०॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे । तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥११॥
संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम मनोरथम् । दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१२॥

पैंसठवां सर्ग

चूड़ामणि का देना

विचित्र रमणीय वन से मण्डित उस प्रस्रवण पर्वत पर सदलबल जाकर महाबली राम, लक्ष्मण को नतमस्तक हो प्रणाम करके ॥ १ ॥ तथा राजा सुग्रीव को अभिवादन करने के पश्चात् युवराज अङ्गद को प्रमुख बनाकर जानकी का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ॥ २ ॥ रावण के अन्तःपुर में जानकी को रोका जाना, राक्षसियों के द्वारा भयभीत करना, रामचन्द्र में जानकी का प्रगाढ अनुराग, जानकी के जीवन के लिये रावण द्वारा दो मास की अवधि करना ॥ ३ ॥ यह सम्पूर्ण वृत्तान्त वनवासियों ने राम के समीप निवेदन किया। 'जानकी अभी जीवित है' इस बात को सुनकर रामचन्द्र बोले ॥ ४ ॥ हे वनवासी वीरो ! सीता इस समय कहाँ है ? मेरे प्रति उसके क्या भाव हैं ? जानकी के विषय में ये सारी बातें बताओ ॥ ५ ॥ राम के इन प्रश्नों को सुनकर उन वनवासी सैनिकों ने जानकी के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानने वाले हनुमान् को रामचन्द्र के समक्ष उपस्थित किया ॥ ६ ॥ उन वनवासियों की प्रार्थना सुनकर पवनपुत्र हनुमान् ने दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके देवी सीता को सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ वाक्य-विशारद हनुमान् सीता का दर्शन जिस प्रकार किया था वैसा बोले। स्वर्णालङ्कार युक्त उस दिव्य मणि को जो अपने तेज से स्वयं प्रकाशित हो रही थी ॥ ८ ॥ रामचन्द्र को देकर हनुमान् बोले—सौ योजन लम्बे समुद्र को लांघकर ॥ ९ ॥ खोजते हुए जानकी को देखने की इच्छा से मैं दुरात्मा रावण की नगरी लङ्का में गया ॥ १० ॥ दक्षिण समुद्र के दक्षिणी तट पर लङ्का नगरी है। वहाँ रावण के अन्तःपुर में जानकी को मैंने देखा ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्र ! वह जानकी अपने मनोरथों को आप में ही केन्द्रित करके जी रही है। विकराल राक्षसियों के मध्य में उन्हीं के द्वारा धमकाई जाती हुई सीता को मैंने देखा ॥ १२ ॥

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने । दुःखमापद्यते देवी तवादुःखोचिता सती ॥१३॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥१४॥
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे । रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥१५॥
देवी कथंचित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया । इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ ॥१६॥
सा मया नरशार्दूल विश्वासमुपपादिता । ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ॥१७॥
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता । नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्यास्तथा त्वयि ॥१८॥
एवं मया महाभागा दृष्टा जनकनन्दिनी । उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥१९॥
अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके । चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥२०॥
विज्ञाप्यश्च नरव्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया । अखिलेनेह यद्दृष्टमिति मामाह जानकी ॥२१॥
अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः । ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥२२॥
एष चूडामणिः श्रीमान् मया सुपरिरक्षितः । मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः ॥२३॥
त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसंभवः । एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥२४॥
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥२५॥

हे वीर रामचन्द्र ! आपके साथ निरन्तर सुख भोगने योग्य सीता उस प्रमदावन में विकराल राक्षसियों के द्वारा अत्यन्त दुःख उठा रही है ॥ १३ ॥ रावण के अन्तःपुर में रोकी गई, राक्षसियों के द्वारा जिसकी रक्षा हो रही है, एक वेणी धारण करने वाली अत्यन्त दुःखी आपकी चिन्ता में (समययापन कर रही है) ॥ १४ ॥ शीतकाल में कमलिनी की तरह भूमि पर सोने से जिसके सर्वाङ्ग अशोभनीय हो गए हैं, रावण के कारण जिसकी सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारपात हो गया है तथा जिसने मरने का निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥ आपके ध्यान में मग्न उस देवी जानकी को हे निष्कलङ्क रामचन्द्र ! मैंने किसी प्रकार देखा । मैंने शनैः शनैः इक्ष्वाकुवंश की कीर्ति का वर्णन किया ॥ १६ ॥ हे नरकेसरी रामचन्द्र ! इस प्रकार धीरे धीरे उसको विश्वास कराया । पश्चात् भाषण करती हुई जानकी ने अपना वृत्तान्त सुनाया ॥ १७ ॥ आप तथा राजा सुग्रीव की परस्पर मैत्री का समाचार सुनकर वह अत्यन्त हर्षित हो गई । सदाचारिणी, पतिपरायणा सीता की आपमें अटूट भक्ति है ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आपकी अनन्य भक्ति तथा कठोर तपस्या से युक्त उस जनकनन्दिनी जानकी को मैंने देखा ॥ १९ ॥ हे महाप्राज्ञ रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र ! चित्रकूट में आपके समीप उस कौए की जो घटना घटी वह सम्पूर्ण वृत्तान्त आपके विश्वास के लिये जानकी ने मुझे बताया ॥ २० ॥ तत्पश्चात् जानकी ने पुनः यह कहा—हे वायुपुत्र हनुमान् ! जो सारी बातें आपने देखी हैं उनको राम के पास जाकर कहना ॥ २१ ॥ यत्न से जिसको मैंने सुरक्षित रखा है उस मणि को भी रामचन्द्र को दे देना । सुग्रीव के सुनते हुए इस प्रकार की बातें हनुमान् ने कहीं ॥ २२ ॥ जानकी की दी हुई इस चूडामणि को मैंने बहुत सुरक्षित रखा था । मैंनसिल का तिलक जो मेरे तिलक के नष्ट होने पर आपने मेरे मस्तक पर लगाया था उसको आप स्मरण करें ॥ २३ ॥ समुद्र से उत्पन्न हुई इस मणि को साक्षी रूप से आपको दिया है । सङ्कट में इसको देखकर मैं उसी प्रकार प्रसन्न होती हूँ, जिस प्रकार आपके दर्शन से हे निष्कलङ्क रामचन्द्र ! मुझे प्रसन्नता होती है ॥ २४ ॥ हे आर्यपुत्र रामचन्द्र ! किसी प्रकार एक महीने तक मैं जीवित रह सकूंगी । एक मास के पश्चात् राक्षसों के वश में आई हुई मैं अपने प्राणत्याग दूँगी ॥ २५ ॥ मृगी के समान विकसित विशाल नेत्र वाली, रावण के गृह में अवरुद्ध,

इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी वरवर्णिनी । रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ॥२६॥
एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा । सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम् ॥२७॥
तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्वाचा संपूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चूडामणिप्रदानं नाम पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

सीताभाषितप्रश्नः

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः । तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मणः ॥ १ ॥
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला । तथा ममापि हृदयं मणिरत्नस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥
मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे । वधूकाले यथाबद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥

कृशाङ्गी, धर्मचारिणी सीता ने मुझसे कहा ॥ २६ ॥ हे रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र ! जितनी बातें आवश्यक थीं, जिनको मैंने देखा सुना था, वे सब आपसे कह दी हैं। इसके पश्चात् समुद्र पार कैसे किया जाय ? इस पर विचार करें ॥ २७ ॥ उन दोनों राजकुमारों को मेरी बातों से विश्वास हो गया है, ऐसा समझकर, सीता की चूडामणि रामचन्द्र को देकर जानकी की कही हुई बातों को तथा उनके सम्पूर्ण वृत्तान्त को क्रमपूर्वक हनुमान् ने कहा ॥ २८ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'चूड़ामणि का देना' विषयक पैंसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

छियासठवाँ सर्ग

सीता के भाषण को पुनः पूछना

जानकी के सम्पूर्ण वृत्तान्त को, हनुमान् के द्वारा इस प्रकार कहने पर उस मणि को हृदय से लगाकर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र रुदन करने लगे ॥ १ ॥ शोकाकुल रामचन्द्र उस मणि को देखकर सजल नेत्रों से सुग्रीव से यह बोले ॥ २ ॥ जिस प्रकार अपने बछड़े के स्नेह से गौ अपने स्तन से दूध स्रवित करती है उसी प्रकार आज इस श्रेष्ठ मणि को देखकर मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो गया है ॥ ३ ॥ पाणिग्रहण के समय में मेरे ससुर राजा जनक ने यह मणि सीता को दी थी। सीता के मस्तक पर यह मणि अत्यन्त सुशोभित होती थी ॥ ४ ॥ जल से उत्पन्न हुई यह अत्यन्त प्रशंसित मूल्यवान् मणि यज्ञ में प्रसन्न

अयं हि जलसंभूतो मणिः सज्जनपूजितः। यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥५॥
इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं यथा तातस्य दर्शनम्। अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥६॥
अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः। अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥७॥
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः। पिपासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ॥८॥
इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसंभवम्। मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥९॥
चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति। न जीवेयं क्षणमपि विना तामसितेक्षणाम् ॥१०॥
नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया। न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥११॥
कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती सदा। भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥१२॥
शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः। आवृतं वदनं तस्या न विराजति साम्प्रतम् ॥१३॥
किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयाद्य मे। एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥१४॥
मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी। मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीताभाषितप्रश्नो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

होकर बुद्धिमान इन्द्र ने दी थी ॥५॥ इस मणिरत्न को देखकर आज मैं अपने पूज्य पिता तथा राजा जनक के दर्शन का अनुभव कर रहा हूँ ॥६॥ मेरी प्रियतमा जानकी के मस्तक पर यह मणि शोभा प्राप्त करती थी ; इसके दर्शन से 'सीता ही आज मिल गई है' ऐसा मैं आज अनुभव कर रहा हूं ॥७॥ पिपासु को जल देने के समान सीता ने मेरे लिये क्या कहा है, हे सौम्य ! उसको बार-बार कहो ॥८॥ जल में उत्पन्न होने वाले इस मणिरत्न को मैं सीता के बिना देख रहा हूँ । इससे बढ़कर और दुःखकी क्या बात होगी ॥९॥ यदि जानकी एक महीने तक जीवित रहेगी, तो वह बहुत जियेगी । किन्तु हे वीर लक्ष्मण ! मैं मृगनयनी जानकी के विना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता ॥१०॥ जानकी का वृत्तान्त सुनने पर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रह सकता । इसलिये हे वीर हनुमान् ! मुझे भी वहाँ ले चलो जहाँ पर मेरी प्रियतमा जानकी को तुमने देखा है ॥११॥ हे हनुमन् ! घोर भयङ्कर राक्षसों के मध्य में भीरु विचार वाली मेरी प्रिया सीता किस प्रकार रहती है ॥१२॥ अन्धकारयुक्त तथा मेघाच्छन्न शरच्चन्द्र के समान उसका मुख-मण्डल इस समय शोभायुक्त न होगा ॥१३॥ हे हनुमन् ! सीता ने मेरे लिये और क्या सन्देश कहा है उसे कहिये । उसकी सन्देशयुक्त बातों को सुनकर मैं उसी प्रकार जिऊँगा जिस प्रकार रोगी औषधि से जीता है ॥१४॥ मधुर भाषण करने वाली सुन्दरी मुझसे वियुक्त जानकी ने मेरे लिये क्या सन्देश कहा है । हे हनुमन् ! तुम उसको कहो ॥१५॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायन के सुन्दरकाण्ड का 'सीता के भाषण को पुनः पूछना' विषयक छियासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

सीताभाषितानुवचनम्

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना । सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥ १ ॥
इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ । पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥
सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता । वायसः सहसोत्पत्य विददार स्तनान्तरे ॥ ३ ॥
पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रज । पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ॥ ४ ॥
पुनः पुनरुपागम्य विरराद भृशं किल । ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ॥ ५ ॥
वायसेन च तेनैव सततं बाध्यमानया । बोधितः किल देव्या त्वं सुखसुप्तः परंतप ॥ ६ ॥
तां तु दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे । आशीविष इव क्रुद्धो निःश्वसन्नभ्यभाषथाः ॥ ७ ॥
नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं तु स्तनान्तरम् । कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ ८ ॥
निरीक्षमाणः सहसा वायसं समवैक्षथाः । नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम् ॥ ९ ॥
सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः । धरान्तरचरः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥१०॥
ततस्तस्मिन् महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः । वायसे त्वं कृथाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर ॥११॥
स दर्भं संस्तराद् गृह्य ब्रह्मास्त्रेण ह्ययोजयः । स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखः खगम् ॥१२॥

सड़सठवाँ सर्ग

सीता के भाषण का अनुकथन
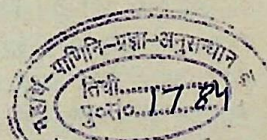
महात्मा रामचन्द्र के इस प्रकार कहने पर हनुमान् ने सीता की सम्पूर्ण बातों को उपस्थित किया ॥ १ ॥ हे पुरुषोत्तम ! जानकी ने सबसे पूर्व इस चिह्न को कहा जो चित्रकूट में घटित हुआ था ॥ २॥ आपके साथ सुखपूर्वक मैं (जानकी) सोई हुई थी, आपसे पहले ही मेरे उठने पर सहसा एक कौए ने आकर मेरे वक्षःस्थल पर चोट मारी ॥ ३ ॥ हे भरत के बड़े भाई रामचन्द्र ! पर्यायक्रम के कारण आप मेरे अङ्क में सो रहे थे। उस अवस्था में वह पक्षी मुझको बार-बार पीड़ित करने लगा ॥ ४ ॥ पश्चात् पुनः आकर उसने वक्षःस्थल पर घाव कर दिया। पुनः रक्तबिन्दु के टपकने के कारण आप जग गए ॥ ५ ॥ इस प्रकार उस कौए के द्वारा बार-बार पीड़ित होने पर देवी जानकी ने सुख से सोए हुए आपको जगाया ॥ ६ ॥ हे विशाल भुजा वाले रामचन्द्र ! जानकी के स्तन क्षत-विक्षत देखकर क्रुद्ध हुए सर्प के समान आपने यह कहा ॥ ७ ॥ विषधर सर्प के साथ क्रीडा करने के समान नखों से तुम्हारे स्तनों पर किसने व्रण (घाव) किये हैं ? ॥ ८ ॥ इधर-उधर देखते हुए आपने रक्त से रञ्जित नख वाले मेरी ही तरफ मुख करके बैठे हुए कौए को सहसा देखा ॥ ९ ॥ वह कौआ रूप बदलने वाला, इन्द्र का पुत्र था। पवन की गति के समान वह शीघ्र भूमितल पर आया था ॥ १० ॥ हे विशालबाहो ! उस समय आपने अत्यन्त क्रोध के कारण विकराल दृष्टि से उसे देखा ॥ ११ ॥ उस समय आपने दर्भ के आसन से एक दर्भ को लेकर उसे ब्रह्मास्त्र से संयुक्त किया। वह इषीकास्त्र का रूप धारण करता हुआ कालाग्नि के समान जलता हुआ कौए के समक्ष प्रज्वलित हो गया ॥ १२ ॥ जलते हुए उस दर्भास्त्र को आपने कौए के ऊपर

क्षिप्तवांस्त्वं प्रदीप्तं हि दर्भं तं वायसं प्रति । ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह ॥१३॥
स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः । त्रींल्लोकान् संपरिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति॥१४॥
पुनरेवागतस्त्रस्तस्त्वत्सकाशमरिंदम । स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ॥१५॥
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया पर्यपालयः । मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव ॥१६॥
भवांस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् । राम त्वां स नमस्कृत्य राज्ञे दशरथाय च ॥१७॥
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम् । एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्शीलवानपि ॥१८॥
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयति राघवः । न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥१९॥
न च सर्वे रणे शक्ता रामं प्रति समासितुम् । तस्य वीर्यवतः कश्चिद्यद्यस्ति मयि संभ्रमः ॥२०॥
क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः । भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परंतपः ॥२१॥
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः । शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥२२॥
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः । ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥२३॥
समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परंतपौ । वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ॥२४॥
पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रवम् । त्वच्छोकविमुखो रामो देवी सत्येन ते शपे ॥२५॥
रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते । कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥२६॥
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि । तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रावनिन्दितौ ॥२७॥

चलाया । वह प्रज्वलित दर्भास्त्र कौए का पीछा करने लगा ॥ १३ ॥ उसके पिता इन्द्र देव तथा महर्षियों ने भी उसे शरण नहीं दी । त्रिलोकी (देव, असुर, मनुष्य) में कोई भी उसको शरण देने वाला न मिला ॥ १४ ॥ हे अरिमर्दन ! शरणागतरूप में वह पुनः आपके समीप आया । शरणागत रूप में भूमि पर गिरे हुए ॥ १५ ॥ तथा वध के योग्य भी हे रामचन्द्र ! आपने उसकी रक्षा की । हे रामचन्द्र ! आपका अस्त्र व्यर्थ नहीं जाता इसलिये ॥ १६॥ आपने उसकी दाहिनी आँख को नष्ट कर दिया । उस कौए ने पिता के समेत आपको प्रणाम किया ॥ १७ ॥ तथा आपसे आज्ञा पाकर अपने निवासस्थान को चला गया । इस प्रकार आप अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, सत्यवादी, चरित्रवान् होते हुए भी ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्र ! उन क्रूर राक्षसों पर अपने अस्त्र का क्यों नहीं प्रयोग करते । दानव, गन्धर्व, असुर तथा देवगण ॥ १९ ॥ इनमें से कोई भी संग्राम में आपके समक्ष नहीं ठहर सकता । आप जैसे पराक्रमी व्यक्ति का यदि मेरे प्रति कुछ भी स्नेह है तो ॥ २० ॥ शीघ्र ही अपने तीक्ष्ण बाणों से संग्राम में रावण को मारें । अथवा शत्रुघाती पुरुषोत्तम ! लक्ष्मण ही अपने भाई की आज्ञा से ॥ २१ ॥ मेरी रक्षा क्यों नहीं करते । वायु, अग्नि के समान तेज वाले वे दोनों नरकेसरी इस कार्य के करने में समर्थ हैं ॥ २२ ॥ देवों के द्वारा भी कभी न परास्त होने वाले राम, लक्ष्मण मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं । अथवा निस्सन्देह मेरा ही कोई ऐसा विपरीत कर्म है ॥ २३ ॥ जिससे वे दोनों शत्रुतापी बन्धु समर्थ होते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं । जानकी के करुणामय इन सुन्दर शब्दों को सुनकर ॥ २४ ॥ आर्या जानकी से मैंने यह कहा । हे देवि ! आपके शोक से सन्तप्त रामचन्द्र सब प्रकार के कार्यों तथा भोगों से विरत हो गए हैं । यह मैं सत्य की शपथ पूर्वक कह रहा हूँ ॥ २५ ॥ राम के दुःखी हो जाने पर उनके भ्राता लक्ष्मण भी दुःखी हैं । किसी प्रकार मैंने आपको देख लिया । अब शोक करने का समय नहीं है ॥ २६ ॥ हे सीते ! इस समय अब आपके दुःखों का अन्त हो जायगा, इसको आप देखेंगी । शत्रुतापी, नरसिंह वे दोनों राजकुमार ॥ २७ ॥ तुम्हारे देखने के उत्साह से उत्सुक होकर लङ्का को भस्मीभूत कर देंगे । बन्धु-बान्धवों के

त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः । हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम् ॥२८॥
राघवस्त्वां वरारोहे स्वां पुरीं नयिता ध्रुवम् । यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ॥२९॥
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं त्वमिहार्हसि । साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ॥३०॥
मुक्त्वा वस्त्राद्ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल । प्रतिगृह्य मणिं दिव्यं तव हेतो रघूद्वह ॥३१॥
शिरसा तां प्रणम्यार्यामहमागमने त्वरे । गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ॥३२॥
विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा । अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पसंदिग्धभाषिणी ॥३३॥
ममोत्पतनसंभ्रान्ता शोकवेगसमाहता । हनुमन् सिंहसंकाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥३४॥
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया ह्यनामयम् । मामुवाच ततः सीता सभाग्योऽसि महाकपे ॥३५॥
यद्द्रक्ष्यसि महाबाहुं रामं कमललोचनम् । लक्ष्मणं च महाबाहुं देवरं मे यशस्विनम् ॥३६॥
सीतयाप्येवमुक्तोऽहमब्रवं मैथिलीं तथा । पृष्ठमारोह मे देवि क्षिप्रं जनकनन्दिनि ॥३७॥
यावत्ते दर्शयाम्यद्य ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् । राघवं च महाभागे भर्तारमसितेक्षणे ॥३८॥
माब्रवीन्मां ततो देवी नैष धर्मो महाकपे । यत्ते पृष्ठं सिषेवेऽहं स्ववशा हरिपुङ्गव ॥३९॥
पुरा च यदहं वीर स्पृष्टा गात्रेषु रक्षसा । तत्राहं किं करिष्यामि कालेनोपनिपीडिता ॥४०॥
गच्छ त्वं कपिशार्दूल यत्र तौ नृपतेः सुतौ । इत्येवं सा समाभाष्य भूयः संदेष्टुमास्थिता ॥४१॥
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥४२॥

सहित संग्राम में उस क्रूर रावण को मार कर ॥ २८ ॥ हे सुन्दरि ! रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्र तुमको अपनी नगरी में ले जाएँगे । हे अनिन्दिते सीते ! जिसको रामचन्द्र जानते हों ऐसा कोई चिह्न ॥ २९ ॥ जो उनकी प्रसन्नता का हेतु हो, आप देवें । इधर-उधर सारी दिशाओं को देखकर वेणी में बँधे हुए इस उत्तम चूडामणि को ॥ ३० ॥ वस्त्र से निकालकर, हे महाबली रामचन्द्र ! जानकी ने मुझको दिया । हे रघुकुल-वंशावतंस ! आपके लिये उस दिव्यमणि को लेकर ॥ ३१ ॥ तथा नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम कर आने के लिये मैं शीघ्रता करने लगा । लौटने के लिये मुझे उत्कण्ठित देखकर ॥ ३२ ॥ बढ़े हुए उत्साह वाले मुझ से आँखों में आँसू भरकर गद्‌गद स्वर में मेरे जाने के कारण घबराई हुई तथा अत्यन्त शोकाकुल जनकनन्दिनी सीता ने यह कहा—हे हनुमन् ! सिंह के समान उन दोनों वीर राम, लक्ष्मण ॥ ३३-३४ ॥ मन्त्रिमण्डल के साथ राजा सुग्रीव इन सभी लोगों को मेरी ओर से कुशल कहना । पुनः सीता ने यह कहा कि हे वनवासी वीर ! तुम भाग्यशाली हो ॥ ३५ ॥ जो कमल नेत्र विशाल भुजा वाले रामचन्द्र को देखोगे तथा यशस्वी, दीर्घबाहु मेरे देवर लक्ष्मण को देखोगे ॥ ३६ ॥ जानकी के इस प्रकार कहने पर मैंने स्वयं उनसे यह कहा—हे मिथिलेशकुमारि ! आप शीघ्र ही मेरी पीठ पर बैठ जायें ॥ ३७ ॥ हे महाभागे ! मैं शीघ्र ही सुग्रीव तथा लक्ष्मण के साथ तुम्हारे पति रामचन्द्र का दर्शन कराऊँगा ॥ ३८ ॥ पश्चात् देवी जानकी ने यह कहा—हे महावीर ! वस्तुतः यह मेरे लिये उचित नहीं कि मैं स्वेच्छा से तुम्हारी पीठ पर बैठूँ ॥ ३९ ॥ हे वीर ! मैंने यह पहले जो राक्षस रावण के अङ्ग का स्पर्श किया उस समय कालधर्म के नियम से मैं विवश थी, कर ही क्या सकती थी ॥ ४० ॥ हे महाबली ! अब तुम वहाँ जाओ जहाँ पर वे दोनों राजकुमार हैं । इतनी बातें कहकर जानकी ने पुनः मुझे यह सन्देश दिया ॥४१॥ महाबाहु रामचन्द्र इस दुःख सागर से जिस प्रकार मेरा शीघ्र ही उद्धार करें, ऐसी बातें उनसे कहना ॥ ४२ ॥ यह तीव्र मेरा शोक वेग तथा राक्षसों के द्वारा धमकाया जाना राम के समीप जाकर कहना । हे वनवासी वीर ! तुम्हारा मार्ग तुम्हारे लिये

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥४३॥
एतत्तवार्या नृपराजसिंह सीता वचः प्राह विषादपूर्वम्।
एतच्च बुद्ध्वा गदितं मया त्वं श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सीताभाषितानुवचनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः

हनूमत्समाश्वासवचनानुवादः

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससंभ्रमः। तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य वै ॥ १ ॥
एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया। यथा मामाप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥ २ ॥
यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम। कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥
मम चाप्यल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर। अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम् ॥ ४ ॥
गते हि त्वयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै। प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥

कल्याणकारी हो ॥ ४३ ॥ हे राजन्! विषादपूर्वक आर्या जानकी नेये बातें मुझसे कहीं। मैंने सम्पूर्ण सीता का वृत्तान्त आपको सुना दिया। जानकी सब प्रकार से कुशल है इस पर आप पूर्ण विश्वास करें ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'सीता के भाषण को पुनः पूछना' विषयक सड़सठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अड़सठवाँ सर्ग

हनुमान् के द्वारा समाश्वासनवचनों का अनुवाद

हे नरकेसरी रामचन्द्र! आपके प्रति स्नेह तथा सौहार्द के कारण मेरा सम्मान करते हुए देवी जानकी ने पुनः यह कहा ॥ १ ॥ दशरथकुमार रामचन्द्र से ये बातें अच्छी तरह से कहना। जिससे वे संग्राम में रावण को शीघ्र मारकर मेरा उद्धार करें ॥ २ ॥ हे महावीर! यदि तुम उचित समझो तो किसी सुरक्षित स्थान में छिपकर एक दिन यहीं निवास करो। विश्राम करके पुनः कल चले जाना ॥ ३ ॥ हे वनवासी वीर! तुम्हारे समीप रहने से मुझ भाग्यहीना को शोकजनित सन्तापों से कुछ समय के लिये मुक्ति मिलेगी ॥ ४ ॥ चले जाने के पश्चात् पुनः तुम्हारे लौटने तक ये मेरे प्राण रहेंगे या नहीं इसमें भी सन्देह है ॥ ५ ॥ भयङ्कर दुःखों से आक्रान्त, दुर्गति में रहने वाली मुझ भाग्यहीना को तुम्हारी अनुपस्थिति का जो

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् । दुःखाद्दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य वायोर्वा तव वानघ ॥ ९ ॥
तदस्मिन् कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे । किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥१०॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥११॥
बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे । विजयी स्वां पुरीं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम् ॥१२॥
यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता । रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥१३॥
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥१४॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥१५॥
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् । निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवम् ॥१६॥
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥१७॥
तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः । मनः संकल्पसंपाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥१८॥
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः । न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥१९॥
असकृत्तैर्महाभागैर्वानरैर्बलदर्पितैः । प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥२०॥
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः । मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥२१॥

भय है वह मेरे लिये अत्यन्त दुःखदायी होगा ॥ ६ ॥ वनवासी वीरों के अच्छे सहायक होने पर भी निश्चय ही मेरे समक्ष यह सन्देह तो बना हुआ है ॥ ७ ॥ राजा सुग्रीव की वह विशाल वाहिनी तथा वे दोनों राजकुमार राम, लक्ष्मण इस अलङ्घ्य समुद्र को कैसे पार करेंगे ॥ ८ ॥ हे निष्कलङ्क महावीर ! समुद्र लांघने की शक्ति इन तीन ही में है—गरुड़ पक्षी में, वायु में तथा तुम में ॥ ९ ॥ दुरतिक्रमणीय समुद्र पार जाने की विकट समस्या का, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ वीर हनुमान् ! तुम क्या समाधान सोचते हो ॥ १० ॥ हे अरिमर्दन ! यद्यपि इस सम्पूर्ण कार्य की सफलता में तुम अकेले ही समर्थ हो । इससे तुम्हारे ही यश और बल की प्रशंसा होगी । (इससे रामचन्द्र के यश की कोई ख्याति नहीं होगी ।) ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण सेना के साथ संग्राम में रावण को मारकर शत्रुञ्जयी रामचन्द्र यदि मुझको यहाँ से ले जायँ तो यह उनके लिये यशस्कर होगा ॥ १२ ॥ वन में रामचन्द्र के भय से उस राक्षस रावण ने मेरा अपहरण किया । रामचन्द्र को इस मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ शत्रु सेना के मानमर्दन करने वाले रामचन्द्र सम्पूर्ण सेना से लङ्का को क्षुब्ध कर यदि मुझको यहाँ से ले जायँ तो यह उनके अनुरूप होगा ॥ १४ ॥ युद्ध वीर महात्मा रामचन्द्र के पराक्रम के अनुकूल जो कार्य हो वैसा तुम करना ॥ १५ ॥ हेतुगर्भित, अर्थयुक्त, नम्रतापूर्वक जानकी की इन बातों को सुनकर मैंने उत्तर दिया ॥ १६ ॥ हे देवि ! वनवासी सैनिकों के सम्राट् धैर्यशाली महाराज सुग्रीव ने तुम्हारे उद्धार का दृढ़ निश्चय कर लिया है ॥१७॥ मनः सङ्कल्प के समान शीघ्रकारी, धैर्यशाली, पराक्रमी तथा महाबली वनवासी वीर सैनिक उनके आज्ञाकारी हैं ॥ १८ ॥ ऊपर नीचे तथा सामने जाने में उनकी गति का कोई अवरोध नहीं कर सकता । अतुलपराक्रमी वे वीर किसी कार्य में घबड़ाते नहीं ॥ १९ ॥ बलवीर्य सम्पन्न उन वनवासी वीरों ने भूमि तथा गगनमार्ग से अनेकों बार पृथ्वी का पर्यटन किया है ॥ २० ॥ मुझसे बढ़कर तथा मेरे समान अनेकों वनवासी वीर सुग्रीव की सेना में हैं । मुझसे छोटा उनकी सेना में कोई नहीं है ॥ २१ ॥ जब मैं इस दुर्गमनीय लङ्का में

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः । न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥२२॥
तदलं परितापेन देवि मन्युर्व्यपैतु ते । एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥२३॥
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ । त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥२४॥
अरिघ्नं सिंहसंकाशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् । लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपस्थितम् ॥२५॥
नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान् । वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ॥२६॥
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु । नर्दतां कपिमुख्यानामचिराच्छ्रोष्यसि स्वनम् ॥२७॥
निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिंदमम् । अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥२८॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणा शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
जगाम शान्तिं मम मैथिलात्मजा तवापि शोकेन तदाभिपीडिता ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे हनूमत्समाश्वासवचनानुवादो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

सुन्दरकाण्डः संपूर्णः

चला आया तो उन महावीरों का तो कहना ही क्या । ऐसे कार्यों में बड़े लोग दूत बनाकर नहीं भेजे जाते किन्तु छोटे लोग ही भेजे जाते हैं ॥ २२ ॥ हे देवि ! अपने शोक सन्ताप तथा दीनता को दूर करो। सारे वनवासी वीर एक छलाँग में ही लङ्का में आएँगे ॥ २३ ॥ हे भाग्यशीले ! सूर्य चन्द्र के समान कान्ति वाले वे दोनों नरसिंह राम, लक्ष्मण मेरे कन्धे पर बैठकर तुम्हारे समीप आएँगे ॥ २४ ॥ अरिमर्दन सिंह के समान रामचन्द्र को तथा धनुर्धारी वीर लक्ष्मण को लङ्का के द्वार पर आए हुए तुम शीघ्र ही देखोगी ॥२५॥ नख तथा दाँत के आयुध वाले, सिंह, व्याघ्र के समान पराक्रमी, विशाल गजराज के समान शरीर वाले उन वनवासी वीरों को तुम शीघ्र ही देखोगी ॥ २६ ॥ पर्वत के समान विशालकाय, उन वनवासी वीरों को लङ्कागत मलय पर्वत की चोटियों पर मेघ के समान गर्जन करते हुए शब्द तुम शीघ्र ही सुनोगी ॥ २७ ॥ जिनका वनवास समाप्त हो गया है ऐसे शत्रुघाती रामचन्द्र को अपने साथ राजपद पर अभिषिक्त होते हुए तुम शीघ्र ही देखोगी ॥ २८ ॥ मङ्गलमय तथा प्रिय मेरे भाषण को सुनकर आपके शोक से पीड़ित होने पर भी अदीनभाषिणी मिथिलेशकुमारी जानकी ने शान्ति को प्राप्त किया ॥ २९ ॥

इस प्रकार वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाण्ड का 'हनुमान् के द्वारा समाश्वासनवचनों का अनुवाद' विषयक अड़सठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

सुन्दरकाण्ड समाप्त